सरल-नाटक-माला

अर्थात्

शालाओं में खेले जाने योग्य स्त्री-पात्र-रहित ५१ छोटे-छोटे एकांकी नाटकों, प्रहसनों तथा सम्वादों का अत्युत्तम संग्रह



सम्पादक—

नर्म्मदाप्रसाद मिश्र,

बी० ए०, साहित्य-शास्त्री,

भूतपूर्व "श्रीशारदा"—सम्पादक

प्रकाशक—

मिश्र-बन्धु-कार्यालय,

जबलपुर

द्वितीय संस्करण]　　सन् १९३१ ई०　　[मूल्य,

पूज्यपाद गुरुवर पं० रामचन्द्रजी दुबे की स्मृति में—

भूमिका

जब किसी स्कूल मे किसी उच्च पदाधिकारी का शुभागमन होता, अथवा कोई शुभ अवसर उपस्थित होता है, तो एकत्रित जन-समुदाय के मनोविनोद के लिए कोई नाटक खेलने का प्रयत्न बहुधा किया जाता है। इसके सिवाय, शहर के स्कूलों मे पूर्व तथा वर्तमान छात्रो के सम्मेलन (Social Gatherings) भी प्रतिवर्ष हुआ करते है। इन अवसरों पर, दर्शकों के मनोरंजन के लिए, नाटक खेलना एक आवश्यक बात समझी जाती है—बिना नाटक खेले सारा मजा किरकिरा हो जाता है। नाटक खेलना कोई बुरी बात नहीं है। इतना ही नहीं, मेरी समझ मे, नाटकाभिनय इतना आवश्यक है कि प्रत्येक विद्यार्थी को वह जानना ही चाहिए, क्योंकि नाटक खेलने से हाव-भाव प्रकट

करने की योग्यता होती, वृहत् जन-समुदाय के समक्ष अपने विचार स्वतंत्रता से प्रकट करने का साहस होता, तथा यदि नाटक अच्छे लेखकों के लिखे गये होवें, तो अभिनेताओं को अच्छी भाषा सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

यह सब तो ठीक है, परन्तु कठिनाई उपस्थित होती है नाटक चुनने मे। यद्यपि हिन्दी में नाटकों का अभाव नहीं है, तथापि अच्छे नाटको की संख्या बहुत ही थोड़ी है। जो अच्छे नाटक मिलते हैं उनमे से कोई कोई बहुत बड़े रहते हैं जिससे उनकी तैयारी में बहुत सा समय लग जाता है। दूसरे, स्त्री-पात्रों के आने से, लड़के स्त्री का भाग लेने मे शरमाते और जो, किसी प्रकार विवश किये जाने पर, भाग लेते भी हैं उनपर स्त्री के अनुरूप हावभाव आदि करते रहने के कारण, बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। तीसरे, अनुचित शृंगार-रस आ जाने से उसे विद्यार्थियों के सन्मुख रखना उचित नही दीखता है। इन कठिनाइयो से बचने के लिए छात्रों या उनके शिक्षकों को स्वयं उपयुक्त नाटक लिखने का प्रयत्न करना पड़ता है एवं शीघ्रता करने तथा यथेष्ट अभ्यास न रहने के कारण, कभी कभी आशानुरूप सफलता नही मिलती है।

मै स्वयं कई बार इस प्रकार की कठिनाई में पड़ चुका हूँ; इसलिए कई वर्षो से मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं कुछ ऐसे नाटक लिखूँ जो विद्यार्थियों के सामने बिना किसी संकोच के, खेले जा सकें—उनसे कुछ शिक्षा भी मिले और यथेष्ट मनोरञ्जन भी होवे। इस इच्छा से प्रेरित होकर मैंने तीन नाटक लिखे है जो समय पाकर प्रकाशित होगे। तब तक छोटे छोटे नाटको के संग्रह की अधिक आवश्यकता

देखी गई और उसीकी आंशिक पूर्त्ति का प्रयत्न ही प्रस्तुत पुस्तक की रचना का मूल कारण है।

मैंने अपना उक्त विचार अपने कई मित्रों तथा कतिपय प्रतिष्ठित हिन्दी-लेखकों पर प्रकट किया तथा हर्ष की बात है कि वे सभी मेरे विचार से सहमत हुए। इस सम्बन्ध में मुझे उनसे कितनी सहायता मिली है वह प्रस्तुत पुस्तक से भली भाँति प्रकट हो सकती है एवं जिसे मेरा कृतज्ञता-पाश-बद्ध हृदय जानता एवं अपने निःस्वार्थ सहायकों के प्रति आंतरिक कृतज्ञता प्रकट करता है।

इस पुस्तक को संग्रह करते समय इन बातों का ध्यान रखा गया है :—

(१) अश्लीलता या अनुचित शृंगार-रस न आवे।

(२) स्त्री-पात्र न आवें।

(३) परदों का विशेष उलझाव न रहे।

(४) यथासभव शिक्षा मिले।

सारांश यह, पुस्तक को यथासंभव सरल और उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें कहाँ तक सफलता हुई है इसका विचार सहृदय पाठक कर सकते है।

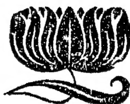
नाटक दृश्य काव्य है। नाटक देखने के लिए लिखे जाते हैं, केवल पढ़ने के लिए नही। कई नाटक जो पढ़ने में नीरस जान पड़ते हैं, खेले जाते समय रोचक प्रतीत होते है। अतः किसी नाटक को खेलने से ही उसके गुण-दोषो का विशेष पता लग सकता है।

यदि इस पुस्तक से कुछ लाभ हुआ, या इस प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता समझी गई, तो मैं इस दिशा में और दूर जाने का

प्रयत्न करूँगा, अथवा योग्य जनों के इस ओर ध्यान देने से और भी अधिक सफलता हो सकेगी ।

जबलपुर ।
१-५-१७

—नर्म्मदाप्रसाद मिश्र ।



द्वितीय संस्करण की भूमिका।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण आज से लगभग १४ वर्ष पूर्व, अर्थात् सन् १९१७ ई० मे, प्रकाशित हुआ था। हर्ष का विषय है, हिन्दी-साहित्य-संसार ने इसका अच्छा स्वागत किया तथा ५-६ वर्षों के भीतर ही इसका प्रथम संस्करण समाप्त हो गया; पर कई कारणो से इसका दूसरा संस्करण इसके पूर्व नहीं प्रकाशित किया जा सका। यहाँ पुस्तक की माँग बन्द नही हुई, बरन उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई, यहाँ तक कि लोग दुगने-चौगुने दाम देने को तैयार थे। कानपुर के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक "प्रताप" के १३ जनवरी, १९२९, के अंक मे छपा था—

"कुछ समय पूर्व 'सरल-नाटक-माला' नाम को पुस्तक जबलपुर मे प्रकाशित हुई थी। क्या वह अब किसी सज्जन के पास है? यदि हाँ, और वे यदि उसे बेचना चाहें तो पाँच गुना तक मूल्य मिल सकेगा। न बेचना चाहें, तो १० दिन को पढ़ने को भेज दें। उचित दक्षिणा लिखें।
—क्षेत्रपाल शर्म्मा, सुख-संचारक-कम्पनी, मथुरा।"

अब वही पुस्तक अनेक साहित्य-प्रेमी सज्जनो के अनुरोध से दूसरी बार प्रकाशित की जा रही है। अब की बार इसमे नं० ६, १२, १६, २१, २८, ३८ और ४७ प्रहसन-जोड़कर कुल प्रहसनो की संख्या ४४ से ५१ कर दी गई है।

अभिनय करनेवालों को सूचना।

---

(१) किसी भी सम्वाद आदि का अभिनय करने के पहले, उचित कपड़ो, परदो आदि की व्यवस्था कर लेनी चाहिए। कपड़ो आदि के विषय में अपने सुभीते के अनुसार व्यवस्था की जा सकती है। ध्यान केवल इस बात का रखना चाहिए कि जो वेशभूषा चुनी जाय वह पात्र के आचरण के अनुकूल हो, मौलवी को पंडित और पंडित को मौलवी न बनाना चाहिए।

(२) किस परदे को कहाॅ रखना, किसको कब गिराना एवं किसको कब उठाना, किस दृश्य मे कौन कौन से पात्र रहे और किस प्रकार आवें-जावें, आदि का निर्णय सम्वाद आदि को पढ़कर पहले ही कर लेना चाहिए।

(३) इस संग्रह मे शिष्ट लोगों की भाषा का ही प्रयोग किया गया है ताकि समझने में सुभीता हो; पर आवश्यकतानुसार ग्रामीण या स्थानीय भाषा का प्रयोग करने से अभिनय की रोचकता और भी बढ़ जाती है, जैसा कि "लड़कधोधो" नामक प्रहसन से जाना जा सकता है।

(४) हाव-भाव तथा स्वर के उतार-चढ़ाव पर विशेष लक्ष्य रखना चाहिए। उत्तम वेशभूपा तथा परदों के रहने पर भी, ठीक स्वर के बिना, अभिनय निर्जीव-सा रहता है।

अनुक्रमणिका।

बशर्त्तें कि

पात्र—

१—लाला अमीरचन्द—एक धनी पुरुष

२—एक उम्मेदवार नौकर

३—लाला अमीरचन्द का नौकर

स्थान—

एक धनी पुरुष का घर

(लाला अमीरचन्द बैठे हुए है)



[एक उम्मेदवार नौकर का प्रवेश]

उम्मेदवार नौकर—बाबूजी, बन्दगी।

लाला अमीरचन्द—बन्दगी। कहाँ रहते हो ?

उ० नौ०—जी, मेरा मकान यहाँ से थोड़ी दूर एक गाँव मे है।

ला० अ०—यहाँ किस काम से आये हो ?

उ० नौ०—हुजूर, मै नौकरी की तलाश मे हूँ। आपके यहाँ नौकरी मिल जाने की आशा से आया हूँ।

ला० अ०—क्या क्या काम कर सकते हो ?

उ० नौ०—जो जो हुजूर कहेंगे।

ला० अ०—अच्छा, वही-खाता लिख सकते हो?

उ० नौ०—हाँ हुजूर, लिख सकता हूँ बशर्ते कि रुपये-पैसे न लिखने पड़ें। नाम वगैरह सब लिख लूँगा।

ला० अ०—नहीं, सो कैसे होगा? अच्छा, रुपये गिनकर परख कर सकते हो?

उ० नौ०—हाँ अच्छी तरह, बशर्ते कि गिनने-परखने में हाथों में कालापन न आवे।

ला० अ०—यह भी न हुआ। अच्छा, तगादा वसूल कर सकते हो?

उ० नौ०—जरूर कर सकता हूँ बशर्ते कि आसामी बिना माँगे रुपया दे जाता हो।

ला० अ०—अजीब आदमी हो। जब बिना माँगे रुपये दे जावेगा, तो तगादा करने की जरूरत ही क्या है? तुमसे यह भी न हुआ। अच्छा, रात को मकान की चौकसी कर सकते हो?

उ० नौ०—क्यों नहीं, बशर्त्ते कि जागना न पड़े।

ला० अ०—खूब रहे। अच्छा, छोटे लड़कों को खिला सकते हो?

उ० नौ०—हाँ, बशर्त्ते कि कभी रोते न हों।

ला० अ०—नहीं, छोटे छोटे बच्चे अवश्य ही कभी कभी रोते हैं। खैर, इसे भी जाने दो। अच्छा, बग्घी पर सईस रह सकते हो?

उ० नौ०—जरूर रह सकता हूँ बशर्त्ते कि कभी जोती न जावे।

ला० अ०—अच्छा, अब आप यहाँ से जल्दी तशरीफ़ ले जाइए। आपकी यह "बशर्त्ते कि" कोई काम न देगी।

उ० नौ०—नहीं साहब, ऐसा न कहिए। बड़ी उम्मेद करके आया हूँ। साल दो साल के लिए ही रख लीजिए। निराश न कीजिए।

ला० अ०—आखिर तुमको रखकर करूँ क्या ?

उ० नौ०—जो हुजूर कहेंगे वह सब करने को तैयार हूँ। किसी तरह रख ही लीजिए।

ला० अ०—अच्छा, तुम्हारे बार बार कहने से रक्खे लेता हूँ, मगर हमसे नौकरी तथा खाने-पीने के लिए कुछ न माँगना।

उ० नौ०—वाह ! साहब ! ठीक रहा। आपके इस एक ही 'मगर' ने मेरी तमाम 'बशर्ते कि' को निगल लिया। माफ कीजिए।

ला० अ०—क्यों ? क्या नौकरी नहीं करोगे ? हाँ हाँ कहो 'बशर्ते कि' वही ...

उ० नौ०—नहीं साहब, अब 'बशर्ते कि' मगर के सामने हवा हो गई। अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिए।

ला० अ०—अच्छा, आज्ञा है। मगर जो इतना हैरान किया, इससे तुम्हारे कपड़ों को जाने की आज्ञा नहीं है।

(लाला अमीरचन्द का एक नौकर को बुलाना)

[नौकर का प्रवेश]

ला० अ०—(अपने नौकर से) अच्छा, इसके सब कपड़े-लत्ते उतार लो।

(नौकर का कपड़े उतारने के लिए तैयार होना)

उ० नौ०—हुजूर, हाथ जोड़ता हूँ। माफ करो। अब कभी ऐसा न करूँगा।

ला० अ०—अच्छा खैर, छोड़े देता हूँ, मगर अब कभी "बशर्ते कि" मुँह से न निकालना।

उ० नौ०—अब इतने पर भी 'बशर्ते कि' को मुँह से निकालूँगा ? अब तो उसकी जगह "मगर" ने ले ली।

ला० अ०—अच्छा, चुपचाप चले जाओ।

[उम्मेदवार नौकर का प्रस्थान]

भरोसे की भैंस पड़ा व्यानी

पात्र—

१—चित्तूलाल

२—भौंचक्कानन्द शास्त्री

स्थान—

रास्ता



प्रवेश पहला ।

चित्तूलाल—(स्वगत) क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसको अपना दुःख सुनाऊँ ? एक आपत्ति हो तो उससे बच भी सकता हूँ। यहाँ तो एक पर एक ग्यारह हो रही है । इन्हीसे तो पिण्ड न छूटा, यह और एक अचानक आ टूटी । इस समय मेरी दशा ठीक वैसी हो रही है जैसी राम-वनवास के समय भरत-जी की थी :—

ग्रह-ग्रहीत पुनि बात-वश, तेहि पुनि बीछी-मार ।
ताहि पियाइय बारुणी, कहहु कवन उपचार ॥

हा राम ! क्या करूँ ? कुछ भी हो; जो भाग्य मे बदा है उसे तो

भोगना ही पड़ेगा। मैंने ज्योतिषियों से पूछा तो कोई कहता है कि मुझे शनैश्चर लगा है, कोई कहता है फ़लानी .दशा आई है, और कोई कहता है फलाना क्रूर ग्रह लग्न पर पड़ा है; इसलिए यह दुःख भोगना पड़ा है। और, सबके सब एक मुँह से दान-पुण्य करने को कहते है। तो .खैर, दान-पुण्य तो अच्छी बात है। मै भी करने को तैयार हूँ। पर र र, दान-पुण्य अभी क्या काम देंगे ? यहाँ तो यह हाल हो रहा है कि यह करो या वह। और करने में :—"भइ गत साँप-छछूँदरि केरी।" दान-पुण्य तो फिर भी हो सकते है, अभी तो कोई ठीक सलाह देनेवाला मिले जिससे यह सिर की बला पहिले दूर की जाय। इन पण्डितों से तो अब कुछ काम नहीं निकल सकता। वे एक बाबाजी महाराज आये है। उनसे पूछा, तो वे अपने-कैसी लँगोटी लगाने की सलाह देते है। कहते है, यह सब संसार झूठा है, घर-बार छोड़ दो और बस, आनन्द से रामजी के आश्रय मे भजन करो। वे तो ऐसी ढेरों बातें बताते हैं। मेरा हाल तो ऐसा हो रहा है कि इन आपत्तियों के मारे मुझे मरने तक की .फ़ुरसत नहीं है। वैसे तो सभी सलाह देते है, पर जब सिर पर आती है, तभी मालूम होता है। मैं पहिले दूसरों को राय देता था कि ऐसा करो और ऐसा मत करो; पर अब मै ही दूसरों का मुँह ताकता हूँ। वाह रे दुःख! ज़रा भी दया नहीं! अरे वहाँ दया-मया काहे की ? किसीने क्या ही ठीक कहा है कि "बस दुःख मे ही दुःख होता, घाव मे ही घाव है"। हे ईश्वर! मुझ अभागे को क्यों जन्म दिया और जन्म ही दिया था तो ऐसा भाग्य-हीन क्यों बनाया ? बस, बस रोना ही हाथ है, पर रोने से होता ही क्या है ? इसलिए समय देखकर कुछ न

कुछ उपाय ही करना चाहिए। लोग यह न समझें कि मैं इन आपत्तियों से डर गया हूँ। अरे जो होना होगा सो तो होगा ही ; पर जी-जान से उपाय अवश्य करना चाहिए। वह कहीं कहा है न, कि सोते हुए सिंह के मुँह मे हरिण कुछ आप ही आप थोड़े चला जाता है। है कि नहीं ठीक, बेशक यार, हिम्मत नहीं हारना चाहिए। तो .... .. तो .... ..
अच्छा याद आया! वे एक पंडितजी महाराज और रह गये हैं। उनसे मैंने अभी तक नहीं पूछा। कहते हैं, वे न मालूम कितनी तो भाषाएँ जानते है और शास्त्र-मास्त्र, पुराण-मुराण के तो पूरे विद्वान् है। अरे, और न मालूम कितनी विद्याएँ जानते है। तो बस, उनके पास ज़रूर चलना चाहिए, पर सुना है कि वे बड़े क्रोधी है। कहीं भइया, ठोका-पीटी का रंग न आ जाय, नहीं तो फिर हमारी हुलिया ही बिगड़ जाय। पर अपन वह राह ही न चलेंगे जिसमें वे क्रोध करें। ऊँ! है कि नहीं? अच्छा हुआ जो उनके क्रोध का हाल याद हो आया। मैं पहिले ही से बड़ी होशियारी से बातचीत करूँगा कि जिसमे उनको क्रोध न आवे। अच्छा तो अब चलना चाहिए। किस तरफ से जाऊँ, यहाँ से कि वहाँ से ? अरे यहीं से सही (दाहिनी ओर कुछ आगे बढकर फिर बाईं ओर को लैाटता है) कहीं वे इस रास्ते से इसी ओर आ रहे हों तो? ख़ैर! अब आते होगे तो फिर देखा जायगा। चलो, इसी तरफ़ से मारें गोली।

(दाहिनी ओर को दो-एक क़दम बढ़ाता है और इतने ही मे नेपथ्य में कुछ आवाज़ सुनकर एक टाँग उठाये ही रुक जाता है)

(नेपथ्य से "पंडितजी प्रणाम," "पंडितजी प्रणाम" ऐसा शब्द होता है)

चित्तूलाल—(एक टाँग उठाये हुए और उसी ओर को ताकता हुआ) अरे, क्या वे ही पंडितजी आ रहे है ?



प्रवेश दूसरा ।

[भौंचक्कानन्द शास्त्री नेपथ्य से ही बकबक करते हुए आते है]

भौंचक्कानन्द—चुप रहो मूर्खो ! (यहाँ स्टेज पर आ जाते हैं) तुम्हीं लोग इस कलह की जड़ हो। सभ्यता किसे कहते है, यह तुम लोग बिलकुल नही जानते। हम तुम-ऐसे मूर्खों का मुख भी नही देखा चाहते। चलो, हटो यहाँ से।

चित्तूलाल—वाह रे भाग्य ! जिनको देखने जाता था वे यहीं मिल गये।

भौंचक्कानन्द—(चित्तू की ओर न देखकर, दूसरी ओर देखते हुए, गुस्से से) यह मै भली भाँति सिद्ध कर दूँगा। हाँ हाँ, शास्त्र के आधार से, भूधराचार्य के वचनों से, जो सब शास्त्रों के ज्ञाता और नैयायिकों के आदिगुरु है। उनके मत से सिद्ध कर दूँगा कि मेरा कथन अक्षरशः सत्य है।

चित्तूलाल—पण्डितजी महाराज ···· ··

भौंचक्कानन्द—तू जो कुछ कहता है उसका एक अक्षर भी मै नहीं मानूँगा और प्राणान्त तक मैं अपना मत सिद्ध किये बिना नही रह सकता।

चित्तू०—पण्डितजी को तो किसीने खूब चिढ़ा दिया है। पण्डि ·

भौं०—मै सब प्रकार से अपना कथन सिद्ध कर दूँगा। ठोंक-पीटकर या जैसे बनेगा वैसे।

चित्तू०—क्या मै इन्हे दिखता ही नहीं हूँ। शास्त्रीजी ······ ·

भौं०—मूर्ख कहीं का ! हमारे-सदृश विद्वान नैयायिकों में विवाद करता है। तर्कशास्त्र का नाम भी कभी सुना है ?

चित्तू०—महाराज, मैं क्या कहता हूँ, सुनिए—

भौं०—तेरे अर्थ का समर्थक इस त्रिभुवन में भी नहीं मिल सकता; जो कोई सुनेगा वही तेरा तिरस्कार करेगा।

चित्तू०—क्या करूँ ? (ज़ोर से) महाराजजी ....

भौं०—निर्बुद्धि ! तू क्या कहता है, यह तुझे विदित भी है ? अहंकारी कहीं का !

चित्तू०—(ज़ोर से) महाराज ! मैं दण्डवत करता हूँ।

भौं०—आनन्द रहो।

चित्तू०—पण्डितजी, मैं आपके पास कुछ पूछने आया हूँ। कृपा क

भौं०—(स्वगत) हिं ! उसके कथन में लेशमात्र भी सत्य है क्या ? किसी एक भी ग्रन्थ का आधार है क्या ? हिं: ! कैसा अहंकारी है !!

चित्तू०—(स्वगत) हाँ, अब कुछ शान्त हुए हैं। (प्रगट) महाराजजी ! यह सब क्रोध किसपर है ? सु

भौं०—अरे धूर्त ! हमारे-सरीखे शास्त्रियों का अपमान करता है। अभिमानी ! स्मरण रख, मैं शास्त्र के आधार से अपना कथन सिद्ध कर दूँगा और यह भी सिद्ध कर दूँगा कि तू बड़ा अहंकारी, महामूर्ख और ढपोलशंख है।

चित्तू०—(स्वगत) क्यारे भाई, कैसे बेढब आदमी से पाला पड़ा है ! शास्त्री मिले, तो भाग्य से ऐसे कि अपनी ही राग में मस्त हैं। मेरे अभाग्य से वह कौन मूर्ख आ पड़ा इनके सामने ? (प्रगट) शास्त्रीजी महाराज, इतना क्रोध आप किसपर कर रहे हैं, कहिए भी तो ?

भौं०—एक अज्ञानी पर। अभिमानी कहीं का! ऐसा धूर्त, त्रिभुवन क्या, नरक में भी नहीं मिलेगा।

चित्तू०—पर वह है कौन?

भौं०—एक धूर्त मेरे सामने आकर बिलकुल अशुद्ध और अप्रामाणिक बात कहता है! मूर्ख है वह।

चित्तू०—पर कहा क्या उसने?

भौं०—संस्कृत-व्याकरण के ज्ञान का गर्व रखकर चाहे जैसी भूलें करना! "प्रताप" अर्थ मे आनेवाली "कुट्ट" धातु को आत्मनेपदी कहना चाहिए क्या?

चित्तू०—कैसा कहा पण्डितजी?

भौं०—मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि "प्रताप" अर्थ मे आनेवाली "कुट्ट" धातु परस्मैपदी है, वह आत्मनेपदी नही है। और, इस धातु से बना हुआ "कुट्टनी" शब्द का अर्थ "बुरे आचरण वाली स्त्री" नहीं हो सकता। जब यह बात है, तो मेरे सामने कुछ का कुछ अर्थ क्यों करना। (जहाँ से आये थे उस तरफ देखकर) अरे ओ निर्बुद्धि! जा, व्याकरण फिर से पूर्ण रीति से पढ़कर आ।

चित्तू०—हाँ शास्त्रीजी, ठीक है! आपका कहना बहुत ठीक है। (स्वगत) यहाँ संस्कृत के नाम तो काला अक्षर भैंस-बराबर है। ठीक है या गल्ती है—यह कैसे बतलाँय? (उस तरफ़ को देखकर जहाँ से शास्त्रीजी आये थे) चल मूर्ख, ऐसे विद्वान, सब शास्त्रों को जाननेवाले पण्डितजी महाराज से बकबक करता है। तुझसा मूर्ख कौन होगा? वे कैसे विद्वान् है यह तुझे नहीं मालूम क्या? उनके समान कोई भी पण्डित इस संसार में है क्या? चल, हट यहाँ से—भाग जा! नालायक कहीं का! खैर! पण्डितजी, जाने दीजिए, वह तो गया। ज़रा

अब मेरी बात पर ध्यान दीजिए। मै कब से आपकी सेवा में खड़ा हुआ हूँ। मेरे मन मे

भौं०—(पूर्व वत् क्रोध से) दुष्ट कहीं का !

चित्तू०—महाराज, मेरी तो सुनिए। मै ···· ··

भौं०—कद्वद ! रासभ !

चित्तू०—(स्वगत) अभी ज़रा ठीक राह पर आये थे, ऐसा मालूम होता था कि अब मेरा काम निकल जावेगा, पर फिर तोप-से गोले बरसाने लगे। (प्रगट) पंडितजी महाराज, मै

भौं०—हमारे-सरीखे विद्वान के समक्ष ऐसा अभिमान ! भूल बतलाने पर हमसे देवानाम्प्रिय. (मूर्ख) कहता है ! अहंकारी, मूर्ख कहीं का !

चित्तू०—(स्वगत) क्या इन पण्डित बाबा का सब कुछ डूब गया ? क्या बात है, कुछ समझ मे नही आती, इतना क्रोध ये क्यो कर रहे है ? मै तो खड़े खडे उकता गया। हिं:, "कुटनी" पर ही बिगड़ रहा है भला आदमी। कहते है, कुटनी बुरे आचरण-वाली स्त्री नही होती। तो क्या होती है ? ऐसा ही अभी तक अपन सुनते आये है। फिर कौन जाने इन पंडितो के कैसे अर्थ होते है। खैर, मुझे इससे क्या करना है। (प्रगट) महाराज शास्त्रीजी, ज़रा मेरे कहने पर भी तो ध्यान दीजिए। मैं ···· ·

भौं०—मुझसे देवानांप्रियः (मूर्ख) कहेगा। मै सिद्ध करके बतला दूँगा कि कौन देवानांप्रियः है। मूर्ख, ज्ञान-लव-दुर्विदग्ध !

चित्तू०—चूल्हे में जाय यह सब। मैं कहॉ की आफ़त मे आ फँसा हूँ। पूछना-ताछना तो अलग गया, मूर्ख बना खड़ा हूँ। खड़े खड़े पैर दर्द करने लगे, पर अभी तक इन महात्माजी

का मुँह दर्द नहीं करता। महाराजाधिराज, सुनते हैं कि जाऊँ मैं . .

भौं०—कुट्ट "प्रताप" अर्थ में आनेवाली "कुट्ट" धातु को आत्मनेपदी, मैं प्राण जाने पर भी नहीं मानूँगा। चाहे मैं यह मान लूँ कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है जैसा कि चाहिए; परन्तु तौभी इस धूर्त का कहना कभी न मानूँगा।

चित्तू०—अरे बाबा, मानना या न मानना। मेरी भी तो सुनो जरा। अपनी इस कुट्ट-कुट्ट का फैसला फिर कर लेना। मुझे यहाँ आये एक घंटे से ज्यादा होने को आया। मैं आपके पास . . .

भौं०—क्षमा कीजिएगा! मुझे कुछ कोप आ गया था, जो एक योग्य बात पर था, जिसे . . . . .

चित्तू०—ख़ैर, वह सब जाने दीजिए। अब मेरी बात सुन लीजिए। मुझे आपसे कुछ पूँछना है, जो . . . .

भौं०—भला कहिए, आपको क्या पूँछना है?

चित्तू०—मुझे यह पूँछना है कि . .

भौं०—पर पहिले अपना नाम तो बतलाइए। आप कौन हैं?

चित्तू०—शास्त्रीजी, मेरा नाम चित्तूलाल है।

भौं०—क्या? चित्तूलाल?

चित्तू०—जी हाँ, पंडितजी।

भौं०—वाह, कैसा विचित्र नाम है! रामलाल, श्यामलाल, कृष्णलाल, राधेलाल, मोहनलाल आदि नाम तो सुनने में आये हैं और वे ठीक हैं; पर यह चित्तूलाल कैसा बेढब नाम है। मनुष्य बिलकुल आँख बन्द कर काम करते हैं। आजकल इन नामों की ऐसी कुछ प्रथा बिगड़ गई है कि जो कुछ मन में आया सो नाम रख दिया, चाहे उससे कुछ अर्थ निकलता हो

या नहीं। देवताओं के नाम के पश्चात् "लाल" लगाकर नामकरण किया जाता है, अथवा कोई अच्छा अर्थ लगाकर; पर यहाँ ढङ्ग ही निराला है। चित्तू भी कोई देवता का नाम है क्या ?

चित्तू०— खैर, इसे जाने दीजिए। मुझे जो पूछना है सो सुन लीजिए।

भौं०—अच्छा तो ऐसे नाम का उच्चारण फिर कभी हमारे सामने मत करना।

चित्तू०—बहुत अच्छा महाराजजी ! (स्वगत) आप ही ने नाम पूछा। बतलाया तो यह तुर्रा। खैर भइया, ऐसा ही सही। (प्रगट) हाँ तो सुनिए, महाराजजी।

भौं०—और सुनो।

चित्तू०—जी हाँ, सुनता हूँ।

भौं०—यह "महाराजजी महाराजजी" हमसे मत कहो। हम क्या कोई बाबा है ? हमसे "शास्त्रीजी" कहो।

चित्तू०—बहुत अच्छा मह··· अरे ··· शास्त्रीजी !

भौं०—हाँ तो कहो, तुम्हे क्या पूछना है ?

चित्तू०—मुझे

भौं०—पर सुनो। पहले यह बतलाओ कि तुम किस सरस्वती मे प्रश्न करोगे ?

चित्तू०—सरस्वती क्या शास्त्रीजी ? सरस्वती देवी ?

भौं०—हिंः ! कितनी तुच्छ बुद्धि का मनुष्य है। अरे, संस्कृत विद्या पढ़े हो ?

चित्तू०—जी नहीं, शास्त्रीजी !

भौं०—इसीलिए ऐसे मूर्ख हो। अरे मेरा यह कहना है कि तुम किस सरस्वती मे, किस ब्राह्मी मे, किस भारती में, किस गिरा

में, किस वाक् मे, किस वाणी मे, किस शारदा मे, किस भाषा मे, किस बैन मे, किस बोली मे बोलोगे ?

चित्त०—हाँ, अब समझ गया शास्त्रीजी ! मै इसी बोली मे बोलूँगा जिसमे बोलता हूँ ! दूसरी बोली पढ़ने कुछ स्कूल थोड़े ही जाऊँगा ।

भौ०—हिं: ! इस्कूल-फिस्कूल की बात कौन पूछता है ? हम जो पूछते है उसका उत्तर क्यो नही देते ? संस्कृत तुम जानते ही नही हो । तो फिर सौरसेनी, मागधी, द्राविड़ी, गौड़ी, पाली, बङ्गाली, सौराष्ट्री, सिहली, गुजराती, तैलङ्गी और उड़िया इनमे से किस भाषा मे बोलोगे ?

चित्त०—शास्त्रीजी ! इनमे से मै किसीमे न बोलूँगा ।

भौ०—तो फिर और दूसरी भाषाओं के नाम गिनाँय ? अच्छा सुनो

चित्त०—नही नही शास्त्रीजी ! अब मत गिनाइए । मै ही बतलाये देता हूँ कि मै हिन्दी मे बोलूँगा, हिन्दी मे ।

भौ०—(नाक सिकोड़कर) क्या हिन्दी मे ? अच्छा तो तुम मेरी ओर से मुँह फेर लो और इस ओर [दर्शको की ओर इशारा कर] मुँह करके बातचीत करो । कारण कि मेरे इन कानों मे देव-वाणी संस्कृत के शब्द गूँज रहे है और वे पवित्र है । जो प्राकृत से मिलती-जुलती हिन्दी है उसे मै सामने होकर नही सुनता, क्योंकि उससे वे संस्कृत के शब्द और मेरे ये कान अपवित्र हो जॉयगे ।

चित्त०—(स्वगत) इन विकट-मूर्त्तियो के सामने यही तो आफत का मुकाम है । सब काम निराले ! [प्रगट] अच्छा शास्त्रीजी, जो आज्ञा । (दर्शकों की ओर मुँह करके खड़ा हो जाता है, और फिर पूँछता है) तो अब बोलूँ शास्त्रीजी ?

भौं०—हाँ कहो, पर यह तो बतलाओ कि तुम किस देवता को मानते हो ?

चित्तू०—मै किसको बतलाऊँ शास्त्रीजी ! मै तो सभीको मानता हूँ ।

भौं०—हिं: ! यह और भी मूर्खता देखो । कैसा अज्ञान ! अरे मै एक देवता का नाम पूछता हूँ जिसे तुम सबसे अधिक मानते हो । कोई देवताओं के नाम मालूम है या नहीं ?

चित्तू०—मालूम है शास्त्रीजी, मालूम है । मै अभी बतलाता हूँ । आप न गिनाइए । मैं ·· मैं मै विष्णु भगवान् को मानता हूँ ।

भौं०—अच्छा ठीक है । तो तुम अवनि की ओर अपनी दृष्टि रक्खो । कारण कि विष्णु भगवान् शेषशायी है और शेषजी पर अवनि स्थित है । समझे ?

(चित्तू शास्त्रीजी के कहने का अर्थ न समझने के कारण यहाँ-वहाँ देखने लगता है)

भौं०—क्यो ? हमने क्या कहा ? क्या नहीं समझे तुम ? क्या अवनि का अर्थ नही मालूम ? अरे उसके भू, भूमि, क्षोणि, क्षिति, क्षमा, रसा, धरा, धरातल, धरित्री, धरनी, मही, मेदिनी, वसुधा, वसुन्धरा, अचला, वसुमती, जगती, धरती आदि नाम है ।

चित्तू०—(शास्त्रीजी के नाम गिनाते समय बीच ही में चित्तू दो एक बार यह कह देता है कि "समझ गया शास्त्रीजी, समझ गया" और फिर पृथ्वी की ओर देखता हुआ और शास्त्रीजी के बन्द होने की राह देखता हुआ कान पर हाथ धरकर खडा हो जाता है) अच्छा शास्त्रीजी ! अब मेरी विनती सुन लीजिए ।

भौं०—अच्छा कहो, तुम्हारा क्या कहना है ?

चित्तू०—मुझे आपसे एक गूढ़ बात के विषय में पूँछना है। मुझे आशा है कि आप जो राय देवेंगे उससे मेरा भला होगा और मैं आपका जन्म भर यश गाऊँगा। हाँ, तो वह बात यह है कि . .

भौं०—क्या वेदान्त या न्याय के विषय मे पूँछना है ?

चित्तू०—जी नही। मुझे ·· ··

भौं०—तो क्या यह पूछना है कि पाँच ज्ञानेन्द्रियो में मन की गणना है अथवा नही ?

चित्तू०—नही शास्त्रीजी, मुझे ·· ·

भौं०—कदाचित् यह पूँछना होगा कि ब्राह्मण के छै कर्मो में से सबसे श्रेष्ठ कर्म कौन सा है ?

चित्तू०—नही शास्त्रीजी, नहीं। मै बतला · · ···

भौं०—तो यह पूँछना होगा कि ज्योतिष शास्त्र है अथवा कला ?

चित्तू०—नहीं, नही, यह नही पूँछना। मै····· ··

भौं०—तो यह प्रश्न होना चाहिए कि शक्ति आठ है, अथवा नव ?

चित्तू०—मै कहता तो हूँ जो कुछ मुझे पूँछना ······ ··

भौं०—दश वायु में पञ्चप्राण की गणना है या नहीं ? यह प्रश्न होगा ?

चित्तू०—न यह है और न वह। पहिले मेरा·········

भौं०—हूँ, हूँ, ! तो ······ताप तीन है अथवा बिलकुल नही ऐसा प्रश्न होना चाहिए ?

चित्तू०—नहीं है, नही है। मै जो कहता हूँ उसे तो सुन लो·····

भौं०—तो यह होगा कि जो कार्य आरम्भ मे अच्छा होता है वह वास्तव मे शुभ फल देनेवाला होता है क्या ?

चित्तू०—मुझे यह कुछ नही पूछना। मै कितने बार कहूँ कि· · ···

भौं०—हाँ, हाँ ! विदित हुआ कि तुम्हारा यह प्रश्न नहीं है। अच्छा

सुनो। तुम्हारा प्रश्न यह अवश्य होगा कि मनुष्य सृष्टि का मुकुट है अथवा नहीं ?

चित्त०—अरे महाराज नहीं नहीं शास्त्रीजी, मेरा यह प्रश्न नहीं है। आप ज़रा सुनें तो

भौं०—तो तुम्हारा प्रश्न सांख्य अथवा मीमांसा के विषय में होगा ?

चित्त०—अरे राम ! बड़ी आफ़त ! कहता तो हूँ कि मुझे यह कुछ भी नहीं पूछना। आप तो अपनी ही

भौं०—तो पतञ्जलि-कृत योगविधि के विषय में तुम्हारा प्रश्न अवश्य ही होना चाहिए ?

चित्त०—(ज़ोर से) नहीं है, नहीं है, नहीं है, नहीं है, नहीं है। कितने बार कहूँ कि नहीं है। सुनते गुनते कुछ है ही नहीं, लगे अपना . . .

भौं०—(भौंहे सिकोड़कर) अच्छा तो कहो तुम्हारा क्या प्रश्न है ?

चित्त०—मैं तो कब से कहने के लिए तड़फ रहा हूँ, पर आप सुनें तब न। मुझे यह पूछना है कि

भौं०—अच्छा, मैं सुनता हूँ कहो।

चित्त०—हाँ शास्त्रीजी ! बस ऐसे ही ज़रा शान्त होकर मेरा प्रश्न सुन लीजिए और मुझे ठीक ठीक सलाह दे दीजिए। देखिए, मैं आपके पास कब का आया हूँ। मुझे तो . . .

भौं०—कैसा विचित्र जीव है ? अरे मैं खड़ा तो हूँ सुनने के लिए। कहता क्यों नहीं है ? इस भूमिका की क्या आवश्यकता है ?

चित्त०—अच्छा अच्छा, शास्त्रीजी, सुनिए। मुझे कुछ दिनों से

भौं०—तुम्हें जो कुछ कहना हो उसे बहुत ही थोड़े शब्दों में कह डालो।

चित्त०—अच्छा शास्त्रीजी, ऐसा ही सही। मुझे . . .

भौं०—हाँ तो कहो ; पर व्यर्थ बातों की भरमार न करना।

चित्तू०—बहुत अच्छा ! मुझे यह पूछना है कि . .

भौं०—अपना आशय बहुत ही संक्षेप में कह दो।

चित्तू०—हाँ, हाँ, वैसा ही कहता हूँ। सुनिए तो

भौं०—मैं सिर के पीछे से हाथ घुमाकर नाक पकड़ना ठीक नहीं समझता। जो कुछ कहना हो थोड़े से शब्दों में कह डालो।

चित्तू०—फिर आफ़त आई। अरे शास्त्रीजी, मैं वैसा ही करता हूँ। आप सुनिए तो। आपकी न मालूम कैसी आदत . .

भौं०—हाँ तो कहो ; पर देखो, अपने विचार प्रगट करने में आकाश-पाताल न मापना।

चित्तू०—फिर वही बात। सुनोगे भी कि वैसे ही बकबक . . . .

भौं०—हाँ, हाँ, शीघ्रता करो। अपने विचार इस रीति से प्रकट करना कि (चित्तू०—इस समय झुँझलाकर यह कहता हुआ कि "चूल्हे में जाय यह सब पंचायत" एक ओर जाने के लिए क़दम बढ़ाता है) अरे क्यों, क्या पूछना चाहता है, पूछता क्यों नहीं; और उल्टा कुपित होकर यहाँ से जाता है ? जा, निकल यहाँ से, मूर्ख कहीं का ! तू तो उस "कुट्टप्रतापे" को आत्मनेपदी कहनेवाले की अपेक्षा अधिक मूर्ख मालूम होता है। हमारे-सरीखे शास्त्रियों का तू ऐसा अपमान करता है। मैं तुझे शास्त्र के आधार से सिद्ध कर दूँगा कि तू बिल्कुल अज्ञान, महामूर्ख और शंख-शिरोमणि है, और यह भी सिद्ध कर दूँगा कि मैं बड़ा दिग्गज विद्वान् षट्शास्त्री हूँ। मेरा तीनों लोक में कितना मान है। अरे, मेरे एक चेले की समानता रखनेवाले तो पृथ्वी के चारों खूटों में नहीं हैं; इसीसे तो उसका नाम श्रीचौखटानन्द शास्त्री पड़ा है। फिर मेरा क्या पूछना है। मेरी विद्वत्ता को देखकर मनुष्यों ने मुझे अगणित उपाधियाँ

दी है और वे उस विद्वत्ता का परिचय पाकर आश्चर्य से भौंहे चढ़ाकर भौचक्के से रह गये है। इसीसे तो मेरा नाम श्री श्री श्री १०८ श्रीविद्वन्‌रत्न त्रिलोकभूषण पण्डितराज राजमुकुट-शिरोमणि महामहोपाध्याय भौचक्कानन्द शास्त्री है। (जाने लगता है)

चित्तू०—खा जाओ अब मेरा सिर। शठशास्त्री है और फलाने शास्त्री है। ज़रा कुछ पूॅछा सो

भौ०—(फिर लौटकर) अरे मलिन बुद्धि ! सुन [चित्तू०—"अरे बाप रे ! फिर आ गया" कहकर सिकुड़कर खड़ा हो जाता है] मै सर्वशास्त्र-पारङ्गत और सकल-वेद-विशारद हूॅ। (जाने लगता है)

चित्तू०—आज क्या शास्त्रीजी ! जन्म भर का क्रोध मुझपर ही बघारेंगे ? न मालूम, मेरी जान बचती है या ...

भौ०—(फिर लौटकर) अरे मूर्ख ! मै सब विद्याओं का बृहस्पति, सर्व-शास्त्र-रूपी समुद्रो का अगस्त्य, वेद और पुराणो का वेद-व्यास, व्याकरण और शिक्षा का पाणिनि, और न्याय का गौतम हूॅ। (जाने लगता है)

चित्तू०—अच्छा महाराज! तुम सब कुछ हो ! अब पधारो। मै तो .

भौ०—(फिर लौटकर) अरे निबुद्धि ! और सुन ! मैंने जैमिनि की मीमांसा को जड़ से उखाड़ लिया है, कणाद के वैशेपिक के कण कण अलग कर दिये हैं, कपिल के सांख्य को कॅपा दिया है, पिङ्गल-कृत छन्द को चुङ्गल मे रख लिया है, मनु के कल्प को मन मे भर लिया है, वशिष्ठ के ज्योतिप को इष्ट कर डाला है; यास्क के निरुक्त का टास्क कर डाला है, पाणिनि-

कुन (व्याकरण) शिक्षा को भिक्षा मँगा दी है और पतञ्जलि को तो अञ्जलि में पी डाला है। [चला जाता है]

चित्त०—बहुत अच्छा किया शास्त्रीजी, जो आपने सबको पी डाला है, अब मुझे बचने देना। (जिस ओर शास्त्री जाते हैं उसी ओर देखकर) शायद गये। अब तो अच्छी बात है। अब न लौटे यही ग़नीमत है। राम राम ! देख लिया शास्त्रीजी को। अब कान पकड़ा जो इनके पास फिर कभी आऊँ। "एकहि बार आस सब पूजी, अब कछु कहब जीभ कर दूजी।" जैसा मैं पहिले था वैसा का वैसा बना रहा। इन विकट मूर्ति ने कुछ न बताया और उल्टे तीन-पाँच करते हुए चले गये। मुझे बड़ी आशा थी कि इनसे मेरा काम निकल जायगा, पर वही हाल हुआ कि "भरोसे की भैस पड़ा ब्यानी।" अब चले, घर ही की ओर मरे। देखें वहाँ क्या हो रहा है। मालूम होता है, भङ्ग का नशा उतर गया, इसलिए कुछ बेचैनी-सी मालूम होने लगी है। तो पहिले अड्डे की ही तरफ़ चलकर भङ्ग महारानी की सेवा करें। वही इस सब विपत्ति को टालेगी। बस, "छोड़ सब कामों को ग़ाफ़िल, भङ्ग पी उर दण्ड पेल"। (यह कहता हुआ चला जाता है)



भाव और अभाव

पात्र—

१—चन्द्रशेखर—एक कवि

२—मनोहर—उसका एक ग़रीब नातेदार

३—चन्द्रशेखर का रसोइया

दृश्य पहिला।

[स्थल—कविवर्य का उपवन]

(उपवन के एक कुंज मे चन्द्रशेखर आकाश की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। इसी अवसर पर मनोहर प्रवेश करता है)

चन्द्र०—कौन ? मनोहर ?

मनो०—हाँ भैयाजी, मै ही हूँ।

चं०—(विचार करके) क्यो भला, मनोहर! इस समय तुम किस काम से मेरे पास आये हो ?

म०—(सिर नीचे झुकाकर) आपसे वह बात कहने में मुझे लज्जा लगती है, परन्तु क्या करूँ ? घर में तो आज के लिए भी अन्न नहीं है, इसलिए आपके बताये उस काम के लिए······

चं०—(खिन्न होकर) काम ? इस समय कौनसा काम ले बैठे हो ? शरत्काल का यह रमणीय सायंकाल ! इस मनोहर समय मे

किसी काम-काज की बातें भला क्यों निकालते हो ?

मनोहर—भैयाजी, क्या आपको त्रास देने के हेतु ही मैं इन शब्दों का उच्चारण करता हूँ ? नहीं, कदापि नहीं। यह सब केवल इस पेट की अग्नि को . . .

चं०—पेट की अग्नि ! छिः छिः ! तुम-सरीखे मनुष्यों को तो इस प्रकार के शब्दों का उच्चारण तक नहीं करना चाहिए।

मनोहर—यदि आपकी आज्ञा है, तो न बोलूँगा, परन्तु भैयाजी ! हम-जैसों की आँखों के सामने तो सदा वही अग्नि दिखती रहती है।

चन्द्र०—क्या कह रहे हो मनोहर ? अग्नि सदा तुम्हारी आँखों के सन्मुख दिखती है ! क्या वह प्रशान्त, सुन्दर एवं रमणीय सायंकाल में भी रहती है ?

मनोहर—हाँ भैयाजी ! इस समय में तो वह और भी अधिक उग्र स्वरूप में प्रकट होती है। आज सवेरे किसी तरह दो-चार कौर भात खाकर मैं मजदूरी की खोज में बाहर निकला हूँ, तब से अभी तक मेरे मुँह में पानी का एक बूँद भी नहीं गया है।

चन्द्र०—न गया होगा। यदि नहीं खाया है, तो उससे हर्ज ही क्या है ? यह कोई बड़ी बात नहीं है।

(मनोहर कुछ नहीं बोलता, थोड़ी देर तक मस्तक खुजाता रहता है)

चन्द्र०—वाह ! इस रमणीय शरत्काल में, इस सुन्दर ज्योत्स्ना के विस्तृत साम्राज्य में भी मनुष्यों को पशु के समान आहार की आवश्यकता है ? यह तुम्हें सूझा भी कैसे ? इस चन्द्र-प्रकाश, पुष्पों की इस मधुर गंध, मंद मंद बहनेवाले इस समीर का सेवन करने से भी मनुष्य की जीविका चलेगी।

मनोहर— (भय-युक्त धीमी आवाज़ में)—भैयाजी, यह सच है कि

मनुष्य की जीविका उत्तम रीति से चलेगी, परन्तु केवल इन पदार्थों से ही उसका रक्षण होना कठिन है। इनके अतिरिक्त भी मनुष्य को कुछ न कुछ खाने की आवश्यकता है ही।

चन्द्र०— (क्रोधित हो) तो जाओ, यहाँ से चले जाओ। जो तुम्हे भावे सो खाओ। तुम्हारे जैसे अरसिकों को इन रम्य वस्तुओं की क्या पहचान ? जाओ। पेट मे दो कौर भात ठूँसने से ही तुम्हारे समान अरसिक जनों का समाधान हो जाता है। चले जाओ। मेरे इस उपवन मे तुम जैसे अरसिकों के आने का कुछ भी अधिकार नहीं है।

मनोहर—भैयाजी ! वे कौर भी कहाँ है ? (कविवर्य को और अधिक क्रोधित होते हुए देखकर) भैयाजी, आपका कहना बिलकुल सच है। आपके इस बाग मे केवल हवा से ही मनुष्य की आत्मा शान्त हो जायगी। उसे और कुछ भी खाने की इच्छा ही न होगी।

चन्द्र०—(आनन्द से) तुम्हारे मुँह से ऐसी बात सुनकर मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ है। हाँ, यह बात तुम निःसन्देह मनुष्य के समान बोले। चलो-चलो-अब हम यहाँ-वहाँ फिरें। ऐसे अवसर पर एक ही ठौर बैठे रहने मे आनन्द नहीं आता। चलो, घूमें।

मनोहर—चलो, (स्वगत) बाहर क्या ठंड पड़ी है। मेरे बदन पर तो पूरे कपड़े तक नहीं है।

चन्द्र०—वाहवाह ! चहुँओर क्या रमणीयता फैली है। देखो, शरत्काल कितना आह्लाद-कारक होता है !!

मनोहर—सच है भैयाजी, सच है। परन्तु तनिक ठंडी बह रही है।

चन्द्र०—(बदन पर ओढ़ी हुई शाल को तनिक सँभालकर) तुम तो कुछ तो भी कहते हो। हवा बिल्कुल ठंडी नहीं है।

मनोहर—नहीं, इतनी ठंडी नहीं।

(थरथर काँपता है)

चन्द्र०—(आकाश की ओर देखकर) वाहवा! इस दृश्य का अवलोकन करते ही सृष्टि मुग्ध हो जाती है। शुभ्र मेघ-रूपी नौकाएँ नील-आकाश-रूपी सरोवर मे राजहंस के समान तैर रही है और चन्द्र मानो बीच बीच मे ...

मनोहर—(और भी अधिक काँपता है) थ-थ-थ-थ

चन्द्र०—और चन्द्र मानो ...

मनोहर—अ-र-र-र-र-कैसो ठंड है ?

चन्द्र०—(मनोहर को जोर से धक्का देकर) क्यो मनोहर, यह चन्द्रमा मानो—यह बीच बीच मे

मनोहर—(बैठकर) भै-भै-भै-या-या-जि-जि-जि-ज़-ज़ रा-बैठो।

चन्द्र०—(क्रोध-युक्त मुद्रा धारण कर मनोहर को दूर ढकेल देता है) तुम बड़े गँवार और नीच मनुष्य हो। यदि तुम्हे इस प्रकार की अरसिकता दिखलाकर दाँत कटकटाना था, तो फिर यहाँ मरने को क्यो आये? अपनी झोपड़ी के एक कोने मे कम्बल या गोदड़ी ओढ़कर बैठे रहना था। ऐसे समय इस रम्य उद्यान ...

मनोहर—(भय-युक्त होकर) भैयाजी! इस प्रकार क्रोधित न हूजिए। इस समय कुछ भी नहीं है। मु-मुझे (स्वगत) याने न शाल है और न गोदड़ी भी।

चन्द्रशेखर—शरद्काल की यह अपूर्व शोभा देखकर मुझे एक सुंउदर कविता का स्मरण हो आया है—

"सुंउदर उपवन माँहिं विकससीत-त-त रम्य मनोहर ब्रकुल

मनोहर—(जोर से छींकता है) अः! च्छोः!!

चन्द्रशेखर—मनोहर ब-कुल ...

मनोहर—अः-च्छोः-अच्छोः !

चन्द्र०—सुनो मनोहर ! बकुल—

मनो०—अच्छोः—

चन्द्र०—चलो, निकल जाओ यहाँ से—निकलते हो कि नहीं, कि बुलाऊँ किसी नौकर को ?

मनो०—अः च्छोः-भैयाजी, अच्छोः भैयाजी !

चन्द्र०—यहाँ से इकदम अपना मुँह काला करो।

मनो०—भैयाजी ! यह देखिए मैं चला। अब आपके इस बाग़ में एक क्षण भर भी रहने की मुझे लालसा नहीं। यदि मैं यहाँ से न गया, तो निःसन्देह मेरे प्राण मेरी देह का त्यागकर उपवन के बाहर चले जायँगे। अच्छोः। मेरी नासिका से शरत्काल की रमणीयता निकल रही है। मुझे भय है कि कहीं रमणीयता के साथ मेरे प्राण ही बाहर न निकल भागें। अच्छोः ! अच्छोः !

(चन्द्रशेखर मनोहर की ओर ध्यान न दे बदन में लपटी हुई शाल को अधिक दृढ़ लपेटकर चंद्रमा की ओर दृष्टि लगाता है)

[कविवर्य का रसोइया प्रवेश करता है]

रसोइया—भैया साहेब, रसोई तैयार है !

चंद्र०—क्यों रे ? हरामज़ादे ! आज रसोई के लिए इतनी देरी क्यों की ? ठहर, तुझे निकाल ही देना पड़ेगा। रसोई बनाने के लिए क्या दो घंटे लगते है ? कितनी देर से मैं क्षुधा से पीड़ित हूँ। तुझे क्या मालूम कि मेरे पेट में कब से भूख अनर्थ मचा रही है ? नालायक, हरामज़ादा, मूर्ख (रसोइया भयभीत होता है और दौड़ता हुआ चला जाता है)

(पटाक्षेप)

ढफोलशंख और शास्त्रार्थी

पात्र—

१—ढफोलशंख

२—शास्त्रार्थी

ढफोल०—नमस्ते ।

शास्त्रार्थी—नमस्तू ।

ढफो०—आप कौन है ?

शा०—तुम कौन हो ?

ढफो०—मै शास्त्री हूँ ।

शा०—मै शास्त्रार्थी हूँ ।

ढफो०—आप शास्त्रार्थ करना अच्छा जानते मालूम होते है ।

शा०—आप-सरीखो को हराता फिरता हूँ ।

ढफो०—आपने कौन शास्त्र अध्ययन किया है ?

शा०—महाशय, आपसे कह चुका हूँ कि धर्म मे मेरी बहुत पहुँच है, अपने सामने किसीको टिकने नहीं देता ।

ढफो०—आपने कौनसे धर्म-ग्रन्थ पढ़े है ?

शा०—वाह, अच्छी पूछी, सब ग्रन्थ ही तो पढ़े हैं। सुश्रुत-स्मृति, वाग्भट्टाद्वैतमीमांसा, चरकजी का व्याकरण, यजुःपुराण, विष्णुर्वेद, शाक्लिवेद, संगीत पूरनमल, किस्सा सिपाहीजादा, तोता-मैना, साढ़े तीन यार का वेदान्त, शकुन्तला की बनाई हुई

कालिदास नाटिका इत्यादिक धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन-मात्र किया है।

ढफो०—धन्य है आपको! आपने बड़ी बड़ी अद्भुत पुस्तकों का अध्ययन किया है। आप विलक्षण मालूम होते हैं।

शा०—मूषकादीनां विलम तद्वत् अक्षिणी यस्य स विलक्षण', अर्थात् चूहे इत्यादिक चौपायों के बिल की तरह जिसकी आँखें होती हैं वह विलक्षण कहलाता है।

ढफो०—ओहो हो हो हो, वाह वाह, धन्य आपको, व्याकरण तो आपको सिद्ध ही है। आप पूरे शास्त्रार्थी मालूम होते हैं।

शा०—कहता तो हूँ कि पहिले मेरा जन्म पंजाब में हुआ। वहाँ मैं शंकराचार्य कहलाने लगा और नास्तिकों को हराया। अब मेरा पुनर्जन्म भू-भार उतारने को हुआ है। सो धर्म ही धर्म मुझे अच्छा लगता है।

ढफो०—वाह! क्या अच्छा शब्द है 'धर्म'! क्यों शास्त्रीजी इसकी व्युत्पत्ति क्या है?

शा०—आप तो अपनेको शास्त्री बताते थे, आपको यह भी नहीं मालूम?

ढफो०—अजी, मैं तो यों ही बकता था। भला आप-सरीखे दिग्गजों के सन्मुख मैं क्या कह सकता हूँ?

शा०—ठीक है, "काले के सामने चिराग नहीं जलता"। अच्छा तो हाँ; धर्म की व्युत्पत्ति। हाँ सुनिए, वेदान्त भाष्यकार तो यों कहते हैं कि "धर मारयतीति धर्मः," यानी जो धर मारे, अर्थात् मनुष्य को किसी काम का न रक्खे उसको धर्म कहते हैं। अब इसका दृष्टान्त यह देखिए कि आजकल भारतवर्ष में सनातनधर्म के नाम से कोई एक धर्म प्रचलित है। सनातनधर्म किस चिड़िया का नाम है यह तो कोई नहीं जानता, पर हाँ;

उसके नाम से एक लकीर पिट रही है जिसमे कि संडे-मुसंडे बाबाजियो को यथाशक्ति दान देना पड़ता है, मन्दिरो मे रड़ियाँ नचवानी पड़ती है खासकर मुसलमानियाँ—और कभी कभी ठाकुरजी को भी पैसा दो पैसा मिल जाता है। इसमें सब कुकर्म हो सकते है। पर जात-पाँत की छुआछूत बन्द नही हो सकती।

ढफो०—महाराज! यह तो आपने बड़े अचम्भे की बात सुनाई कि ठाकुरजी को भी पैसा दो पैसा हाथ लग जाता है। क्योंजी, क्या ठाकुरजी भी ऐसे भुखमरे हो गये? क्या उनका बिल्कुल ही दिवाला निकल गया?

शा०—भाई, यह तो मै नही कह सकता कि दिवाला निकल गया या क्या हुआ, पर लोगो को रिश्वत देते मैने देखा है।

ढफो०—रिश्वत कैसी?

शा०—गीता मे श्रीकृष्ण निष्काम-उपासना करना लिख गये है, पर यहाँ तो जब मुकद्दमा होता है या बीमारी होती है, तब जहाँ सत्यनारायण की कथा का लालच दिया या कृष्णजी के मन्दिर मे पैसे रक्खे कि काम बना।

ढफो०—और इस धर्म का अनुयायी होने से मनुष्य को रिश्वत इत्यादि मे बहुत खर्च करना पड़ता है जिससे उसके पास कुछ नही रह जाता है; इसीलिए शायद आपने 'धर्म' शब्द की वैसी व्युत्पत्ति की?

शा०—हाँ, तभी हमने कहा कि जो आदमी का बिल्कुल ही दिवाला निकाल दे वही धर्म है। यदि आपको शंका हो, तो शास्त्रार्थ कर लीजिए।

ढफो०—आप-सरीखे विद्वानो के सन्मुख भूत भी भाग सकते है! फिर भला मै क्या शका कर सकता हूँ?

शा०—भूमिं तृप्यतीति भूत।

ढफो०—धन्य है, धन्य है !

शा०—यदि कुछ शंका हो, तो शास्त्रार्थ कर लीजिए ।

ढफो०—नहीं महाराज, कुछ शंका नहीं है। कृपया बतलाइए कि विदेश जाने के विषय मे आपकी क्या सम्मति है ?

शा०—जो विदेश से आकर बहुत से रुपये महीने की नौकरी मिले तो चला जाय, थोड़ो की मिले तो न जाय ।

ढफो०—क्या बहुत से रुपयो के पीछे धर्म छोड़ दे और थोड़ो के पीछे नहीं ?

शा०—विगत देशं यस्मात् स विदेशी, अर्थात् जिसके भीतर से देश निकलकर भाग जाय वह विदेशी ।

ढफो०—ओहो ! संस्कृत तो आपकी बहुत ही बढ़िया है। क्यो महाराज, जिसके भीतर से देश भाग जाय वह विदेशी या जो देश से भाग जाय वह ?

शा०—वह एक ही बात है। शंका हो, तो शास्त्रार्थ कर लीजिए।

ढफो०—धन्य है आपको, मुझे कोई शंका नहीं है। कृपया यह तो बतला दीजिए कि आप कौन से धर्म के अनुयायी है ?

शा०—अनुगच्छतीति अनुयायी, अर्थात् जो पीछे चले वह अनुयायी, यानी जो फिसड्डी रह जाय वह अनुयायी। हम अनुयायी नहीं है, क्योंकि हम सबसे आगे चलते है।

ढफो०—महाराज, धन्य है आपको ! क्यो महाराज, क्या चंडू पीना भी शास्त्र में लिखा है ? यदि नहीं लिखा, तो फिर ये संन्यासी लोग क्यो पीते फिरते हैं ?

शा०—सुश्रुतकार कहते है कि 'चिलम डुनातीति चंडू', और 'सर्वाणि वस्तूनि नाशयतीति संन्यासी', अर्थात् जो सबका नाश करे वही संन्यासी। फिर चिलम के भीतर से चंडू के नाश करने में दोष ही क्या है ?

ढफो०—वाह महाराज, तर्क-शास्त्र तो आपको बिलकुल ही कंठस्थ है।

शा०—मैं सब बातों का ज्ञान रखता हूँ। आप मुझे अज्ञानी समझते हो, तो शास्त्रार्थ कर लीजिए।

ढफो०—नहीं जी, आप तो बड़े ही विद्वान् हैं। आपसे बातें करने को बहुत जी चाहता है, पर क्या करूँ, अब समय नहीं है। फिर मिलूँगा।

शा०—कब मिलोगे ?

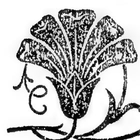
ढफो०—यदि हो सका, तो होली पर मिलूँगा।

शा०—अच्छा।

ढफो०—नमस्ते।

शा०—नमस्तू।

[प्रस्थान]



गप्पो और सप्पी

पात्र—

१—गप्पी

२—सप्पी

गप्पी—भाई ! क्या मैं आपसे पूँछ सकता हूँ कि आप कौन है, और कहाँ से आये है ?

सप्पी—हाँ, मैं तो आदमी हूँ और माँ के पेट से आया हूँ।

गप्पी—भाई साहिब ! आदमी तो सभी है, और माँ के पेट मे भी सभी आये है; पर यह तो बतलाइए कि लोग आपको क्या कहकर पुकारते है और कृपया यह भी कहिए कि आप कहाँ पर रहते है ?

सप्पी—(मुसकराकर) साहिब, यह तो आपने ख़ूब पूछा कि लोग आपको क्या कहकर पुकारते है ? मै क्या कहूँ ! कोई मुझे बेटा, कोई चाचा, कोई मामा, कोई दादा आदि न जाने क्या क्या कहकर पुकारा करते है। और, यह तो सभी जानते है कि मै पृथ्वी पर रहता हूँ।

गप्पी—ख़ैर जाने दीजिए; पर यह तो बतलाइए कि आपका आना कब हुआ ?

सप्पी—मै आपको सच्चा समझ ठीक ठीक ही बतलाये देता हूँ। बात तो यह है कि एक पैसा तो मुझे कल मिला था और तीन

पैसे आज। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से आज ही पूरा आना हुआ है। आप तो कहिए, आप यहाँ कब आये ?

गप्पी—भाई ! मै भी तुमसे झूठ न बोलूँगा। मुझे आये क़रीब पचास वर्ष हो गये।

सप्पी—भाई ! क्या यह बतलाने की आप कृपा करेंगे कि यहाँ पर आप कैसे आये ?

गप्पी—मै अपना दुखड़ा क्या रोऊँ ! सवारी कुछ थी ही नही, इससे टाँगो पर आया हूँ।

सप्पी—बड़े अचम्भे की बात है कि जो एक ही टाँगे पर आता है वह बड़े शौक़ से कहता है कि मै टाँगे की सवारी पर आया हूँ, पर आप कई टाँगो पर आये है, और फिर भी कहते है कि सवारी कुछ थी ही नहीं ?

गप्पी—भाई साहिब ! जान पड़ता है कि आपका ज्ञान बहुत चढ़ा-बढ़ा है। कहिए तो, आपकी अवस्था क्या है ?

सप्पी—भाई, मेरी अवस्था अच्छी नहीं, क्योंकि मै हमेशा बीमार रहा करता हूँ।

गप्पी—अच्छा ! अच्छा ! आप कब तक रहेंगे ?

सप्पी—यह तो आपने ख़ूब पूँछा। क्या कोई भी जीवन से हाथ धोना चाहता है ? और यह तो सुनाइए कि आपकी सवारी कबतक जावेगी ?

गप्पी—यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि "आपकी सवारी कब जावेगी।" जब मै जाऊँगा, तब मेरी सवारी भी जावेगी।

सप्पी—क्या आप यह जानते है कि इस शहर मे बड़ा कौन है ?

गप्पी—जी हाँ, मै जानता हूँ। इस शहर में बड़ा एक बड़ का पेड़ है।

सर्प्पी—मैं यह नही पूँछता। मै तो यथार्थ मे यह जानना चाहता हूँ कि यहाँ सबसे बडा आदमी कौन है ?

गप्पी—यहाँ पर हलकू कोरी सबसे बड़ा आदमी है; क्योकि उसकी ऊँचाई ५ हाथ की है।

स०—भाई ! आप कितने बच्चो के बाप है ?

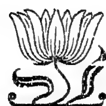
ग०—आपकी दया से मै "लवरुवा", "लफङ्गा" और "दोंदा" इन तीन बच्चो का बाप हूँ।

स०—कहिए तो जब आपकी शादी हुई तब लवरुवा कितना बड़ा था ?

ग०—मुझे लबरुवा के उमर की खबर तो नही है, पर सबसे छोटे लड़के "दोंदा" की उमर सचमुच उस समय ७॥ (साढ़े सात) वर्ष की थी।

स०—भाई ! जान पड़ता है कि हम तुम दोनो सभी गुणो मे एक से हैं। अच्छा, अब अति-काल हो गया, फिर कभी मिलेगे।

[प्रस्थान]



पंडित और मौलवी

पात्र—

१—पंडित

२—मौलवी

स्थान—

दिल्ली का एक चौरस्ता

[एक पंडितजी खड़े है, दूसरी ओर से एक मौलवी साहब आते हैं]

मौलवी—आदाब अर्ज़ जनाब !

पंडितजी—आशीर्वाद। स्वस्तिरस्तु।

मौ०—मिज़ाज शरीफ।

पं०—हाँ, मुन्नाराम के चिरंजीव पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार कराने को प्रस्तुत हूँ।

मौ०—इसका मतलब ? मेरा सवाल तो दीगर ही था !

पं०—सत्य है, आजकल दुर्भिक्ष के कारण—

मौ०—आपको हुआ क्या है ? मै क्या कहता हूँ ?

पं०—हाँ, उत्तरीय भारत में—

मौ०—अजी, भारत की लड़ाई से मेरी मुराद नहीं है।

पं०—समझ गया, समझ गया, सम्राट् ने मुराद्‌ को दक्षिण विजय करने को भेजा है। यही न ?

मौ०—मै यह पूछता हूँ कि आप .खैरियत से तो है ?

पं०—हाँ, खैर मँहगाई के कारण अत्यन्त दुर्लभ है, खैर-रहित ताम्बूल चर्वण किया करता हूँ।

मौ०—है ! ससक्रीरित के आलिम बिल्कुल बेवकूफ हुआ करते है। .खैरियत से खैर-कत्थे का मतलब निकालते हो ! .खैर !

पं०—मौलवी साहब, एक प्रमाण मिला है कि 'न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि,' अर्थात्—

मौ०—लाहोल विला कूवत, क्या इसी मुर्दा ज़बान मे लियाकत हासिल की है ? एक शेर है—

पं०—अरे बाप रे ! कहाँ है वह शेर ! शेर तो सिंह को कहते है न ? त्राहि माम मौलवी, त्राहि माम् (डर के मारे कॉपता है)

मौ०—अजी, आप कॉपते क्यो है ? किस बात का खौफ है ?

पं०—बस, भक्षण ही कर जायगा। पंडितानी को विधवा होना पड़ेगा।

मौ०—ऐं ! पंडितानी का यहाँ क्या तअल्लुक़ है ? पंडित क्या है, एक अजीब माजरा है।

पं०—माजरा अशुद्ध है, 'मार्जार' कहिए। मार्जार अर्थात् विल्ली आपके शेर के ऐसी होती है—

मौ०—कहाँ पंडितानी, कहाँ बिल्ली ! ह ह ह ह !

पं०—समझ गया !

मौ०—क्या समझा ?

पं०—यह कि मेरी स्त्री और मार्जार अर्थात् बिल्ली—

मौ०—याने उल्लू—

पं०—ना, मेरी स्त्री बिल्ली के समान सावधान रहती है, तिस पर

भी मै उसपर शेर के समान गुर्राया करता हूँ। स्त्री सत्ययुग की है।

मौ०—अबे, नालायक़। कुछ अक्ल भी रखता है? ऐसी बात कर रहा है गोया पागल हो गया हो।

पं०—गोया क्या? हाँ, यवन राज्य मे गो-वध तो अनिवार्य्य सा हो गया है।

मौ०—कौन इसके आगे झख मारे?

पं०—"झखो मत्स्य" इत्यमरः। झख अर्थात् मछली का मारना तुम्हारा धर्म ही है। यवन हो न?

मौ०—बेहूदे, तुझे हुआ क्या है?

पं०—दो पुत्र, एक पुत्री। पर मेरे नही, मेरे स्त्री के हुए है।

मौ०—हर दफे इस्तरी इस्तरी कह रहा है। क्या तू धोबी है जो कपड़े पर इस्तरी फेरता है?

पं०—हरे कृष्ण! मै धोबी! मै हूँ कान्यकुब्ज परम कुलीन ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण! जानते हो?

मौ०—क्या कानकबज़ है! कब्ज़ तो पेट मे हुआ करता है, कहीं कान मे भी कब्ज़ होता है? या इलाही!

पं०—आजकल इलाहीबख़्श प्रधान मंत्री है। वे तो बड़े सज्जन पुरुष हैं।

मौ०—अबे कमबख़्त, इलाही से मेरा मतलब ख़ुदा से है। यह कहता हूँ कि इन्सानों में भी, जो कि 'अशफ़ुल मख़्लूक़ात' कहे जाते है, तुझ ऐसे अक़्ल के दुश्मन मौजूद है।

पं०—हिन्दू मुसलमान मित्र ही कब थे। दुश्मन का अर्थ शत्रु है न?

मौ०—मित्तर सत्तुर क्या?

पं०—अर्थात्—

मौ०—ख़ामोश हो जाओ। बोलने की लियाक़त नहीं, पंडित बना फिरता है।

पं०—मैंने उत्तमा परीक्षा—

मौ०—बस, बस, जियादा मत बोलो।

पं०—मैं काव्यतीर्थ, न्यायरत्न—

मौ०—फिर वही टें टें।

पं०—और व्याकरणाचार्य—

मौ०—क्यों, नहीं मानेगा?

पं०—ऊँ हूँ।

मौ०—धत्तेरी पाजी की।

पं०—क्या मैं पाजी भी नहीं समझता? अपशब्द क्यों कहता है?

मौ०—मुआफ़ कीजिए, पंडितजी महाराज! ...ला साहब! खफ़ा क्यों होते हैं?

पं०—फिर तो कहना? मुझसे क़िबला कहते हो?

मौ०—क़िबला कहने में बेजा ही क्या किया?

पं०—तू क़िबला, तेरा बाप किबला। और भी किबलिया!

मौ०- हट हट! बड़ा बेवकूफ़ है!

पं०—बस, अब कभी किबला न कहना!

मौ०—क्यों क़िबला साहब?

पं०—फिर वही अपशब्द। ले अब—

(मारने को दौड़ता है, मौलवी भी मारता है, दोनों में ख़ूब मारपीट होती है, बचाने के लिए एक मुंशीजी आ जाते हैं)

मुंशी—मौलवी साहब, ख़ामोश हो जाइए। पंडितजी, आप भी चुप रहिए। बात है क्या? बड़े दुख की बात है कि आप लोग पढ़े-लिखे होकर गँवारों की तरह लड़ रहे हैं।

मौ०—इसी कमबख्त से दरयाफ़ कीजिए।

पं०—हमसे किबला साहब कहता है, भला हम व्यर्थ किसीके अपशब्द सहन कर सकते है ?

मुंशी—पंडितजी, यह कोई अपशब्द नही है। यह तो बड़प्पन का शब्द है।

मौ०—क्या कहता है ?

मुंशी—पंडितजी किबला लफ्ज के मानी किसी गाली में लेते है।

पं०—मैने इसका बिगाड़ा ही क्या था ? आपुस में वार्त्तालाप हो रहा था कि—

मुंशी—"किबला" गाली नहीं है।

पं०—कैसे नही है ! हमसे एक वार संपतराय चौबे ने इसका अर्थ बतलाया था। इससे बुरी कोई गाली ही नही है।

मुंशी—क्या अर्थ बतलाया था ?

पं०—यह कि मैं ता जामातृ हूँ ! क्या यह छोटी-मोटी गाली है ? मेरी एकमात्र पुत्री को कोई गाली दे सकता है ?

मौ०—क्या कहता है ?

मुंशी—(हँसते हुए) क्या कहूँ ? एक मसखरे ने पंडितजी को किबले का कुछ का कुछ मतलब बतला दिया है। पंडितजी की राय मे किबले का यह मतलब है कि 'मैं तेरा दामाद हूँ'।

मौ०—हट हट ! क्या ख़ूब ! पंडित फ़ारसी उर्दू तो समझता नही, जैसा सुना वैसा मान लिया। आप इसे समझा दीजिए।

मुंशी—पंडितजी, चौबेजी ने आपसे अंटसंट अर्थ बतला दिया है। इसका यह अर्थ नही है।

पं०—फिर क्या है

मुंशी—"पूज्यवर"।

पं०—ऐसा !

मुंशी—हाँ।

पं०—तब तो मै किबला साहब हूँ, मेरा घर भर किबला है। (मौलवी से) क्षम्यताम् , मौलवी साहब, क्षम्यताम।

मौ०—क्या कहता है ?

मुंशी—आपसे मुआफी माँगते है। ज़रा से हेरफेर मे आप लोगो मे इतना गुत्थमगुत्था हो गया। न आप पंडितजी की ज़बान समझते है, न पंडितजी आपकी। आप लोग 'हिन्दुस्तानी' क्यो नहीं बोलते ? यह वक्त न तो फारसी ही का है और न संस्कृत का। जब तक एक जबान, एक भाषा, न होगी, तब तक हम लोग अपनी बाते एक दूसरे को कैसे सुझा सकते है ? एक जबान का होना सबसे ज़रूरी है। मौलवी साहब, आप कुछ कुछ हिन्दी सीख लीजिए। पंडितजी, आप भी बोल-चाल की हिन्दी बोला कीजिए, संस्कृत के शब्द ठूँसने से कोई लाभ नहीं।

पं०—तो क्या संस्कृत भुला दूँ ? संस्कृत देववाणी है और फारसी राक्षसी भाषा।

मुंशी—संस्कृत देववाणी हो, चाहे जो हो, पर फारसी राक्षसी भाषा कैसे होगी ? यह आपकी भूल है। पंडितजी, बिना हिन्दी हिन्दुस्तानी के आपका काम ही नहीं चल सकता। क्या आप राज-दरबार मे "भवति भवतः भवन्ति" कहते फिरेंगे ?

मौ०—क्या उर्दू से हिन्दी मे कोई खास सहूलियत है ?

मुंशी—जी हाँ। हिन्दी हुरूफो में आप चाहे जिस जुबान का मज़-बून हूबहू लिख सकते है। यह बात आपकी फारसी या दीगर जुबानों मे नहीं है। आपके यहाँ लिखा कुछ जाता है, पढ़ा कुछ जाता है।

मौ०—कैसे ?

मुंशी—जैसे, 'आलू बोखारा' को 'उल्लू बेचारा', 'किस्ती' को 'कसबी', 'सुनार' को 'सितार', 'किताब' को 'कबाब', 'दुआ' को 'दगा' पढ़ते है। यह बात हिन्दी मे नही है। मेरी तो यह राय है कि कुछ लिखापढ़ी हिन्दी मे होनी चाहिए, और ज़ुबान वह बोलनी चाहिए जिसे हिन्दू और मुसलमान दोनो ही आसानी से समझ सके।

मौ०—ठीक है, मै हत्तुल मकदूर कोशिश करूँगा।

मुंशी—कहिए, पंडितजी, अब तो कभी आप ऐसी व्यर्थ की लड़ाई न लड़ेंगे ?

पं०—कदापि नही। मै भी यथाशक्ति 'उर्दू' अध्ययन करने की चेष्टा करूँगा।

मुंशी—हाँ, तभी आप देश और जाति की भलाई कर सकेंगे। अच्छा, अब मै जाऊँगा।

(जाता है)

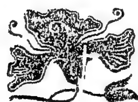
मौ०—पंडितजी, आप किधर तशरीफ ले जायँगे ?

पं०—हूँ। ले जायँगे।

मौ०—अच्छा, आदाबअर्ज़।

पं०—आशीर्वाद।

[दोनो जाते है]



मज़ेदार छींक

पात्र—

१—चौपट और खौपट नाम के दो विद्यार्थी

२—गुरु चौपटानन्द शास्त्री

दृश्य पहला।

[चौपट और खौपट का प्रवेश]

चौपट—(खौपट को धक्का देकर) आहा! कहो दोस्त खौपट, तुम तो आजकल दसहरे के नीलकंठ बन गये हो। बड़ी माला-वाला डाले हो। कहो यार, बात क्या है?

खौपट—सुनो भैया, अँग्रेज़ी वँग्रेज़ी को तो धता मार दिया है। अब तो चौपटानन्द शास्त्री के पास देववाणी का अभ्यास चालू है।

चौ०—किसके पास?

खौ०—चौपटानन्द के पास।

चौ०—तब तो मेरे नाम-राशी ही हुए। क्या वे बहुत विद्वान् हैं?

खौ०—वाह! उनकी समानता का तो मुझे कोई इस भूतल पर भी नहीं दिखता।

चौ०—तो फिर दोस्त, उनके दर्शन किस प्रकार हो? हम ग़रीबों से तो वे भला काहे को मिलेंगे?

खो०—राम राम ! वे ऐसे नहीं है। वे तो हर एक से मिलते-जुलते है। पर हाँ, यह तो बताओ, तुम्हे उनसे मिलने की ऐसी कौन सी आवश्यकता आ पड़ी है।

चौ०—विद्वानो के दर्शन तो वैसे ही शुभ होते हैं। इसके सिवाय मुझे उनसे एक विशेष कार्य के विषय मे सलाह लेना है।

खो०—वह क्या भाई ?

(चौपट ज़ोर से खोपट के सामने छींकता है)

खो०—यह क्या ?

(चौपट फिर छींकता है)

खो०—अरे यार, साफ साफ कुछ कहोगे भी कि छी छी करोगे ? इससे मै क्या समझूँ ?

चौ०—ठीक है। आपने बक दिया। छिँ छिँ। पर मेरी तो यही छिँ छिँ जान खाये डालती है।

खो०—सो कैसे ? मेरी तो समझ मे भी नहीं आता कि छींक तुम्हारी जान कैसे खाये डालती है। देखो, साफ साफ कहो, बात क्या है ?

चौ०—रोज़ रोटी खाने को बैठते ही मुझे एक छींक होती है।

खो०—रोज़ ! यह तो बड़ी विचित्र बात दिखती है।

चौ०—हाँ भाई, रोज़। और दोनो वक्त भोजन करने को बैठते ही।

खो०—(बड़े आश्चर्य से) ग़ज़ब है भाई। यह क्या भेद है समझ मे ही नहीं आता। तुम तो ज़रूर इसके विषय मे कुछ न कुछ जानते होगे ?

चौ०—हाँ, पर वह कहाँ तक विश्वास-योग्य है यह मै नहीं जानता।

खो०—वह क्या ? सुनाओ तो सही।

चौ०—इसमें तो कोई शक नही है कि २० साल तो मुझे ही भुगतते हो गये हैं। इससे इतनी पुरानी छींक तो हो ही गई है, पर

ऐसा भी सुनते है कि यह छींक हमारे घराने मे तीन पुश्त से चली आ रही है।

खौ०—वाह ! अरे कुछ कहोगे भी कि योंही बकोगे ? (हाथ पकड़कर झकझोरता है) कहो, वात क्या है ? कैसी तीन पुश्त से ? साफ साफ कहो।

चौ०—सुनो ! मेरी माँ कहती थी कि मेरे आजा एक बार रोटी खाने बैठे थे। उसी बीच मे एक बिल्ली आकर उनके कटोरे का दूध पीने लगी।

खौ०—फिर ?

चौ०—फिर क्या था ? उन्होंने उसे इतने जोर से ललकारा कि बस वह तो वहीं पर ढेर हो गई।

खौ०—क्या भाग गई ?

चौ०—नहीं जी, भाग नहीं गई, वहीं मर गई।

खौ०—(आश्चर्य से) मर गई ! तो फिर ?

चौ०—तो फिर क्या ? उसी दिन से ये छींक महारानी हम लोगों के गले पड़ गई है।

खौ०—(आश्चर्य से) छींक से और बिल्ली मरने से क्या सम्बन्ध है ?

चौ०—तुम तो बड़े आश्चर्य से कहते हो कि उसमे क्या सम्बन्ध है, पर मै कहता हूँ कि सब कुछ सम्बन्ध है।

खौ०—भाई, भाँग तो नहीं पिये हो ?

चौ०—तुम्हे ऐसा ही सूझता है। यह तो वही मसल ठहरी कि आप मरे और जग हँसे।

खौ०—भाई, जल्दी साफ साफ कहो। मुझे गुरुजी के यहाँ जाना है।

चौ०—भैया, आजा ने उसे एक प्रकार से मार ही डाला था। इसीसे उसकी अकाल-मृत्यु हुई। उस हत्या का प्रायश्चित्त भी

उन्होंने कुछ नहीं किया था। अब उसी समय से वह छोटी सी चुड़ैलन बनकर हम लोगों के गले, छींक बनकर, पड़ गई है। रोज़ रोटी खाने को बैठते ही वह अपनी हत्या का स्मरण दिला देती है। मेरे बाप ने उसका क्रिया-कर्म भी काशीजी में कर दिया था; न जाने फिर भी वह मेरा पिंड क्यों नहीं छोड़ती।

खौ०—उसमें हर्ज ही क्या है? आने दो, एक छींक नहीं, दो सही। आने दो। उसमें अपना हर्ज ही क्या होता है?

चौ०—सो तो मैं कही चुका हूँ कि दो तो रोज आती हैं, पर कभी बीच में कुछ खा लेता हूँ तो तीन-चार छींक फड़ाफड़ आती हैं। और कहीं किसीके यहाँ न्यौता हुआ, तब तो क्या कहना है मानो छींकों का जुलाब ही लग जाता है। दो दो घण्टे तक बराबर फड़ाफड़ की झड़ी लग जाती है।

खौ०—तब तो चिन्ता की बात है। न जाने किस दिन साँस रुक जाय और प्राण छू हो जाँय। चलो, मैं तुम्हें अभी गुरुजी से मिलाये देता हूँ। वे तो स्वरोदय के पूर्ण ज्ञाता हैं। उन्हें तो नाक के एक एक विकार का पूरा पूरा ज्ञान है। चलो (दोनों जाते हैं)

[पीछे का पर्दा उठता है]

———

दृश्य दूसरा।

(गुरुजी बैठे हैं। चौपट और खौपट का प्रवेश)

चौपट और खौपट—प्रणाम, गुरूजी।

गुरु—चिरंजीव रहो। खौपटा, आज तुम्हारे साथ में यह नई मूर्ति कौन है?

खो०—गुरुजी, ये मेरे एक मित्र हैं। आपके दर्शन करने को पधारे हैं। इन्हें आपसे एक विशेष कार्य में सम्मति लेनी है।

गुरु—(चौपट की ओर उत्सुक हो) हाँ हाँ, सहर्ष कहो। क्या है? पर शीघ्रता करो, क्योंकि अन्य कार्य भी निबटाना है।

चौ०—(हाथ जोड़कर) महाराज, मेरे आजा के हाथ से एक बिल्ली मर गई थी। उसका उन्होंने कोई प्रायश्चित्त नहीं किया। उसी दिन से उनको भोजन करने के पहिले एक छींक होती थी।

गुरु—बिल्ली कैसे मरी? लकड़ी इत्यादि से, या धोखे से?

चौ०—महाराज, वे रोटी खा रहे थे। इतने में बिल्ली दूध पीने लगी तो उन्होंने जो ललकारा कि बस, वह उसी जगह मर गई।

गुरु—तब तो हत्या हुई। हाँ, फिर क्या हुआ?

चौ०—गुरुजी, आजा मर गये तो फिर पिता को भोजन के समय छींक आती रही और अब मुझे भोजन के समय आती है। मैं कुछ भी चिन्ता न करता यदि वह मुझे एक ही बार आती।

गुरु—तुम्हें कैसी आती है?

चौ०—गुरुजी, घर में तो केवल भोजन के समय आती है? पर कहीं न्यौता इत्यादि हुआ, तब तो फिर क्या पूछना है। दे झड़ाझड़ यहाँ तक कि कभी कभी नाक से मलाई की नदी बह निकलती है। कभी सूखी छींकें घण्टों आती हैं, इसीसे न्यौता खाना छोड़ बैठा हूँ।

गुरु—बड़े आश्चर्य की बात है। (खोपट से) जाओ तो, मन्दिरसे जो प्रसाद आया है उसे तो ले आओ। [खोपट का प्रस्थान] (चौपट से) चिन्ता की बात नहीं है। मैं शास्त्र-विधि से उसका अन्य प्रायश्चित्त करा दूँगा। फिर सब झगड़ा शान्त हो जावेगा।

चौ०—(पैर पड़कर) गुरुजी, बड़ी दया होगी। समझूँगा, आप ही ने मुझे बचा लिया।

[खैापट भोग लेकर आता है]

गुरु—चिन्ता छोड़ दो। देखो, यह थोड़ासा प्रसाद है। इसे खाओ।

चौ०—(हाथ जोड़ और गिडगिडाकर प्रसाद अस्वीकार करता है) नहीं महाराज, क्षमा करो। आपही का दिया तो रोज़ खाता हूँ।

चैा०—(नहीं करता जाता और हाथ जोड़ता और पैर पकड़ता है) गुरु महाराज, क्षमा कीजिए। मै आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता। क्या करूँ? लाचार हूँ। नहीं तो प्रसाद ग्रहण करने में संकोच ही क्या था।

खैा०—(चौपट से) मूर्ख, गुरुजी के रहते भी डरता है?

चैा०—भाई, क्या करूँ?

गुरु—अच्छा खाओ, मैं कहता हूँ कि तुम्हे कोई आपत्ति न होगी।

चैा०—(गुरुजी से) महाराज खाता हूँ; पर आप मंत्र अवश्य पढ़ते जाना, नहीं तो बड़ी बला मे पड़ जाऊँगा। (दर्शको की ओर मुँह बनाता है और खाना आरंभ करने के पहिले मिठाई हाथ मे लेते ही छीक होती है। पेड़ा जल्दी जल्दी खाता है। कभी गुरु की तरफ़ विस्मित हो देखता है, कभी दर्शकों की तरफ़, खाता और बीच बीच मे छीकता है।)

गु०—इसी प्रकार रोज़ छींक होती है?

चैा०—नही महाराज, जब दूसरो के यहाँ भोजन करता हूँ, तब इसी प्रकार होती है। यह तो मिठाई है, इससे सूखी छीक आ रही है। कही पूड़ी-कचौड़ी आदि होती तो अभी तक तो आधा घर नाक से भर जाता। (खाता जाता है) महाराज देखिए, मैंने रोका था न, पर आपने न माना, ख़ैर (छीकता है और खाना ख़तम होने पर भी छीकता है)

(गुरुजी और खौपट विस्मित होकर दर्शकों की ओर कौतुक दर्शाते है)

गु०—अब तो भोजन समाप्त हो गया है, पर छींकों का अन्त क्यों नहीं होता ?

चौ०—(जोर से छींकता है) गुरुजी, यह तब तक बन्द न होगी जब तक . .

गु०—कब तक ?

चौ०—जबतक कुछ मलाई न खा लूँगा।

गुरु—(खौपट से) शीघ्र ला। (चौपट पर हाथ फेरते हुए) बडी आफ़त मे है। परमात्मा ! शान्ति कर। बहुत हुआ (कुछ मंत्र बड़बड़ाते है। मलाई आती है। चौपट खाकर दर्शकों की ओर मुसकराता जाता है और समाप्त होने पर लंबी साँस लेता हुआ चुप बैठ जाता है)

गुरु—देखो जी, बहुत शिथिल हो गया है।

खौ०—महाराज, यह छींक मलाई खाने से क्यों शांत हो जाती है, मेरी समझ मे नहीं आता।

गु०—मूर्ख ! इसमें कौन से कौतुक की बात है। जानता नहीं है कि बिल्ली दूध पीते समय मरी है ? इससे उसे ज्यों ही मलाई मिल जाती है, तो उसकी आत्मा संतुष्ट हो जाती है।

चौ०—(हाथ जोड़कर बहुत उत्सुक हो) हाँ महाराज, यही कारण होगा; पर मै ग़रीब रोज़ इतनी मलाई कहाँ पा सकूँगा ? कृपाकर कुछ प्रायश्चित्त करा दीजिए जिससे हमेशा को इसका पिंड छूटे।

गुरु—(खौपट से शास्त्र की पोथी जो बैठक मे रक्खी है मँगवाते है) यह पुस्तक तो उठा (गुरु उसे देखते है और चौपट शांत चित्त हो हाथ जोड़कर बैठता है) मिला प्रायश्चित्त, पर न मिले के बराबर है।

चौ०—सो कैसा गुरुजी ?

गु०—इसमे लिखा है कि ब्राह्मण को यदि सोने की बिल्ली बनवाकर पुण्य कर दी जावे तो प्रायश्चित्त हो जाता है।

चै०—महाराज, यह तो राजा लोग कर सकते है। यह कैसा शास्त्र है? यह तो ग़रीबो के लिए पक्का दुश्मन दिखता है। महाराज, देखो ग़रीब के वास्ते भी कुछ न कुछ ज़रूर लिखा होगा। नही तो आप ही बताइए, क्या करना चाहिए।

गुरु०—अच्छा, तुम चाँदी की बिल्ली बनवा लो। सो भी, उतनी बड़ी नही, छोटी सी बनवा लो। बस, काम चल जावेगा।

चै०—महाराज, भला ऐसे समय में चाँदी कहाँ रक्खी है? कुछ ग़रीबी राह बताइए।

गुरु०—(जल्दी से) अच्छा, ५ सेर शक्कर की बिल्ली बनवाकर पुण्य कर दो।

चै०—महाराज! जैसे गुड़ होवे तो कोई नुकसान है क्या?

गुरु०—(सोचकर) अच्छा, यदि गुड़ है तो कोई चिन्ता नहीं, पर थोड़ी मिश्री उसमे अवश्य चाहिए।

चै०—(पैर पकडकर) हाँ महाराज, ऐसी ग़रीबी राह बताइए। अच्छा, तो मै ले आऊँ (जाता है)

(गुरुजी शास्त्र फिर देखने लगते है)

चौपट—(स्वगत) वाहरे चौपटे! सच में तुमने हमारे गुरुजी का नाम सार्थक किया।

चै०—(दौड़कर एक दोने मे मिश्री लिये आता है) महाराज, गुड़ तो कल भेज दूँगा, क्योकि घर दूर है। (मुहल्ले का नाम लेता है) आज संकल्प पढ़ दीजिए।

(गुरुजी संकल्प पढते है। चौपट दोना रखके पैर पड़ता है और उसमे की मिश्री फिर से उठाकर कड़ाकड़ चबाता है]

गुरु०—मूर्ख, यह क्या करता है?

चौ०—महाराज, देखता था कि छींक तो नहीं आती और आपका मंत्र कहाँ तक सफल हुआ। मालूम हो गया कि आपका मंत्र सच्चा है।

खौ०—(हँसता है और दर्शकों से कहता है) देखो, चौपट ने गुरुजी को पक्का चौपटानंद बनाया कि नहीं ?

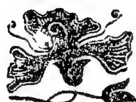
गुरु०—अच्छा, अब वह गुड़ भेज देना। मैं किसी कार्य से बाहर जाता हूँ। खौपटा, तुझे अब कल पढ़ाऊँगा (जाता है)

खौ०—(चौपट से) क्यों रे ! क्या गुरु ही को मूँडना था ?

चौ०—बेवकूफ। वे तो रोज़ हम लोगों को मूड़ा ही करते हैं। मैंने उन्हे मूड़ा तो क्या अचम्भा हो गया ? क्या नहीं जानता कि चोर का धन चंडाल खाता है, पर तुझ-जैसा पापी सदा हाथ ही मलता रह जाता है।

[खूब हँसता और छींकता है]

(परदा गिरता है)



लड़कों की परीक्षा

पात्र—

१—नायब मास्टर

२—सात लड़कों की क्लास

[लड़के क्लास मे बैठ रहे है। नायब मास्टर का प्रवेश]

क्लास का कप्तान—(लड़को से) खड़े हो। प्रणाम।

(सब लड़के प्रणाम करते है)

नायब मास्टर—तुम लोग बैठना मत। आज हम परीक्षा लेते है।

रामलाल—तो क्या पंडितजी, खड़े खड़े परीक्षा होगी ?

ना० मा०—हाँ। और क्या परीक्षा बैठके होती है ? अच्छा बताओ, टापू किसे कहते है ? नारायण।

नारायण—जिसके चारो ओर जल हो।

ना० मा०—जैसे ? सदाशिव।

सदाशिव—जैसे, जब हम तालाव मे नहाने को खड़े होते है, तो हमारे चारो तरफ़ पानी हो जाता है और हम उसी दम टापू बन जाते है।

ना० मा०—ठीक है। अच्छा, टापू का उल्टा क्या है ? गोविन्द।

गोविन्द—टापू का उल्टा कैसा ? पंडितजी।

ना० मा०—अरे टापू का उल्टा होता है। तुम नहीं जानते। रामलाल, तुम कहो।

रामलाल—टापू का उल्टा पूटा।

ना० मा०—अरे तुम भी गधे हो। तुम भी कुछ नहीं जानते। तुम नापास हो। अच्छा, मुर्गी औसत मे १०० अंडे देती है। नारायण, तुम बताओ, औसत किसे कहते है?

नारायण—जिसमे मुर्गी १०० अंडे देती है।

ना० मा०—ठीक। अच्छा, अब एक सवाल और बताओ। अगर एक आदमी एक गॉव को ५ दिन मे पहुँचता है, तो सात आदमी कितने दिन मे पहुचेगे? सदाशिव।

सदाशिव—३५ दिन मे, पंडितजी।

(लड़के हँसते है। सदाशिव चुप है)

ना० मा०—ठीक।

रामलाल—तो क्या पंडितजी, हम सातो लड़के गॉव को जायँगे तो ३५ दिन लगेगे, और अकेला सदाशिव जायगा तो ५ दिन लगेगे? वाह! यह तो अच्छी बात है! कही जल्दी जाना हो, तो अकेले ही जाना चाहिए। बरात के साथ कभी न जाना चाहिए।

ना० मा०—आदमी अधिक होते है, तो दिनो की संख्या भी अधिक होती है। यह बात तुम नही जानते। तुमको तो हमने नापास कर ही दिया है। बैठ जाओ।

सदाशिव—पंडितजी, आपने रामलाल को तो नापास कर ही दिया है, पर यह तो बताइए कि रेल मे बहुत से आदमी जाते हैं; पर उनको तो ज़्यादा दिन नहीं लगते?

ना० मा०—क्यो नही लगते? भीड़ के मारे गाड़ी कभी कभी एक दिन की देरी से पहुँचती है। ऐसा क्यो होता है? आदमी अधिक होने से समय भी अधिक हो जाता है। अच्छा बताओ, सर्वनाम किसे कहते है, रामलाल? इस प्रश्न का उत्तर दो, तो हम तुम्हे पास कर देगे।

रामलाल—पंडितजी, सर्वनाम उसे कहते है जो शब्दयोगी की व्याख्या बतलावे ।

ना० मा०—ठीक है । उदाहरण दो, नारायण ।

नारायण०—लड़के रोटी खाते है ।

ना० मा०—ठीक । तुम पास हो । अच्छा, बताओ, गोविन्द !

गोविन्द—क्या बताएँ, पंडितजी ?

ना० मा०—(सोचते हुए) कुत्ता किसको कहते हैं ?

गोविन्द—जो अपनी पूँछ हिलाता है ।

ना० मा०—ठीक । पास । अब अखीरी सवाल सब बताओ । "मरना" क्रिया है । "मरते है" सामान्य वर्तमान काल है । अच्छा, यदि हम कहे कि "हम मरेंगे", तो "मरेंगे" क्या होगा ?

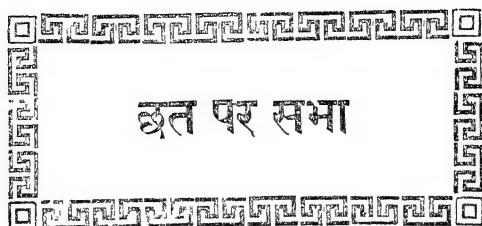
सब लड़के—छुट्टी होगी ।

(घंटी बजती है)

ना० मा०—अच्छा, अब बाकी परीक्षा कल होगी ।

[पटाक्षेप]





छत पर सभा

पात्र—

गंभीर आकृति का एक मनुष्य

(भोली सूरत के एक मनुष्य का प्रवेश)

कल रात को दो बजे टाउनहाल की छत पर एक सभा हुई थी। सब दुर्गुणों से युक्त और ढपोलशंख समझकर लोगों ने मुझे ही सभापति बनाया। यदि वे लोग मुझे अपना सभापति न भी बनाते, तो भी मैं ज़बरदस्ती सभापति के आसन पर बैठ जाता। क्यों भाई, मैं तो न्याय का पक्षपाती हूँ। मुझसे अन्याय नहीं देखा जाता। यदि मुझ-जैसे योग्य व्यक्ति के रहते हुए वे लोग किसी कुपात्र को अपना सभापति बनाते, तो मैं अवश्य ही बदल पड़ता। यह अन्याय मुझसे तो सहा न जाता। पर अच्छा हुआ, ऐसा अवसर न आया, नहीं तो क्रोध में आकर न जाने मैं सौ को मारता कि दो सौ को। बिचारी सभा भी मारी मारी फिरती। सबसे बड़े दु:ख की बात तो यह थी कि टाउनहाल की छत टूट जाती तो बड़ी हानि होती। अस्तु।

हमने जान-बूझकर सभा में बेञ्चे और कुर्सियाँ नहीं रक्खीं। एक एक खपरे पर दो दो व्यक्ति आनन्द-पूर्वक बैठ सकते थे। हमारी सभा में उजेले की आवश्यकता न पड़ी, क्योंकि उससे भी

अधिक शक्तिशाली भयङ्कर काला काला अंधकार वहाॅ पहिले से ही उपस्थित था। इतना ही नही, काले से काले कोयले को भी लजानेवाले एक हवशी महाशय भी वहाॅ पधारे थे। ठीक दो बज-कर १७॥ सेकण्ड पर, मेरे सभापतित्व मे, सभा का कार्य आरम्भ हुआ। कुल १॥ सेकण्ड तक सभा चालू रही। इस बीच मे ७ प्रस्ताव पास किये गय। वे प्रस्ताव ये है :—

(१) स्त्री-शिक्षा देना बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि स्त्री-शिक्षा के कारण हमारे घरों में महाभारत का युद्ध न हुआ करेगा। एक तो निरस्त्र होने के कारण हम योंही वीरत्व-विहीन हो रहे है, यदि घर में महाभारत का होना बन्द न कर दिया जावे, तो हमारी क्या दशा होगी सो आपही समझ लें।

(२) पुरुषों में भी शिक्षा का प्रचार एकदम बन्द कर देना चाहिए, क्योंकि शिक्षा पाकर वे लोग ऊटपटाॅग बाते करने लगते है। पृथ्वी को गोल बताना और सूर्य को उससे १३,१०,००० गुना बड़ा बताना शिक्षार्थियों की करतूत है। ऐसी शिक्षा ग्रहण कर हम क्या करेगे जिससे हम बाप-दादों की बातों को भी बुरा कहने लगे ? हरे! हरे! हमने इसपर पहिले ही से विचार न किया। अफ़सोस! अफ़सोस! बड़ी हानि हुई। अच्छा! अब भी एक उपाय है। कल शिक्षा को पकड़कर यूरुप के युद्ध मे भेज देंगे। वही निगोड़ी अपने प्राण त्यागकर स्वर्ग चली जायगी। उसने तो हमारे साथ बुराई की, किन्तु हम उसपर दया किये देते है। अब रहे वर्त्तमान शिक्षित व्यक्ति, उनके नाम हम एक नोटिस निकालेंगे कि यदि वे अपने मुख से एक भी शब्द निकालेंगे, तो उनका चालान किया जायगा।

(३) विधवा-विवाह का शीघ्र प्रचार करने के हेतु हमे चाहिए कि भारत के सब बुड्ढों का विवाह षोड़शी बालाओं के साथ कर दे

और ज्योंही वे लोग कबर का रास्ता लें, त्योंही इन बालाओं का पुनर्विवाह कर दिया जावे। ऐसा करने से दो ही चार वर्षों में विधवा-विवाह का अच्छा प्रचार हो जायगा।

(४) भारत में बिल्लियाँ बहुतायत से पाली जावें और उनको प्लेग का टीका लगाया जावे ताकि वे प्लेग के चूहों को सहज ही में हज़म कर सकें। ऐसा करने से यह रोग शीघ्र ही नरक की यात्रा करेगा।

(५) भारत में चार जातियाँ ही नहीं, बल्कि कोई २१॥ करोड़ जातियाँ होनी चाहिए; क्योंकि थोड़ी सी जातियाँ होने से तो हम हिन्दुओं का अस्तित्व इतने दिनों तक रहा। २१॥ करोड़ होने से वह अमर हो जावेगा। फिर ग्रीस और रोम के नगड़दादे भी हमारे साम्हने मस्तक झुकावेंगे।

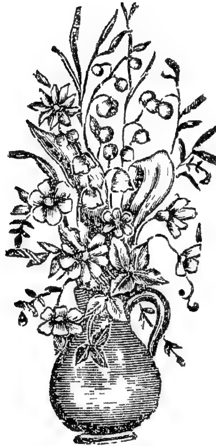
(६) पुरुषों और स्त्रियों को सर्वत्र बराबर अधिकार है, अतएव या तो सब पुरुषों को अपनी मूँछें मुड़ा लेनी चाहिए, नहीं तो कोई ऐसा मसाला तैयार करना चाहिए कि स्त्रियों के भी मूँछें हो आवें।

(७) हिमालय पर्वत को नष्ट-भ्रष्ट कर डालना चाहिए; क्योंकि जब तक वह भारत के उत्तर में विद्यमान रहेगा, तब तक उत्तरीय देशों के साथ भारत का सम्पर्क सम्यक् रीति से घनिष्ठ हो ही नहीं सकता।

अन्तिम प्रस्ताव की पूर्ति का काम लोगों ने मुझे ही सौंपा। वे तुरन्त ताड़ गये कि मैं हिमालय के लिए रावण एवं दुन्दुभि दैत्य का भी नाना हूँ। उनकी इस विलक्षण बुद्धि से प्रसन्न होकर मैंने यह काम करना स्वीकार भी कर लिया। अब मुझे दो काम करने हैं—एक तो, इन प्रस्तावों के विज्ञापन सत्यलोक, तपलोक, जनलोक, महर्लोक, स्वर्लोक, भुवर्लोक, भूलोक, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, और पाताल में सर्वत्र भेजना और दूसरे, हिमा-

लय की दुर्दशा करना। पहिले को तो बेतार के तार-द्वारा पौन सेकंड मे कर सकता हूँ। रहे बेचारे हिमाचलदास, (मुट्ठी बाँधकर, घमंड से) सो उन्हें अभी जाकर घूँसे खाने की मज़ा चखाता हूँ।

[स-गर्व प्रस्थान]



दो बदमाश लड़के

पात्र—

छोटे बड़े सब मिलाकर १२ लड़के

दृश्य पहिला।

(चार छोटे छोटे लड़कों का एक वृक्ष के नीचे आकर खेलना)

ललुआ—(कुछ मेवा अपनी जेब में से निकालकर) देखो, हम तो दुकान लगाते है।

कलुआ—हम भी दुकान लगाते हैं। (बताशे निकालकर रखता है)

बलुआ—हम भी लगाते है। (चने निकालकर रखता है)

मलुआ—हम भी लगाते है। (मूली और गाजर निकालकर रखता है)

चारों मिलकर—काजू किसमिस सेव, काजू किसमिस।
पेड़ा बरफी गरमागरम, पेड़ा बरफी।
चने भुजा लो चने, चने गरम।
गाजर मूली टके सेर, गाजर मूली।
(भगुआ नाम के एक बड़े लड़के का प्रवेश)

भगुआ—कहो दोस्त! हॅ—हॅ, क्या बेच रहे हो?

चारों०—कुछ नहीं। तुम्हे क्या? जाओ, भग जाओ।

भगु०—नहीं दोस्त, बताओ तो। अरे, कुछ हमें भी तो चखाओ।

चारों०—चले जाओ, चले जाओ। नहीं तो हम अपनी माँ से कह देंगे।

भगु०—जा साले, कह दे। (चारो को उठा उठाकर अलग करता है) (फिर भगुआ सब चीजे समेटने लगता है, और चारो लड़के अपनी अपनी चीज़ों के नाम ले लेकर छुड़ाने दौड़ते है)

ल०—ऊँ··· ऊँ हमारी किसमिस।

क०—एँ·· एँ हमारी मिठाई।

ब०—हमारे चने दो।

म०—दे साले, हमारे मूले।

भगु०—ले ले, मूला ले। (एक मूली उठाकर मलुआ को मारता है। वह रोकर और शेष तीनो डरकर भाग जाते है)

(भगुआ का दोस्त जगुआ आता है)

जगुआ—क्यो बे, अकेले ही अकेले ? अरे ह हमको नही देता।

भ०—जा जा, नही देते। आ गये बाप का सा माल खाने।

ज०—अच्छा अच्छा, मत दे, मत दे। मैं जा ··जाकर उनके बाप से कहता हूँ। फिर तो देगा। (यह कहता कुछ दूर जाता है)

भ०—अरे वाह जग्गू, इतने ही मे नाराज़। दोस्त, हम तो हँसी करते है। अच्छा लो, लो आधा मूला तुम भी खाओ।

ज०—पहिले स . सब दिखाओ। फिर लूँगा।

भ०—इतना ही लेना हो तो लेव, नही तो फिर कुछ भी नहीं मिलेगा।

ज०—हम ये चले। खाना फिर देखेगे। (आगे बढ़ता है)

भ०—ले ले, अच्छा एक ले। अब तो नही कहेगा ?

ज०—आधा लूँगा, आधा।

भ०—आधा, आधा। इतना तो मै पहिले ही देता था। अच्छा, ले आधा।

(आधा उसे दिखाता और आधा ख़ुद तोड़कर खाने लगता है)

ज०—सबका आधा दे साले।

भ०—आओ आओ, आधा ही ले लो। (दोनो आधा बाँट बाँटकर खाते है और एक दूसरे से छुडा छुडाकर लड़ने लगते है। खा चुकने पर अपने पेटो पर हाथ फेरकर डकार लेते है और एक दूसरे से पेट लड़ाते है। फिर शान्त होकर)

भ०—इतना तो खा चुके, पर इतने मे अपनको होता ही क्या है ? यार, देखो तो मेरा पेट तो तुचका पड़ा है।

ज०—हाँ हाँ देखो यार, मेरा भी तुचका प ˙ पड़ा है।

(दोनो मिलकर गाते है)

ज०—ये पेट हमारा खाली, ये पेट हमारा खाली।

भ०—मेरा भी खाली, तेरा भी खाली।
तेरा भी खाली, मेरा भी खाली।

ज०—गाजर भी खा ली मेवा भी खा ली।
मूली आधी आधी खा ली।

दोनों एक साथ—ये पेट हमारा खाली, ये पेट हमारा खाली।

भ०—क्यो दोस्त, गा भी ख़ूब लिया; पर पेट न भरा।

ज०—तो च ˙ चलो, अब घर चलें।

भ०—अरे, घर जाकर क्या करोगे ? यहीं किसी सेठ से मिठाई उड़ाएँगे और मजे से हप्प हप्प खाएँगे।

ज०—हॅ हॅ हॅ यार, हप्प हप्प खा ˙ खाएँगे, पर यह तो बताओ किससे उड़ाकर खाओगे ?

(भगुआ कुछ सोचने लगता है और जगुआ उसके पीछे जाकर)

ज०—ये सरऊ तो फु ˙ ˙ ˙ फुसलाएँगे; पर माल आधा हम उड़ाएँगे।

भ०—आ गई दोस्त, आ गई, साली याद (कूदने लगता है)।

ज०—आ गई आ गई, कि किसकी याद आ गई ?

भ०—ह हँ आ गई याद, आ गई मजेदार।
ज०—तो फिर ह . हमको क्यों नही बताता ?
भ०—आ गई, उन्ही रामासा के लड़के छगनसा मगनसा की याद आ गई। उन्ही को फुसलाकर मनमानी मिठाई उड़ाएँगे। कहो, कैसी सोची ?
ज०—कुछ नही सोची, कुछ नही। वे तो प पढ़ने गये है।
भ०—पढ़ने गये है, तो क्या कभी लौटेंगे ही नही ? अभी दस बजेंगे, छुट्टी होगी। आएँगे और अपन मिठाई उड़ाएँगे। अब तो कहो, कैसी सोची ?
जगु०—हाँ भाई, तो ˙ ˙˙ तो तो अच्छी सोची।
दोनों—चलो, स्कूल के ही रास्ते पर खेलें।

[दोनों चले जाते है]

दृश्य दूसरा।

(स्कूल के रास्ते में भगुआ और जगुआ का प्रवेश)

भगु०—कहो दोस्त, कैसी सोची ? पर यह तो कहो, मिठाई ज्यादा कौन उड़ायगा ?
जगु०—ज्यादा कौन उड़ावे ? ह ˙ हम ज्यादा उड़ाएँगे।
भगु०—नही नही, हम ज्यादा लेंगे, याद रखना।
जगु०—तुम लेवगे, तो ˙˙ ˙ तो नही बनेगी बात।
भगु०—तो हमसे भी नही बनेगी।

(दोनो लड़ने लगते है। उसी समय सिर पर फूलों की टोकनी रखे हुए बोदरू नाम का एक माली का छोकरा आता है और ये दोनों लड़ते लडते उसके ऊपर गिर पड़ते हैं। वह भी गिर पड़ता है और उसकी टोकनी के फूल और हार बगर जाते है)

बोंदरू—क्यो बे दिखता नहीं ? लगाऊँ साले, एक चाँटा ?

भ०—अबे माली, साले ! गर्रा गया है। याद रख साले। दूसरी भी फोड़ दूँगा। सब शेखी अभी भुला दूँगा।

ज०—मारो मारो माली साले को। फो फोड़ दो आँख। गाली देता है साला, गाली।

बोंदरू—अकेला जान के दबाते हो, दबाते। तुम्हारे बाप से भर लूँगा ये दो रुपये। (टोकनी की ओर इशारा करके)

दोनों—जा जा, भर लेना। कभी बाप ने भी भरे थे ? (टोकनी में लात मारकर) चला जा, उठा ये टोकनी।

बोंदरू—(भगुआ को एक लात मारता है) ले साले, टोकनी में लात मारता है।

दोनों—मार दिया साले ने (इतना कहकर दोनों भिड जाते हैं और उसे नीचे गिराकर ख़ूब पीटते हैं। वह भी लात-मुक्का मारता है और अन्त में रोता हुआ टोकनी छोडकर चला जाता है)

बोंदरू—मेरे मुहल्ले मे मिलना। फिर देखूँगा बेटा तुमको।

भ०—कहो यार जग्गू, साले को कैसा सुधारा। एक लात तो मार ही दी। फिर मैंने भी ख़ूब ठीक किया।

जगु०—तुमने क्या ठीक किया, मैं मैंने तो एक ऐसी जमाई कि ऍ (कहकर भगुआ को एक मुक्का जमाता है)

भ०—मैंने भी ऐसी जमाई कि ऊँ (यह भी उसके जमाता है और फिर दोनों लडने लगते हैं। फिर शान्त होकर)

ज०—अरे यार, ये हार कै कैसे अच्छे पड़े हैं। आओ, पहिनें।

भ०—हाँ हाँ। (दोनों हार पहिनते और ख़ुशी से गाने लगते हैं। जगुआ सिर पर टोकनी रखकर)

ज०—देखो मेरा ठाट, पहिने मैंने गजरे आठ।

भ०—क्या बिगाड़ा है ? जब हमने खेलने बुलाया था, तब क्यों नहीं आया था उस रोज़ ?

ज०—अब तो मानोगे हमारा कहना ? सच्ची बतलाओ।

दोनों—हम तो पहिले ही से तुम्हारा कहना मानते है। उस रोज़ घर मे काम था, इसलिए नही आये खेलने।

ज०—मानते हो तो च चलो हमारे साथ खेलने।

दोनों—भैया! हमे भूख लगी है। तुम्हारे हाथ जोड़ें। अभी जाने दो। हम रोटी खाके फिर आ जायँगे।

भ०—खाके आ जायँगे, खाके आ जायँगे। बड़े आनेवाले! हमें नहीं भूख लगी है ? चल चल।

(दोनो को खीचते हुए ले जाते है और दोनो रोते है)

दृश्य तीसरा।

(जगुआ परदे मे से मुँह निकालकर)

ज०—आ गई न व वही जगह ?

भ०—कहो दोस्त, यहाँ खेलोगे कि वहाँ ? (झट बाहर आकर छगनसा और मगनसा को साथ लिए हुए कहता है)

ज०—न यहाँ खे खेलेंगे, न वहाँ, ओट मे खेलेंगे।

(भगुआ कौड़ियाँ निकालकर खड़खड़ाता है)

भ०—(ज़मीन पर डालकर) ये छक्के।

ज०—(कौड़ियाँ समेटकर डालता है) ये पौ ब बारा।

भ०—(कौड़ियाँ समेटकर डालता है) ये पड़े अठारा।

दोनो—अड़ो अड़ो सेठजी, क्या चुप खड़े रहोगे ?

छ०—अरे भैया! हमें तो भूख लगी है। क्या अड़ें ?

दोनों०—नहीं नही भाई, कुछ तो अड़ो। खेलने आये हो कि रोने ?

छ०—हमें सबक याद करना है। देखो, जाने दो भैया। तुम्हारे हाथ जोड़ें।

भ०—अड़ अड़, बड़ा आया जाने दो, जाने दो वाला।

छ०—भैया ! हमारे पास तो कुछ भी नहीं हैं। क्या अड़ें ? अच्छा, हम घर से पैसा ले आवें। फिर अड़ेंगे।

ज०—हाँ हाँ हाँ यारो से चाल। घर जाने दे फिर व बस !

भ०—अड़ो, निकालो, नही तो जमाता हूँ। (दोनो को मारता है)

छ०—(रोता हुआ दो पैसे निकालता है) लो भैया, हमारे पास तो ये ही दो पैसे हैं।

ज०—(छगनसा की जेब मे से पैसे निकालता है) ये पैसे कि·· किस बाप के है ?

भ०—अच्छा इनको भूख लगी है तो इन पैसो की मिठाई खिलाएँगे।

ज०—अच्छा अभी मिठाई ला लाता हूँ और सेठजी को चखाता हूँ। (कुछ दूर जाकर)

जाता हूँ लाने मिठाई यार।
पेड़ा बरफी लड्डू लाऊँ जाकर बाजार।

(गाता हुआ जाता है और फिर लौटकर)

खाऊँ उड़ाऊँ मै कहता पुकार ·· (चला जाता है)

भ०—सेठजी, मरे से क्यों बैठो हो ? अरे, अब तो मैं माल चखाता हूँ माल यार, तुमने तो कुछ भी नही निकाला मगनसा सेठ !

म०—हमारे पास कुछ है ही नहीं, फिर क्या निकालें ? होता तो देते।

भ०—हाँ, कुछ नही रक्खा है, ऐसा मत कहो यार। कुछ तो निकालो तुम भी !

छ०—दे दो भाई, तुम भी दे दो जो कुछ हो।

म०—हमारे पास इतना ही है सो ले लो भाई (निकालकर देता है)

भ०—बस बस, इतने ही है ? इनके पास तो पहिले दो ही थे ? दे दो बच्चा, नहीं मुफ्त मे पीठ पुजाओगे।

म०—(डरकर) ले लो ये सब पैसे, ले लो।

भ०—(खुश होकर जेब मे रखकर) बेटाजी मिठाई लेने गये है। मैंने भी इधर अच्छे बनाये आठ आने।

ज०—(मिठाई लेकर आता और अपने आप कहता है) वहाँ तो स·· सब साले बटाँगे तो पट्ठा क्यो चूके ? यही हाथ मारता हूँ। आधी मिठाई उड़ाता हूँ।

(एक हाथ मे पेडा और दूसरे मे लड्डू लेकर)

ये खाऊँ या ये ? (लड्डू निकालकर खाता है। आधे टोकनी मे रखकर (ये तो बड़ा कड़ुआ है। (फिर दूसरा निकालकर खाता और गाना गाता है)

यहाँ उड़ाऊँ वहाँ ब बटाऊँ हूँ मै ऐसा फक्कड़।
तुम्हे दिखाता नही चखाता देता कैसा चक्कर ॥
खूब खाए ल लड्डू अब वहाँ भी बटाऊँगा।
और जान गया साला तो चकमा दिखाऊँगा ॥
यहाँ उड़ाऊँ वहाँ बटाऊँ हूँ मैं ऐसा फ फक्कड़।

भ०—साला गाता और मुँह चलाता आता है। जान पड़ता है कुछ मिठाई खाता हुआ आता है।

ज०—लो सम्हालो अपनी मिठाई। दे . देख लो अच्छी तरह।

भ०—ला ला, मै बाँटता हूँ।

ज०—कोई बाँटे मुझे लवाई की देना पड़ेगी।

भ०—बहुत सी तो रास्ते मे खाते आये, अब लवाई दो। तुम्हीं तो बड़े होशियार हो।

ज०—अपने सरीखा चोट्टा हमे भी समझे। राह में खाते आ·· आये ?

भ०—लेव लेव भाई, तुम्ही जानों, खाई हो या न खाई हो।

(चारो मिठाई बॉटकर खाते है)

छ०—अच्छा भैया, मिठाई भी खा लो और पै···

भ०—हॉ हॉ, मिठाई भी खा चुके और सब कुछ तो।

ज०—क्यो बे छिपाता है, छिपाता ? प पैसे लिये है पैसे, ला साले आधे।

भ०—नहीं नही, तुम्हारी सौ, मैने पैसे-वैसे कुछ नही लिये, न मानो तो पूॅछ लो छगनसा मगनसा से। (छगनसा मगनसा से) क्यो बे लिये है क्या ?

दोनो—नही नहीं, नही लिये।

(नेपथ्य में कुछ शब्द सुनाई देता है जिसे सुनकर जगुआ और भगुआ दोनो चौंक पड़ते है)

भ०—जान पड़ता है कि इन लोगो के भाई आ रहे है। अब यहॉं बैठना ठीक नहीं।

ज०—चलो चलो भ · भगो। (दोनो भागते हैं)

(धन्नासा और पन्नासा का प्रवेश)

ध०—देखो देखो, वे दो लड़के भागे जा रहे हैं। जान पड़ता है अपनी ही बातचीत सुनकर भगे है। ये ही लौंडे छगनसा मगनसा को भी लाये होंगे। चलो बढ़े और इन दोनों को पकड़कर उनका हाल पूॅछें।

प०—हॉ हॉ, चलो चलो, पकड़ो बदमाशो को।

[दोनो जगुआ और भगुआ के पीछे दौड़ते है; परन्तु दोनों भाग जाते है]

(यहॉ छगनसा और मगनसा घबड़ाते हैं। इतने मे धन्नासा और पन्नासा वापिस आते है)

छ०—भैया, हम पढ़के आते थे। सो भगुआ और जगुआ हमे

यहाँ ले आये और हमारे पास के पैसे ले लिये और मिठाई मँगाकर खा गये।

म०—भगुआ ने हमारे सब पैसे ले लिये और हमें पीटा।

धन्नासा—अच्छा, चलो, घर चलो। हम उन सालो को ख़ूब ठीक करेंगे। साले खा खा के मस्ता गये है, छोटे छोटे लड़कों को तंग करते फिरते है।

पन्नासा—हाँ जी, जो बेटा मिल गये तो फिर अच्छी तरह बदला लेंगे, सब मस्ती भुला देंगे।

धन्नासा—चलो चलें, फिर देखा जायगा, बदला ले लिया जायगा।

सब०—अच्छा अच्छा, चलो चलो। (जाते है)

दृश्य चौथा।

(धन्नासा और पन्नासा का प्रवेश)

धन्नासा—सचमुच में दोनो बड़े बदमाश है। माँ इधर ढूँढ़ रही है। न जाने दोनो कहाँ भग गये। कुछ पता नही लगता। पर क्या किया जावे ? यदि मिल गये तो फिर सालो का होश ठिकाने कर दूँगा।

पन्नासा—यह तो ठीक है, पर मिले कहाँ ? परन्तु अपन भी बिना ढूँढ़े न रहेंगे। जहाँ मिलेंगे पीटेंगे और पैसे-वैसे छिना लेंगे।

धन्नासा—बोंदरू कहता था कि सलैयापुरा की ओर गये है। सो यहाँ भी नही और वह भी आने को कहता था, सो नहीं आया। चलो, थोड़ी देर यहीं बैठें। तब तक वह भी आता होगा।

(बोंदरू, मोती और हंसा का प्रवेश। तीनो हाथ मे डंडे लिये हुए)

बो०—बहुत ढूँढ़ा, पर सालो का पता न लगा। न जाने कहाँ

होंगे। यदि मिल जायँ, तो सालों से टोकनी गिराने का बदला ले ले।

मोती—भगुआ साले ने आज हमारे भाई ललुआ को जो खेल रहा था मारकर भगा दिया और उसके पास की मेवा लेके खा गया।

हंसा—उसीके साथ मेरा भाई भी खेल रहा था, सो उसे भी साले ने मारा-पीटा। जो हमे मिल गया, तो साले की चटनी कर डालूँगा।

दोनो—हाँ हाँ, ज़रूर चटनी कर डालेंगे

बो॰—बदमाशों को सीधा बनाएँगे आज।

हंसा—डंडे लगाकर, नीचे गिराकर, दोनो टाँगे पकड़कर फिराएँगे आज।

मोती—देखो यार, चुपचाप चलना ठीक होगा। यदि वे दोनो सुन लेंगे, तो भग जायँगे। फिर पकड़ मे न-आवेंगे।

दोनों—हाँ हाँ, ठीक ठीक।

बो॰—(उस ओर देखकर) देखो, दो और बैठे है अपने साथी। हूँ··· हूँ अब तो पाँच हो गये, पाँच।

धन्नासा पन्नासा—आ गये तुम लोग भी, हम भी तुम्हारे ही लिये बैठे थे। वे तो यहाँ नही है। अब बताओ कहाँ मिलेंगे?

बो॰—एक अड्डा तो सालों का यही है। यहाँ नहीं तो खा··

चारो—(ध्यान-पूर्वक सुनकर) अरे कोई बातचीत कर रहा है। ये ही है। दोनो छिप जाओ। आने दो सालों को।

बो॰—हाथ भी आ जायँगे, पीठ भी पुजवाएँगे।

पाँचों—चलो, यही आड़ मे छिप रहे।

(पाँचो छिपते और भगुआ और जगुआ हँसते हुए आते हैं)

जगु॰—(भगुआ से) कहो दोस्त! कै···कैसे भगे?

भगु०—भगे तो अच्छे, पर यह तो बताओ मिठाई कैसी थी ?
जगु०—(पेट पर हाथ फेरकर) मिठाई तो अच्छी थी, पर एक ल लड्डू और पाता तो .खूब छक जाता। पर सालो के मारे खाने पाते तब तो। (स्वगत) पर मै तो पहिले ही उड़ा चुका था। ये हो रह गये बच्चा सूखे संट। (प्रगट) पर, कहो दोस्त ! कै कैसी उड़ाई ?
भ०—हॅ हॅ कैसी उडाई ?
दोनो—कैसी मिठाई उड़ाई थी खूब।
ज०—पहिले उड़ाई और आधी बटाई।
भ०—तब तक थी मैने अठन्नी बनाई।
पाँचो—अब होगी पीठ पुजाई भी खूब।
(प्रगट होकर मारते है)
भगुआ ज०—अबे क्यो मारते हो हमको साले ?
(इतना कहकर दोनो भी हाथ चलाते है, पर हाथ पकड़ लिये जाते है)
बोंदरू—कहो बेटा, अब पुज गई पीठ न ? हों बहुत सताना सीखे थे और बाप कैसा माल उड़ाना। हाँ हाॅ देखो, खाई पिटाई भी खूब।
धन्नासा—ला बे वे अठन्नी के पैसे। रख यहाॅ। चला बाप कैसा लेने। (हाथ बढ़ाकर एक मुक्का मारता है)
पन्नासा—(जगुआ को एक कोड़ा जमाता है) क्यो बे ? अब तो पीठ पुजी ?
ज०—मरा रे मरा बाप। (रोने लगता है)
मोती—क्यो रे छोटे छोटे बच्चो को सताता है ऐ
(भगुआ को पीटता है)
पाँचों—अब इन सालो को खींचकर घर ले चलो।
(एक एक को दो दो टाँगकर ले जाते है और बोंदरू कभी भगुआ और कभी जगुआ के ऊपर बैठता है)।

(चारों 'राम नाम सत्य है,' 'राम नाम सत्य है' कहते है)

बोंदरू—अहा, कैसी डोली बनी मज़ेदार !

(सब चले जाते है)

दृश्य पाँचवाँ।

(भगुआ का प्रवेश हाथ में स्लेट लिये हुए)

भ०—(स्वगत) सालों ने .खूब पिटाई लगाई और जाकर घर कह दिया, सो दद्दा ने भी .खूब पीटा। अब पढ़ने को भेजा है और कहा है कि और कहीं गया तो फिर पीटूँगा। अब मै पढ़ने जाऊँगा, किसीको न सताऊँगा।

(जगुआ का प्रवेश उसी दशा मे)

भ०—कहो भाई जगुआ, कहाँ चले ? पढ़ने ? पर यह तो बताओ कि कल कैसी बीती ?

ज०—क्या कहे यार, प ‥‥पहिले तो उन्हीं सालो ने कुगत की और फिर जाकर घर मे कह दिया। माँ ने खाने को भी न दिया। ल ‥ लड्डू छके थे तो रात जैसे-तैसे बीती। सबेरे माँ ‥ से माफ़ी माँगी, तब खाने को दिया और अब प‥‥ पढ़ने को भेजा है।

भ०—तो फिर अब कभी ग़ैरहाज़िर न रहेंगे, हर रोज़ पढ़ने चला करेंगे।

ज०—हाँ हाँ ‥ ज़रूर ज़रूर।

(छगनसा और मगनसा का प्रवेश)

दोनो—आओ आओ भाई छगनसा मगनसा, आज से हम तुम्हारे साथ चला करेंगे।

छगनसा मगनसा—अच्छा भैया, चला करो। चलो, अब चलें। देर होती है। गुरूजी नाराज़ होगे।

दोनों—अच्छा अच्छा। (चारो जाते है)

[पर्दा गिरता है]

पाठशाला का एक दृश्य

पात्र—

१—आठ-दस लड़को की क्लास

२—मास्टर

३—एक सभ्य मनुष्य

———

[स्थान—एक शाला]

(रामू, चन्द, नन्द और कई लड़के टाट-पट्टियो पर बैठे हुए अपना पाठ याद कर रहे है । सामने काला तख्ता और पास ही एक टूटी सी कुर्सी रक्खी है । मास्टर नही हैं)

रामू—आज का भूगोल तो भैया बड़ा कठिन है । रटते रटते दम निकल गया, पर वह तो ज़रा भी याद नही होता । (रटता है) सिवनी ज़िले का आकार हल-बक्खर के समान है, समान है, समान है, है, है, है अ ! शम्भू महादेव का पहाड़ । यदि यह लिखा होता कि शम्भू महादेव का पहाड़ हमारे गुरूजी के खोपड़े पर है, तो कुछ भी अनुचित न था; क्योकि उनका साफ़ा उसी प्रकार है और बुद्धि मे वे स्वयं शंभू महादेव है ।

चन्दू—क्यो रे रामू, गुरूजी के विषय मे क्या कहता है ?

रामू—मैं क्या कहता हूँ ? कल हमारे बाड़े में चिन्नी ही उनकी नक़ल कर रहा था। उसीने मुझसे कहा।

चन्दू—.खैर भैया, .खूब कहो। हाँ, यह तो देखो। यह व्याकरण क्या कठिन है ? (रटता है) कारकों का विस्तार-पूर्वक वर्णन आगे मिलेगा, आगे मिलेगा, आगे मिलेगा,--लेगा-लेगा;--गा--गा --गा; आ ! आ !

रामू—क्योंरे, क्या आज के लिए कुछ सवाल दिये थे ?

चन्दू—वह अ, ब, क का उदाहरण नहीं दिया था ?

रामू—हाँ ! सचमुच, बेचारे अ ब क का काम कभी समाप्त नहीं होता। उनका काम हमारे पीछे एक फुज़ूल त्रास है। जिस प्रकार उनमें से क बीमार हो जाता है, वैसे बेटे सब ही बीमार क्यों नहीं हो जाते जिससे हम लोगों को उनके काम का और दिनों का तो फुजूल हिसाब न करना पड़े ? मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि जिसने यह किताब बनाई है वह कोई खानदानी रोगी रहा होगा !

नन्दू—और इस इतिहास का बनानेवाला कोई मुर्दाफरोश होगा। कहाँ ग़ज़नी और कहाँ ग़ोरी ! अरे हम लोग ब्राह्मण हैं; और देखो, इस विषय का अभ्यास करने से किस प्रकार हमारा धर्म नष्ट हो रहा है ? हम लोग प्रत्यक्ष गड़े मुर्दों को उखाड़ रहे है, गड़े मुर्दों को ! राम राम ! यह काम कितनी नीचता का है ?

चन्दू—अरे ए; गुरूजी आये; चुप्प ?

(गुरुजी आते है। सब लड़के खड़े होकर प्रणाम करते और आज्ञा पाकर चुपचाप बैठ जाते हैं)

गुरुजी—क्यों रे नन्दू, फीस लाया ? आज कौनसी तारीख़ है ?

नन्दू—नहीं मालूम। माताजी बोलीं कि अम्मवस के बाद फीस देंगे।

गुरुजी—अच्छा, कल हमने तुमको घोड़े पर एक निबंध लिखने के लिए कहा था सो लिखा कि नहीं ?

सब लड़के—जी नहीं गुरूजी, हमने नहीं लिखा।

गुरुजी—क्यों नहीं लिखा ?

नन्दू—मेरे यहाँ घोड़ा ही नहीं है, फिर मैं किसपर निबंध लिखूं ?

गुरुजी—अरे गधे ! यदि तेरे पास घोड़ा न हुआ तो क्या हो गया ? क्या कभी तूने घोड़ा नहीं देखा है ? गधा कहीं का ! उसका वर्णन, रंग, रूप, निवासस्थान, उत्पत्तिस्थान, भक्ष्य इत्यादि लिखना था। इसके लिए घर में ही घोड़े की क्या आवश्यकता थी ? अच्छा, मैं तुम्हे अभी देखता हूँ।

क्योंरे रामू ! तू क्यों नहीं लिख लाया ?

रामू—गुरूजी महाराज ! धन्य है आपको ! (दोनों हाथ जोड़ता है) आपकी इस मूर्खता पर मेरे पिताजी अत्यन्त ही क्रुद्ध हुए। उन्होंने कहा कि आपने जो निबंध दिया है वह आपकी मूर्खता को प्रदर्शित करता है। इस निबंध के कारण कल मेरे हाथ-पैर दुरुस्त हो गये !

गुरुजी— (क्रोधित होकर) याने ?

रामू—याने क्या ? आपने घोड़े पर निबन्ध लिखने के लिए कहा था, इसीलिए मैं दावात, क़लम और कापी लेकर अपने घोड़े पर किसी तरह बैठ गया। ज्यों ही मैंने एक लकीर लिखी कि न जाने हमारे घोड़े को क्या लहर आई कि उसने इकदम अपनी गर्दन ज़ोर से हिला दी। बस, फिर क्या था, मैं नीचे हुआ और वह ऊपर। बाल बाल बच गया; नहीं तो जान पर ही आ बीती थी।

गुरुजी—रामू, तू बिलकुल गधा है ? अरे, मैंने तुझे घोड़े पर निबंध लिखने के लिए कहा था, तो क्या उसका अर्थ यह होता है कि

घोड़े पर बैठकर निबंध लिखना चाहिए। मूर्ख कहीं का! मालूम होता है कि तू अक्ल के पीछे सदा लट्ठ ही बाँधे फिरता है। तुम्हारे-जैसे बेवकूफों के सामने मास्टर अपना सर भी पीटें तो क्या हो सकता है? तुम लोग तो कुत्ते की पूँछ के समान हो। बारा साल तक भी पोंगरी में बन्द कर रक्खो, तौ भी वह सीधी नहीं होगी। वैसा ही तुम्हारा हाल है। तुम लोगों के पढ़ाने के लिए यदि बृहस्पतिजी भी १०१ अवतार लें, तौ भी वे तुम्हारा उल्लूपन दूर न कर सकेंगे। अरे ऐसे लड़कों के सामने मास्टर लोग हँसे कि रोवें कुछ समझ में नहीं आता। बेवकूफ! गधे! नालायक! उल्लू! चल बैठ, अपनी जगह पर बैठ।

चन्दू—गुरूजी, मुझसे एक सवाल नहीं बनता। क्या मैं आपसे पूँछूँ?

गुरुजी—हाँ! पूँछ! पूँछेगा क्यों नहीं?

चन्दू—अ एक काम को दस दिनों में करता है। उसी काम को ब १५ दिनों में करता है। दोनों ने मिलकर उस काम को ८ दिनों तक किया। आगे अ बीमार हो गया, तो गुरूजी! उसे कौनसी दवाई देना चाहिए?

गुरुजी—(क्रोधित होकर) ठहर, पहले तुझे ही एक उत्तम दवा देता हूँ। नन्दू, जरा खूँटी पर का बेंत तो ला। (खिड़की में से तमाखू की पिचकारी छोड़कर) तेरी चमड़ी ही उधेड़ना पड़ेगी। तभी तू ठीक राह पर आवेगा। चल, हाथ आगे कर। हँ, करता है कि नहीं? नहीं तो उस म्याल से उल्टा टाँग दूँगा।

चन्दू—(रोने का बहाना करता हुआ) अब ऐसा कभी नहीं करूँगा पंडितजी। आँ! आँ! कल किसी लड़के ने मुझसे यही सवाल

पूँछा था। जब मै उसे न कर सका, तो आपसे पूँछ लिया। इसमे मेरा क्या कसूर है ? पंडितजो ! अँ ! अँ ! अँ !

गुरुजी—कैसा हरामजादा है। अब कुछ न सुना जायगा। आज तुझे दस बेत मारे बिना नही छोड़ता। आज तुझे अच्छी तरह मालूम हो जाना चाहिए कि मास्टरो से शैतानी करने का क्या नतीजा होता है। चल, हाथ बाहर कर।

चन्दू—पर गुरूजी, हमारी बऊ ने आपको न्यौता·····

गुरुजी—(बीच ही मे) अच्छा अच्छा जा, अपनी जगह पर बैठ। अभी बऊ के बारे मे क्या कह रहा था रे ?

चन्दू—मेरी बऊ ने कल आपको न्यौता देने का विचार किया था। पर फिर वे बोली कि फिर कभी देखेंगे।

गुरुजी—(स्वगत) बेटा बड़ा शैतान है ! बड़ी हिकमत से बचा !

चन्दू—(गुरुजी की ओर देखकर) गुरूजी ! कल आपने एक कविता मुखाग्र याद करने को दी थी। वह सुनना है।

नन्दू—(एक ओर को) क्यों बे, गुरूजी तो इसे इकदम भूल गये थे। फिर भला तूने उन्हे क्यो याद दिला दी ? क्या भूल गये कि अभी कैसी कमबख्ती आई थी ?

गुरुजी—क्यो रे नन्दू ! उधर क्या बक रहा है ? मालूम होता है कि तूने कविता नही याद की है। अच्छा, पहले तू ही कह। देखें, तूने कैसी याद की है।

नन्दू—अभी पूरी याद नहीं हुई है पंडितजी !

गुरुजी—जितनी आती है उतनी ही कह।

नन्दू—बिलकुल सफाई है !

गुरुजी—(गुस्से से) क्यो ?

नन्दू—मेरे बड़े भाई ने मुझे याद नही करने दिया।

गुरुजी—गधे, झूठ बोलता है। भाई ऐसा क्यो कहेगा ?

नन्दू—विद्या कसम, मास्टर साहिब ! मेरे भाई ने ही मुझे याद नहीं करने दिया।

गुरुजी—अच्छा तो मै तेरे भाई से पूँछूँ ?

नन्दू—अभी पूँछ देखिए। रोटी खाकर जब मै शाला को आने लगा तो मुझे इस कविता की याद आई। मै घर बैठे उसे याद कर रहा था। इतने में मेरे भाई आये और डाँटकर कहा कि शाला को जाओ। देर हो रही है। यह वक्त सबक़ याद करने का नही है। मै तो यही चाहता था और इसलिए तुरन्त उनकी आज्ञा का पालन किया।

गु०—इसका मतलब यह हुआ कि कविता बिलकुल ही याद न करनी चाहिए ? चोर कही का ! रामू, तू सुना।

रा०—मेरे पिताजी ने कहा कि बिना अर्थ समझे कविता कभी याद नहीं करनी चाहिए।

गु०—फिर क्या उसका अर्थ तुम नही समझ सकते ?

रा०—क्यों नही समझ सकते है ? पर पिताजी ने कहा कि मेरा अर्थ ग़लत है ?

गु०—तूने क्या अर्थ किया था ?

रा०—'जग मे उत्तम वस्तु को ग्रहण करै मतिमान' इसके अनुसार मैंने अपने पड़ोसी के एक लड़के की ज़री की उत्तम टोपी छुड़ा ली, क्योंकि वह उत्तम वस्तु थी। जब मेरे पिता को मालूम हुआ तो उन्होने आपको कई गालियाँ दी; क्योकि आपने बिना अर्थ समझाये ही हमे कविता रटने के लिए कहा था। वे बोले कि तेरा अर्थ गलत है।

गु०—बेवकूफ ! क्या तूने इसका अर्थ ऐसा किया ? अरे, संसार में जो उत्तम गुण रहते है उन्हीं को मतिमान लोग अंगीकार करते हैं। यह उसका सरल अर्थ है। यदि तू उसे छोड़ अर्थ का

अनर्थ करने लगे तो हम क्या तुम्हारे साम्हने सिर फोड़े ? गधे, नालायक़ !

(इतने मे एक महाशय प्रवेश करते है)

महाशय—प्रणाम, मास्टर साहिब ।

गु०—(तमाखू की थैली छिपाकर) प्रणाम, कहिए क्या काम है ?

महा०—मुझे आपही से काम है। काम खानगी है, परन्तु अत्यन्त आवश्यक है ।

गु०—महाशयजी ! आप ही देख रहे है कि मै बालकों को शिक्षा प्रदान कर रहा हूँ। मै इनके माता-पिताओ से द्रव्य लेता हूँ, इसलिए उन्हे उसका योग्य बदला देना मेरा परम कर्तव्य है। श्रुति-बचन है कि "स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां मा प्रमदः"। खानगी काम के लिए शिक्षा प्रदान करने का पवित्र समय व्यय करना मुझे उचित नही दीखता। आप मेरे घर पर पधारिए और वहाँ हम उस विषय का विचार करेंगे ।

महाशय—आपही के लाभ की बात है। (कान मे कुछ कहता है)

गुरुजी—ऐसा कहिए। तो तो अब ठीक है। यद्यपि शिक्षण का काम अत्यन्त पवित्र है, तिसपर भी कठिनाई मे फँसे हुए मनुष्यो को बचाने का काम उससे भी कही अधिक पवित्र है, क्योंकि कहा भी है कि "परोपकाराय सतां विभूतयः।" मैं केवल अपने ही लाभ के लिए यह कार्य कदापि न करता, परन्तु आप कहते है कि आपका काम अत्यन्त ही आवश्यक है। केवल इसलिए मैं क्षण भर के लिए स्वकर्तव्य-पराङ्मुख होता हूँ ।

महाशय—आपकी पर-हित-चिन्ता प्रसिद्ध ही है। चलिए, तो फिर जल्द चलिए ।

गुरुजी—बालको ! आज तुम अपना सबक अच्छी तरह याद करके नही आये हो। इसलिए आज तुम्हे छुट्टी दी जाती है।

समझे ? मुझे काम है, इसलिए नहीं, बरन यह छुट्टी इसलिए दी जाती है कि तुम्हे अपना सबक़ याद करने के लिए समय मिले। कल घोड़े पर तो एक निबंध लिखना ही है, परन्तु उसीके साथ ही साथ एक गधे पर भी लिख लाना। समझे ? क्यो चन्दू, रामू, कल ज़रूर लिखना है। भला ? नहीं तो आज के समान क्षमा नहीं होगी। क्यो रे नन्दू, यदि तेरे घर मे पूछा कि आज छुट्टी क्यो हो गई, तो क्या कहेगा ?

नन्दू—गुरुजी, मै कहूँगा कि आपके पास कोई एक महाशय आये थे और उन्होने आपको पैसे की लालच बताई, सो आपने हमे छुट्टी दे दी और आप उनके साथ लम्बे हुए।

(इतना कहकर वह भाग जाता है)

गु०—हाँ गधे ! अच्छा कल तुझे देखूँगा।

(और लड़के भी भाग जाते है)

म०—चलिए, अब देर न कीजिए।

गु०—चलिए।

[दोनो जाते है)

महर्षि गौतम का आश्रम

पात्र--

१—विश्वामित्र

२—गौतम

३—चिरंजीव शर्मा विद्यार्थी

स्थान—

गौतम ऋषि का आश्रम

(चिरंजीव शर्मा खेल रहा है)

[विश्वामित्र का प्रवेश]

विश्वामित्र—(चिरंजीव से) यही क्या महर्षि गौतम का तपोवन है ?

चिरं०—(विश्वामित्र को तले से ऊपर तक देखकर) आपको क्या जान पड़ता है ?

विश्वा०—यही क्या महर्षि का आश्रम है ?

चिर०—नहीं तो क्या यह ताड़ी की दूकान जान पड़ती है ?

विश्वा०—तनिक सीधी भाषा मे उत्तर दो, तो क्या कुछ हानि है ?

चिरं०—और नहीं देने से ही क्या कुछ हानि है ?

विश्वा०—महर्षि कहाँ है ?

चिरं०—क्यों, उनकी खोज क्यों करते हो बाबा ? क्या कुछ प्रयोजन है ?

विश्वा०—हाँ, प्रयोजन है। क्या वे इस समय आश्रम मे हैं ?
चिरं०—ना, वे बाघ का शिकार करने गये है।
विश्वा०—बड़े ढीठ देख पड़ते हो ! तुम कौन हो ?
चिरं०—मै भी पूछता हूँ, तुम कौन हो ?
विश्वामित्र—मै महर्षि विश्वामित्र हूँ।
चिरं०—मै चिरंजीव शर्मा अर्शी हूँ।
विश्वा०—अर्शी कैसे ?
चिरं०—मुझे अर्श रोग (बवासीर) हो गया है। इससे अधिक कुछ नहीं हुआ। लेकिन अर्श इतना अधिक हो गया है कि महर्षि होने मे अब अधिक देर नही है।
विश्वा०—मेरे साथ दिल्लगी करते हो ?
चिरं०—ना, दिल्लगी करने का नाता तो अभी तक नही जुड़ा।
विश्वा०—देखो ! मुझे देखते हो ?
चिरं०—देखता नहीं हूँ तो क्या, देख तो रहा ही हूँ।
विश्वा०—क्या देख रहे हो ?
चिरं०—एकदम नव कार्तिकेय ! एकदम मदन-मोहन ! शरीर गोलाकार है। मस्तक लम्बाई की अपेक्षा चौड़ा अधिक है। चेहरे का रंग दाढ़ी के रंग से टक्कर ले रहा है।
विश्वा०—देखो ! मेरे मन मे धीरे धीरे क्रोध पैदा हो रहा है।
चिरं०—सो अपने बारे मे ऐसा बखान सुनकर क्रोध न पैदा होगा, तो क्या प्रेम पैदा होगा ?
विश्वा०—शाप देकर तुमको भस्म कर दूँ क्या ?
चिरं०—घूँसे मारकर तुमको रुई की तरह धुनक डालूँ क्या ?
विश्वा०—ना, देखता हूँ—भस्म ही कर देना पड़ा। हर हर हर हर हर। (टहलने लगते है।)
चिरं०—राम राम राम राम राम (दूसरी ओर टहलने लगता है।)

विश्वा०—राम राम क्यो कर रहा है ?
चिरं०—सुना है, राम का नाम लेने से भूत का भय नही रहता।
विश्वा०—मै क्या भूत उतार रहा हूँ ?
चिरं०—नही तो क्या व्याह के मंत्र पढ़ रहे हो ?
विश्वा०—तू बड़ा ही मूर्ख है। जा! (गला पकड़कर धक्का देते है।)
चिरं०—अच्छा ! तो फिर आ जा, देखूँ। (विश्वामित्र को मारने लगता है)

[गौतम का प्रवेश]

गौतम—यह क्या चिरंजीव! यह क्या कर रहे हो ?
चिरं०—(सकपकाकर) जी कुछ नही, इन महर्षि के साथ ज़रा ज़ोर कर रहा था।
गौतम—(विश्वामित्र से) आप कौन है ?
विश्वा०—मै महर्षि विश्वामित्र हूँ।
चिरं०—सुन लिया गुरुजी! महर्षि का ऐसा ही चेहरा होता है ? आजकल जिसे देखो वही महर्षि है।
विश्वा०—आप ही क्या गौतम ऋषि है ?
गौतम—इस दास ही का नाम गौतम है।
चिरं०—ऐं! दास के क्या माने ?
गौतम—चिरंजीव! इनके चरणो की रज मस्तक में लगाओ। ये एक अत्यंत तेजस्वी महर्षि है।
चिरं०—क्या ? इसीके लिए तो इनके साथ मेरा झगड़ा हो रहा था।
गौतम—यह अपने तेज के बल से महर्षि हुए है। मै इनके आगे कीटाणुकीट हूँ। तुमने इनके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया है। घुटने टेककर इनसे क्षमा की भिक्षा मॉगो।
चिरं०—हॉ! (विश्वामित्र की पीठ पर हाथ रखकर उन्हे सिर से पैर तक

देखता है और फिर स्नेह के भाव से दो-तीन बार पीठ ठोकता है)

महाशय, कुछ बुरा न मानिएगा। (प्रस्थान)

गौतम०—(विश्वामित्र से) महर्षिजी ! यह मेरा शिष्य है। इसकी ढिठाई माफ कीजिएगा। इसका हाल मै फिर कभी आपसे कहूँगा। इस समय दया करके मेरे आश्रम मे पधारिए। नही जानता, किस पुण्य के बल से आज सबेरे ही आप-जैसे महात्मा साधु पुरुष के दर्शन प्राप्त हुए।

विश्वा०—(स्वगत) इतनी नम्रता ! (प्रकट) चलिए।

[दोनों का प्रस्थान]



समालोचना-रहस्य

पात्र —

१—मिस्टर मण्डूक शास्त्री "सम्पादक-सिंधु"

२—जी० जी० वर्म्मा, ग्रंथकार

३—एक नौकर

स्थान—दफ़्तर



(मिस्टर मण्डूक शास्त्री "सम्पादक-सिंधु" बैठे हैं)

मि० मं०—(आप ही आप) अभी तक हिन्दी-साहित्य-संसार में सच्चा समालोचक एक भी नहीं पैदा हुआ। दोष और गुण के विचार करने की योग्यता एक में भी नहीं है, मगर अब मेरी समालोचना देखकर लोगों को विश्वास हो चला है कि हिन्दी-संसार में समालोचक का आसन एक सच्चे समालोचक ने स्वयं ग्रहण कर लिया है। मैं अपनी ज़ोरदार कलम की झाड़ू से साहित्य का सब कूडा-कर्कट साफ किये देता हूँ—बड़े बड़े पत्र-सम्पादक और ग्रन्थकार मेरी समालोचना के कोड़े की चोट से डरकर मेरे आगे हाथ जोड़े खड़े रहेंगे, नाक रगड़ेंगे। (मूछों पर ताव देते हैं)

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—सर्कार, बाहर एक भले मानुस ठाढ़ है।

मि० मं०—कौन है ? क्या नाम है ? कोई बेवकूफ़ जान पड़ता है। अपने नाम का कार्ड क्यों नही भेजा ? बिल्कुल बेक़ायदा !

नौकर—हम उनको चीन्हित नाही है। हमसे उइ पूछिन कि बाबू साहब हैं। हम कहा कि हैं हजूर। बस उइ कहिन कि जाव बाबू से कहौ कि हम उनसे मुलाकात करना मॉगता है।

मि० मं०—अच्छा जा, उनको ले आ।

(नौकर जाता है)

कौन है ? कोई लेखक या ग्रन्थकार ही होगा। अच्छा देखो, मै भी बाबू को कैसा क़ाबू मे करता हूँ।

[एक नौजवान का प्रवेश]

आइए आइए, कहाॅ से आना हुआ ?

नौजवान—जी, मैं यहीं से आ रहा हूॅ। मेरा नाम है जी० जी० वर्मा ग्रंथकार। आप ही क्या "चौपट-चन्द्रिका" के सम्पादक मिस्टर मण्डूक शास्त्री हैं ?

मि० मं०—जनाब, माफ़ कीजिएगा, मै ज़रा ज़रूरत से ज़्यादा स्पष्ट-वादी हूॅ; इसीसे कहे देता हूॅ कि आपको बात-चीत करने का भी शऊर नही है—किसीका, ख़ासकर सम्पादक का, आधा नाम लेना कितनी बड़ी असभ्यता है सो शायद आप नही जानते ?

नौजवान—(दबकर) माफ़ कीजिएगा साहब ! आपका पूरा नाम क्या है ?

मि० मं०—पूरे नाम के लिए तो हिन्दी की वर्णमाला अपूर्ण होगी; मगर हॉ, इसका संक्षिप्त संस्करण सुन लीजिए, "मिस्टर एम० शास्त्री, सम्पादक-सिन्धु"।

नौजवान—"सम्पादक-सिन्धु ?"

मि० मं०—जी हाँ! यह उपाधि मुझे खास मेरे दोस्त ज़मींदार ने मेरी ही सिफारिश से दी है। अच्छा, आप अपना काम कह चलिए।

नौजवान—बहुत दिन हुए मैंने अपनी एक पुस्तक डॉक के ज़रिये आपके पास भेजी थी, मगर उसकी समालोचना अभी तक आपके पत्र मे नहीं निकली।

मि० मं०—पुस्तक भेजी थी ? नाम क्या था ?

नौजवान—"प्रेमलीला" सामाजिक उपन्यास।

मि० मं०—उँः—प्रेमलीला ? हाँ, अखबारों मे मैंने इस किताब का नोटिस पढ़ा है। हाँ तो, यह किताब आप ही की लिखी है ?

नौजवान—जी हाँ।

मि० मं०—मगर यह किताब मुझे तो नहीं मिली। बदमाश डाकिए ने गड़बड़ की है। अच्छा, एक कापी भेज देना, समालोचना हो जायगी।

नौ०—मेरे पास उसकी एक कापी मौजूद है। इस दास पर कृपा करके आप जल्द समालोचना निकाल देंगे, तो बड़ा उपकार होगा। आप हिन्दी के एक सुयोग्य सच्चे समालोचक हैं। मुझे विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि आपकी ज़रा कृपा-दृष्टि होने से सड़ी से सड़ी किताब के भी दो सप्ताह मे चार एडीशन हो गये है! महाशय, मेरी किताब की अभी कुछ भी बिक्री नही हुई। इसीसे आपकी शरण में आया हूँ।

मि० मं०—अजी तो आप इतना घबड़ाते क्यो हैं ? पोथी पास है, और आप ग्रन्थकार स्वय साक्षात् सामने उपस्थित है। मै अभी समालोचना किये देता हूँ। (नौजवान की जेब को ताकता है) अच्छा, आपने पुस्तक का क्या नाम बताया ?

नौ०—प्रेमलीला।

मि० मं०—वाह ! बहुत ही अच्छा नाम है । केवल इसी नाम के गुण से आपकी सारी कापियाँ बिक जानी चाहिए । आप अभी छोकरे होने पर भी प्रेमी ग्रन्थकार जान पड़ते हैं । यह हिन्दी और हिन्दी-हितैषियो के सौभाग्य की बात है । देखो, जगत मे सभी प्रेम की लीला है । मै समझता हूँ कि आपने एक आध्यात्मिक और दार्शनिक भाव को बहुत अच्छी तरह जान लिया है । आजकल के पाठक-पाठिकाएँ प्रेम ही की बाते बड़े चाव से पढ़ती है । आप बड़े दूरदर्शी ग्रन्थकार है, आपने आजकल का रंग-ढंग बहुत अच्छी तरह पहिचान लिया है । आपकी पुस्तक अभी नही, तो दस रोज़ मे ज़रूर ज़रूर ज़ोर-शोर से बिकेगी ।

नौ०—(ख़ुश होकर) आपकी कृपा होगी, तो ऐसा ही होगा ।

मि० मं०—(उसकी जेब ताकता हुआ) मगर भाई ! ताली दोनो हाथ से बजती है—हूँ । अच्छा, आपके उपन्यास का प्लाट क्या है ?

नौजवान—एक षोड़शी युवती के निराश-प्रेम को लेकर बड़ी मिहनत से मैने यह नया प्लाट बनाया है ।

मि० म०—वाहवा, तब तो आपकी पोथी—वाहवा—धन्य—है—धन्य है । उपन्यास का मुख्य अंग ही युवती है, और वह युवती यदि षोड़शी हो, तब तो वाहवाह—क्या कहना है—सोना और सुगन्ध है । देखो, सोलह कला से चन्द्रमा पूर्ण होता है, सोलह आने का रुपया होता है, सोलह उपचार से पूजा पूरी होती है, अंग्रेज़ भी कहते हैं-"स्वीट सिक्सटीन" । तुम्हारे उपन्यास मे भी वही सोलह बरस की सुन्दरी है । नही मालूम, अबतक तुम्हारे ऐसे रसीले ग्रन्थ की बिक्री क्यो नही हुई । देखो, अभी अभी किसी लेखक ने छोटी छोटी सोलह कहानियों को "षोड़शी" नाम से छपवाया है । उस "षोड़शी" के इतने ग्राहक निकले

कि वह कई बार निकल चुकी है। अच्छा, अब जरा आप प्लाट भी सुना जाइए।

नौजवान—सुनिए। एक सुन्दरी लड़की ४–५ बरस की अवस्था में ही अपने पड़ोसी एक ख़ूबसूरत लड़के पर आशिक़ हो गई। धीरे धीरे लड़की जवान हुई; मगर उसके माँ-बाप ने उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ दूसरे आदमी से शादी कर दी। वह लड़की अपने पति को फूटी आँखों न देख सकती थी। लडकी जब ठीक सोलह बरस की हुई, तब अचानक एक दिन वह लड़का—जिसपर वह आशिक़ थी—राह मे खड़ा दिखा। देखते ही वह कटी मछली की तरह तड़फने लगी।

मि० मं०—बस बस, अब कहने की ज़रूरत नहीं है। मै समझ गया। उसके बाद उस युवती ने अपने प्रिय प्रेमी को न पाकर आत्म-हत्या कर डाली। क्यों, यही न ?

नौजवान—वाह! आपने बिल्कुल ठीक जान लिया। आप सचमुच बड़े भारी प्रज्ञाचक्षु है।

मि० मं०—तुमने बहुत ही ठीक घटना-क्रम रक्खा है। पढ़नेवाले रोये बिना कभी नही रह सकते। सचमुच तुम एक भावुक, रसिक और प्रेमी ग्रथकार हो। नाविल का प्लाट ऐसा ही होना चाहिए। नायक-नायिका का निराश-प्रेम, मूर्च्छा, लंबी-साँस और अंत को आत्महत्या यही तो उपन्यास का आवश्यक मसाला है। आपकी किताब मे सभी बाते है। इसमे कोई शक नही कि किताब ऊँचे दरजे की लिखी गई है। बस, आप ज़रा कृपा करके इसकी भाषा की भी बानगी दिखा दीजिए। मै अभी आपको "सिद्धहस्त ग्रथकार" का पक्का सर्टीफ़िकेट दिये देता हूँ।

नौजवान—शुरू से पढ़ूँ ?

मि० मं०—अरे नहीं जी, चाहे जहाँ से दस पाँच लाइने पढ़कर सुना दो। मैं केवल भाषा की चमक-दमक देखना चाहता हूँ।

नौजवान—अच्छा, सुनिए (पढ़ता है)

चौथा बयान।

कली में कीड़ा।

'हन्त हन्त! गतः कान्तः वसन्ते सखि नागतः।'

(कालिदास)

मि० मं०—क्या क्या? हन्त हन्त के बाद तुमने क्या कहा?

नौजवान—जी, यह एक संस्कृत के श्लोक का टुकड़ा है—कालिदास का एक वाक्य है। आजकल उपन्यासो में हर एक परिच्छेद के शुरू मे एक 'मोटो' देने की चाल निकल पड़ी है। इसीसे देखा-देखी मैंने भी दे दिया है।

मि० मं०—सो अच्छा ही किया, मगर संस्कृत का "मोटो" क्यो दिया? और किसी भाषा का वाक्य उद्धृत कर देते।

नौजवान—जी, मैंने सुना है कि आजकल जिसको जिस भाषा में अधिकार नहीं होता वह उसी भाषा के अवतरण उठा उठाकर अपने लेखो मे रख देता है। मैंने बहुत से ऐसे हिन्दी के प्रबन्ध देखे है कि उनमे दो दो तीन तीन सौ अंग्रेजी फ़ुटनोट नीचे चमचमा रहे हैं; मगर लेखक की तीन पुश्तो मे कोई अंग्रेज़ी का विद्वान् नही हुआ।

मि० मं०—हाँ, बेशक यह कुछ लेखको का दस्तूर सा हो गया है। अच्छी बात है, तुम भी चाहे मोटो दो और चाहे फ़ुटनोट लिखो, सब अंग्रेजी मे होना चाहिए। अंग्रेज़ी मोटो और फ़ुटनोट होने से लेख और लेखक दोनों इज्ज़त की निगाह से देखे जाते है। आपने जहाँ जहाँ संस्कृत मोटो दिये हैं उन्हें काटकर शेक्सपियर, बायरन, टेनीसन वगैरह अंग्रेज़ कवियो के

मोटो दीजिए। दूसरे एडीशन मे आप सब अंग्रेज़ी मोटो दीजिएगा। या, यहाँ पर शेक्सपियर की यह पोइट्री लिख दीजिए :—

"Thirty days have September,
April, June and November
February has 28 alone,
And all the rest of thirty one"

आहा, वाहवाह, देखो इस पोइट्री का भाव कैसा सुन्दर है! इसके आगे कालिदास की कविता, कोयल के आगे कौआ जान पड़ती है। खासकर इसकी तीसरी लाइन February has 28 alone इसकी तुलना नहीं है। संस्कृत क्या, फरासीसी, इटालियन, जर्मन, लैटिन—किसी भी भाषा मे ऐसा भाव-पूर्ण अलंकार-पूर्ण कविता का टुकड़ा नहीं है! अहा, February has 28 alone! इस नाशशील जगत् मे, इस ज्वाला-यन्त्रणा-मय संसार-मरुभूमि मे, विधाता के इस विशाल विश्व के वक्षः-स्थल मे—फेब्रुअरी की कैसी कम आयु है! सिर्फ २८ दिन! इस तरह थोड़े शब्दो मे ऐसा ऊँचा भाव दिखलाना! धन्य है कवि! कैसी सुन्दर, कैसी मधुर, कैसी मुलायम, कैसी ख़स्ता रचना है! उसकी ध्वनि यही है कि जगत मे कुछ भी चिर-स्थायी नहीं है, विश्व-सृष्टि क्षण-भर मे ध्वंस होनेवाली है। इसी रहस्य को समझाने के लिए कवि ने कहा है कि February has 28 alone फूल खिलता है और सूखकर गिर जाता है; चन्द्रमा उदय होता है और अस्त हो जाता है; हवा चलती है और रुक जाती है; इसीसे फेब्रुअरी की इतनी कम आयु है! आज राज है, कल फकीरी है, आज मिलन है, कल विरह है, आज वसंत है, कल बरसात

है; आज पूनो है, कल अमावस है, आज हँसी है; कल रोना है; आज जन्म है, कल मृत्यु है—सभी जगह प्रकृति का यह महा रहस्य नजर आता है; इसीसे फरवरी २८ दिन की है! कवि की कैसी उच्च कल्पना है! कैसी अमानुषी प्रतिभा है! कवि, तू धन्य है! शेक्सपियर, तू धन्य है! (इधर-उधर घबड़ाई सी नजर डालता है)—

नौजवान—बस बस, अब आपका कहना जन्म भर न भूलूँगा—आइन्दा अँग्रेज़ी में मोटो ही नहीं दूँगा, बल्कि अपनी माँ-बहिन से भी अँग्रेज़ी मे बातचीत करूँगा। अच्छा, अब आगे सुनिए—

मि० मं०—पढ़िए।

नौजवान—(पुस्तक खोलकर पढ़ता है) "आधी रात से अधिक गुज़र गई है। दुनियाँ भर में सन्नाटा है। केवल झिल्ली-झनकार के सिवा कहीं कोई चूँ तक नहीं करता। सभी लोगो ने नींद की गोद मे दिन भर के कर्मक्लांत कलेवर को पटककर ज़िन्दगी की लड़ाई यानी जीवन-संग्राम को भुला दिया है। मूसलधार पानी बरस रहा है, मेघमाला के मुख मे बिजली की मुसकान लजीली नई नायिका की हँसी की तरह कभी चमक जाती है और कभी ग़ायब हो जाती है। बिजली ज़ोर से कभी कड़कड़ाती है जिससे अभिसारिकाओ की छाती डर से फड़फड़ाती है। इसी समय एक सुन्दरी सामने झोपड़े में आँखे डबडबाई हुई लिये विराजमान है। अस्तु, पाठक लोगो! क्या आप इसे पहिचान गये? यह वही हमारी मुन्नी है। मुन्नी अकेले चिन्ता की गढ़ैया में ग़ोते खा रही है। इसी समय आँगन में लगे हुए इमली के पेड़ पर एक घूग्घू बोल उठा। हाय हाय! मुन्नी का कलेजा खौफ के मारे सूखे पत्तो की तरह खड़खड़ाने लगा–"

मि० मं०—(मन मे) यह बेटा तो हमसे भी बढ़के सयाने और बतोले-बाज देख पड़ते है। मुफ़ मे मतलब निकालनेवाले है। अच्छा, मै भी छकाता हूँ। (मुँह बनाकर) बस बस, रहने दो। तुम बड़े नासमझ, नादान, निकम्मे और नालायक हो—तुमको कुछ भी शऊर नहीं है। किताब लिखना तुम ऐसे गोबर-गनेसो का काम है ?

नौजवान—(चौंककर) जी, यह सब आप क्या कह रहे है ? मैंने क्या किया ?

मि० मं०—क्या किया, सब गुड़ मिट्टी कर दिया ! ख़ून-मांस के देह मे कोई इतना अन्याय कहीं सह सकता है ? तुम्हारे नाविल मे षोड़शी युवती थी, एक ऐसी चीज़ थी, निराश प्रेम था, आत्म-हत्या थी। सब तो था, मगर हाय हाय, तुमने सब प्लाट मिट्टी में मिला दिया !

नौजवान—जी, कुछ कहिए भी तो, क्या बिगाड़ डाला ?

मि० मं०—(गुस्से से कॉपकर) चुप रहो। हाय हाय, ऐसी सुन्दरी षोड़शी सृष्टि में अद्वितीय सुन्दरी अकेली रात को सोच रही है—ऐसे सुन्दर समय मे तुमने मूसलधार पानी बरसा दिया ! तुमको उचित था कि ऐसी कमनीय कामिनी को धरती पर न बिठलाकर चन्द्र-किरण से उज्ज्वल हो रहे किसी महल के कमरे मे मुलायम पलॅग पर लिटाते ! तुमको उचित था कि जब सुन्नी सोच रही थी तब उस आम की डाल पर कोयल को बुलवाते ! हाय हाय, तुमने लिख दिया कि इमली पर घूग्घू बोला ! अरे बेवकूफ, अगर कोई बुढ़िया बैठी सोच रही होती तो उसके लिए घूग्घू का बोलना ठीक था, मगर जवान औरतें कहीं घूग्घू की आवाज़ सुनकर कॉप उठती है ? तुम पूरे अहमक हो, तुम अभी मेरे घर से निकल जाओ। तुम्हारा काम है

नाविल लिखना ? तुम ऐसे बेवकूफ की किताब कोई भी समझदार पाठक नहीं पढ़ सकते। मैंने अब समझा कि तुम्हारी किताब अब तक क्यों नहीं बिकी।

नौजवान—(मन में) समझ गया, इस उछल-कूद का मतलब मालूम हो गया। अच्छा, मैं अभी शान्त किये देता हूँ। (जेब से ५ रुपये का नोट निकालकर आगे रखता है) आपका कहना बहुत ठीक है। कृपाकर इस बार तो ऐसा कीजिए कि सब कापियाँ बिक जायँ। अब जो किताब लिखूँगा पहिले आपको दिखा लूँगा, और आपकी सम्मति साथ ही उसके टाइटिल पर छपा दूँगा।

मि० म०—(नोट जेब में रखकर) हाँ हाँ, इसमें क्या चिन्ता है ? भाई साहब, मगर ख़्याल रखिएगा, भूल न जाइएगा।

नौजवान—नहीं साहब, अच्छा तो इसकी समालोचना कब निकलेगी ?

मि० मं०—बस, यही कल परसों निकल जायगी।

नौजवान—ज़रा सबके पहिले अच्छी जगह पर अच्छी चटपटी समालोचना हो।

मि० मं०—बस, अब आप खातिर जमा रक्खे, वह समालोचना होगी कि आप भी फड़क उठेंगे।

नौजवान—मैं भी आपकी सेवा से मुँह न मोड़ूँगा।

(नौजवान का जाना)

[पटाक्षेप]





पात्र :—

१—पंचानन्द

२—विवेकानन्द

पंचानन्द—(हँसता हुआ) हा हा हा हा, ही ही ही ही, हू हू हू हू।

विवेकानन्द—क्या है पंचानन्दजी ?

पं०—डंके की चोट पर ! डंके की चोट पर !!

वि०—आखिर सुनूँ भी तो ?

पं०—वही वही जो आज ५० वर्षों से करता आता हूँ।

वि०—क्या क्या ?

पं०—क्या तूने आज मुझे पहचाना नहीं जो ऐसी अनजान-सरीखी बातें कर रहा है ?

वि०—आपको, आपको ?

पं०—हाँ हाँ मुझे।

वि०—आपको क्यों न पहचानूँगा ?

पं०—अच्छा बतलाओ, मेरा नाम क्या है ?

वि०—आपको लोग रजनीविहारी मुखोपाध्याय कहते हैं।

पं०—मुखोपाध्याय उखोपाध्याय कुछ नहीं, मेरा नाम तो खाली "रजनीविहारी" है।

वि०—अरे भाई! मैं भूल गया।

पं०—अच्छा तो, तू अब क्या चाहता है?

वि०—चाहना क्या है? आपका यह स्वाँग देख रहा हूँ।

पं०—अबे आँखों के अंधे! क्या तू इसे निरा स्वाँग समझता है?

वि०—जी हाँ, मैं तो अब तक उसे इसी दृष्टि से देखता रहा।

पं०—तू अभी तक छः महीने का बच्चा ही बना रहा।

वि०—और, आप?

पं०—मेरे तो अभी दाँत ही नहीं निकले। यह देख मेरा मुख।

वि०—अरे पाखंडी! यह भड़भुँजे के भाड़ जैसा मुख मुझे काहे को बतलाता है? मैं सब जानता हूँ।

पं०—तू क्या जानता है?

वि०—मैं तेरे बाप भूधरानन्द शार्ङ्गपाणि तक को जानता हूँ।

पं०—अरे बापरे बाप! तब तो तू सत्ययुगी मनुष्य है। बड़ा ग़ज़ब हुआ। मैं तो अब तक तुझे छः मास का बच्चा ही समझता रहा।

वि०—अच्छा ख़ैर, यह तो बतला कि तूने ये सारे ढोंग काहे को फैलाये हैं?

पं०—तेरे सिर की सौगन्द, ये ढोंग न होकर गंभीर शिक्षाएँ हैं।

वि०—किसके लिए?

पं०—संसार के लिए।

वि०—इतनी व्युत्पत्ति तूने कहाँ से प्राप्त कर ली?

पं०—तुझे नहीं मालूम कि मैं संस्कृत का अध्यापक हो गया हूँ?

वि०—ग़ज़ब रे गज़ब! यह कब हुआ?

पं०—परसों के तीसरे दिन।

वि०—फिर तेरी नियुक्ति कहाँ हुई ?

पं०—वैतरणी के घाट पर।

वि०—वहाँ क्या तू यमदूतों का काम करता है ?

पं०—दुर पागल! अध्यापक कहीं यमदूतों का काम करते हैं ?

वि०—हाँ हाँ, मुझे मालूम हो गया। तू वहाँ नारदी-कर्म करता होगा।

पं०—अबे शंख के शंख! नारदी-कर्म नहीं, कर्तव्य-कर्म्म।

बि०—हाँ हाँ, वही तो।

पं०—तू पूरा वैशाखनन्दन वल्द भोलानाथ है।

वि०—और तू ?

पं०—मेरा असली नाम खद्योतनाथ उर्फ तिमिर-भास्कर है

वि०—तब तो तू मुझसे बहुत ऊँचा है।

पं०—ऊँचा न होता तो अध्यापकी कैसे करता।

वि०—अबे! क्या वैतरणी पर कोई कालिज है ?

पं०—नहीं नहीं, एक मामूली पाठशाला है।

वि०—मामूली पाठशाला! मैं तो समझता था कि कालिज होगा।

पं०—मै थोड़े दिनों मे उसे कालिज बनानेवाला हूँ।

वि०—बनेगा क्या, बंटाढार हो जावेगा।

पं०—क्यों ?

वि०—जहाँ तुझ-सरीखे वर्णसंकर के चरण पड़े, वहाँ का क्या ठिकाना।

पं०—अबे ढपोलशंख! त्रिकालज्ञ त्रिकालज्ञ कहते हुए लोगों के मुख सूखे जाते है और तू ऐसा घृणित, तुच्छ तथा निंद्य शब्द अपने मुख से निकाल रहा है। क्या करूँ? तू मेरा बहुत पुराना मित्र है; इससे तेरी इस धृष्टता पर ध्यान नहीं देता।

और कोई होता तो अभी तमाशा दिखा देता।

वि०—क्या तू त्रिकालज्ञ है ?

पं०—हाँ हाँ, अभी कल के दूसरे दिन ज्योतिष की सबसे ऊँची परीक्षा मे बैठ ज्योतिर्विद् का प्रथम पद प्राप्त कर चुका हूँ।

वि०—मरा रे मरा! तब तो तू एक नामी ज्योतिषी हो गया।

पं०—और सुनता क्या है ?

वि०—यह विद्या तूने किसके पास पढ़ी ?

पं०—तू हमारे गुरु को नहीं जानता ?

वि०—मैंने तो आज तक उनका नाम नहीं सुना।

पं०—उन्हे लोग ढकोसानन्द उर्फ लम्पटदास ब्रह्मचारी कहते है।

वि०—हाँ हाँ, मुझे भी कुछ स्मरण हो आया। वे काशीजी के विश्रामघाट पर रहते है न ?

पं०—व [illegible] का विश्रामघाट ?

वि०— [illegible] ो को चिरकाल के लिए शान्ति-प्रदान करनेवाला [illegible] —अ [illegible] न"।

पं०—[illegible] मन्! भवसागर के लिए कर्ण-धार-स्वरूप हमारे र [illegible] को तू ऐसा कलंक लगाता है ? उनकी इतनी [illegible] दा करता है ? रे नराधम! सौ जन्म तक तेरा निस्तार न [illegible] ा।

वि०—अच्छा, तो तू ही बतला दे कि वे कहाँ रहते हैं ?

पं०—अबे शृङ्ग-पुच्छ-विहीन बछिया के बाबा! वे यमराज के द्वारपाल है।

वि०—विद्या पढ़ने तू उनके पास गया था कि वे ही तेरे पास आये थे ?

पं०—उन्होने ही मेरे पास आने की कृपा की थी।

वि०—क्या उनसे पहिले कभी तेरी भेंट हो गई थी ?

पं०—उनका मेरे पिता से बड़ा हित था। उसी पुरातन मैत्री का स्मरण कर वे मेरे पास आये थे।

वि०—तब तो तू बड़ा भाग्यशाली है।

पं०—नहीं तो क्या तेरे जैसा अभागी हूँ ?

वि०—अच्छा, तो मै तेरे ज्योतिष की परीक्षा लेना चाहता हूँ।

पं०—एक बार नहीं, पचास बार। साँच को आँच कहाँ ?

वि०—अच्छा तू खटमल को पहचानता है ?

पं०—अच्छी तरह। वह तो हमारा पक्का मित्र है।

वि०—तो यह बतलाओ कि उसका रंग कैसा होता है ?

पं०—लाल लाल कत्था-जैसा।

वि०—उसके दाँत तो दिखलाई ही नही देते, तब वह मनुष्यों को काटता कैसे होगा ?

पं०—उसके दाँत पेट मे रहते हैं।

वि०—और क्यो जी ? बगुला ऊपर से तो बड़ा ही उज्ज्वल होता है। उसके भीतर भी वैसी ही उज्ज्वलता क्यो नह पाई जाती ?

पं०—ब्रह्मा ने उसे बुढ़ापे मे बनाया था, इससे अन्तकाल की सूचना देनेवाले अपने बालो का, जिनका कि मारे चिन्ता के उसे सदैव स्मरण रहा करता था रंग तो उसे दे दिया, पर बुद्धि मोह को प्राप्त हो जाने के कारण अन्तःकरण बनाते समय तनिक चूक गया जिसका परिणाम उस बेचारे के लिए बड़ा शोक-जनक हुआ। उसे लोक-निन्दा का पिटारा सिर पर रखकर चलना पड़ा।

वि०—और, गीदड़ मे इतनी धूर्तता कहाँ से आई ?

पं०—उसने पूर्व जन्म में कुछ दिन तक हमारे गुरु की शिक्षा पाई थी, इसीसे वह इतना चालाक हो गया।

बि०—वाह वाह, तब तो तुम्हारे गुरु महाराज '"त्रैलोक्य-तिलक"' की उपाधि से विभूषित होने योग्य है।

पं०—तभी तो डंके पर चोट देके कहता हूँ कि विद्वत्ता मे मेरी बराबरी करनेवाला इस जगत मे कोई नही है।

वि०—तू आजकल कहाँ रहता है ?

पं०—अपने आफ़िस मे।

वि०—मै भी तेरा आफिस देखा चाहता हूँ।

पं०—उस समय जब कि मै आफिस मे रहता हूँ कोई भी मेरे पास नही आ सकता और बातचीत भी नही कर सकता। मेरे गुरु महाराज भी यदि उस समय आवे तो वहाँ सात मिनट से अधिक न ठहर सके।

वि०—'रजनीविहारी' उल्लू को कहते है, सो तू निरा उल्लू है। भला उल्लुओ के भी कही आफ़िस हुए है ?

पंचानन्द—ही ही ही ही, अब तो तूने मेरी सात पीढ़ी तक को पहचान लिया।

[पटाक्षेप]



हाँ में हाँ

पात्र—

१—रामचरण—एक ग़रीब किसान

२—मि० जोकसिंह—एक ख़ुशामदी मनुष्य

मि० जोकसिंह—रामचरण, आज तुम उदास क्यों हो ?

रामचरण—अरे क्या बतलाऊँ ? वह ज़मीन जो तुम्हारे साम्हने पड़ी है उसमे मैंने एक लौकी का झाड़ लगाया था।

मि० जोक०—अच्छा तो किया था। मकान के साम्हने इतनी जगह क्यों ख़ाली पड़ी रहे ? दो एक झाड़ रहने से अच्छा दिखता है।

राम०—वह वृक्ष तो धीरे धीरे बढ़ने लगा।

मि० जोक०—वह तो बढ़ेगा ही, बढ़ेगा क्यों नहीं ? अवश्य बढ़ेगा, तुमने उसे कितने जतन से रक्खा है, रोज़ रोज़ उसमे पानी डालते हो, खाद देते हो। वह अवश्य ही बढ़ेगा।

राम०—भाई, मैंने फिर उसके लिए एक मचान बना दिया और क्रम क्रम से उसमे तीन लौकी हुईं।

मि० जोक०—अवश्य होंगी। जिस झाड़ की तुमने इतनी सेवा की उसमे फल न लगे यह तो असम्भव बात है। तीन तो क्या; अभी और लगेंगे।

मि० जोक०—जरूर गाली देगा। एक तो तुमने टैक्स न दी, दूसरे उससे कड़ी कड़ी बाते कहीं। वह जरूर गाली देगा।

राम०—गाली खाकर मै तो जल उठा और मैने भी खूब गाली दी।

मि० जोक०—बहुत ही अच्छा किया। उसने तुम्हे गाली दी। फिर भला तुम क्यो चुप रहोगे?

राम०—तब तो उसने मेरा गला पकड़कर दो चार चपते और घूँसे लगाये।

मि० जोक०—वह चपत तो जरूर मारेगा। पहिले तो तुमने टैक्स न दी, दूसरे गाली दी। तो क्या वह चुप रहेगा?

राम०—वह तो मार-पीटकर एक लौकी ले गया।

मि० जोक०—ले तो जायगा ही। क्या वह इतनी गड़बड़ करके भी न ले जायगा?

राम०—तब तो मै बाकी एक लौकी नाली मे फेक दुःखी हो घर आया।

मि० जोक०—फेक दिया सो अच्छा किया। जिस लौकी के पीछे मारपीट हुई उस लौकी को रखना क्या अच्छी बात है?

राम०—फिर घर में आकर मैंने उस झाड़ को उखाडकर मचान को जला दिया।

मि० जोक०—अच्छा किया। जिस लौकी के पीछे इतना अपमान हुआ उस झाड़ को रखना अच्छी बात नही है।

राम०—पर भाई, मेरा दिल उस झाड़ के लिए दुखने लगा।

मि० जोक०—अवश्य ही दुखा होगा। जिस झाड़ के पीछे तुमने इतनी तकलीफ़ उठाई, उसे पाला-पोसा, क्या तुम्हे उसके उखाड़ने से सुख होगा? नही, दुख होगा, अवश्य होगा। ख़ैर, अब आज्ञा दीजिए। जरा रायसाहब के यहाँ जाना है। नमस्कार।

राम०—अच्छा, नमस्कार।

[प्रस्थान]

राणा अमरसिंह और महाबतख़ाँ

पात्र—

१—राणा अमरसिंह

२—महाबतख़ाँ

३—एक चारण

४—तीन-चार बालक

स्थान—उदयसागर का किनारा।

[बादल घिरे हुए है। राणा अमरसिंह अकेले खड़े है]

[महाबतख़ाँ आते है]

राणा०—बन्दगी जनाब!

महा०—मेवाड़ के राणा की जय हो!

राणा०—जनाब सिपहसालार साहब! आप ख़ाली लहू की नदियाँ बहाना ही नही जानते, बल्कि व्यंग करना भी ख़ूब जानते है। अच्छी बात है, मेवाड़ के राणा की जय हो!

महा०—नहीं महाराज! मै व्यंग नही करता।

राणा०—तुम्हारे व्यंग करने या न करने से कुछ होता जाता नही। महाबतख़ाँ, हम तुमसे एक बार मिलना चाहते थे।

महा०—कहिए, क्या आज्ञा है?

राणा०—तुममे विनय तो ख़ूब है! अच्छा सुनो। हमने तुम्हे एक ऐसे काम के लिए बुलाया है जो तुम्हारे सिवा और किसी-से नही हो सकता।

महा०—आज्ञा कीजिए, महाराज !

राणा०—महाबतखाँ, ज़रा एक बार हमारी ओर देखकर बतलाओ तो सही कि तुम हमारे कौन हो ?

महा०—महाराज, मैं आपका भाई हूँ।

राणा०—बहुत ठीक, और तुमने काम भी भाई के योग्य ही किया है। तुमने अपने पितामह और प्रपितामह की भूमि मेवाड़ को मुग़लों-द्वारा पद-दलित कराया है ! तुम्हारे दोनों हाथ उसके लहू से रँगे हुए हैं।

महा०—महाराज, मैंने बादशाह का नमक खाया है।

राणा०—सो कब से ? महाबतखाँ, जाने दो, तुमने तुम्हारा जो काम था उसे किया। उसके लिए तुमसे वाद-विवाद करना व्यर्थ है। जो विधर्मी हो, मुगलों की जूठन खानेवाला हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। जो एक अनियम और उद्दाम स्वेच्छाचार का उद्गमन हो, उसके लिए यह काम अनुचित नहीं है। तुमने मेवाड़ का ध्वंस किया है। पर वह काम अभी तक पूरा नहीं हुआ। तुम्हें उचित है कि तुम उसके साथ मेवाड़ के राणा का भी अन्त कर दो। यह लो तलवार (तलवार आगे बढ़ाते हैं)

महा०—राणा—

राणा०—जो हम कहते हैं उसके विरुद्ध कुछ भी मत कहो। सुनो, तुम हमें मारो। इससे तुम्हारा कलंक कुछ अधिक न बढ़ जायगा। और हम तुम्हें कोई ऐसा काम भी नहीं बतला रहे हैं जो तुम्हें अप्रिय हो। हम जानते हैं कि तुम हमारा रक्त पीने के लिए छटपटा रहे हो। तुम्हारा दाहिना हाथ हमारे प्राण लेने के लिए आग्रह से काँप रहा है। तुम हमारा वध कर डालो।

महा०—महाराज, महाबतख़ाॅ इतना हीन नहीं है। मैंने तलवार चलाकर और आग लगाकर मेवाड़-भूमि को श्मशान अवश्य बना दिया है, पर तो भी मैंने अन्याय्य-युद्ध नहीं किया है, न्याय्य-युद्ध किया है।

राणा०—न्याय्य-युद्ध! महाबत, तुम इसे न्याय्य-युद्ध कहते हो? एक छोटे से राज्य के मुट्ठी भर सैनिकों पर इतने बड़े साम्राज्य की विपुल सेना की चढ़ाई! एक चिनगारी को बुझाने के लिए समुद्र का प्रवाह! एक बालक की आत्मा पर नरक का दुःस्वप्न! और फिर भी इसे न्याय्य-युद्ध बतलाते हो? जाने दो, तुम जीत तो गये ही हो, अब उसमे जो कसर है उसे भी पूरी कर डालो। यह तलवार राणा प्रतापसिह जी मरते समय दे गये थे और कह गये थे—'देखो इसका अपमान न होने पावे।' पर हमने इसका अपमान किया है। अत. वह अपमान हमारे रक्त से धुलकर साफ़ हो जायगा।

महा०—महाराज, महाबतख़ाॅ योद्धा है, जल्लाद नहीं।

राणा०—अच्छी बात है। तो फिर युद्ध कर लो। लो, हाथ में तलवार। (तलवार सँभालते है)

महा०—महाराज, मैंने मेवाड़ के विरुद्ध अस्त्र उठाना छोड़ दिया है।

राणा०—वह कब से? तलवार लो, तलवार! आज मेवाड़ के श्मशान पर मृत माता का शव कन्धे पर रखकर हम तुम्हे द्वंद्व-युद्ध के लिए आह्वान करते है।

महा०—महाराज, सुनिए—

राणा०—नहीं, हम कुछ भी न सुनेंगे। भीरु! म्लेच्छ! कुलांगार! युद्ध कर। देखे, तेरी किस वीरता—किस बहादुरी के कारण सारा भारत काँपता है। हम छोड़ेगे नहीं। अधम! नरक के कीड़े! शैतान!

महा०—अच्छी बात है महाराज, तब लड़ ही लीजिए। (तलवार निकालकर) सावधान! भारत मे यदि महाबतखाँ का कोई प्रति-द्वन्द्वी है तो एक राणा ही है, तो भी सावधान!

(दोनो तलवारो को सँभालते है)

राणा०—आज भाई भाई मे युद्ध होता है। ऐसा युद्ध संसार मे किसीने न देखा होगा। बस, अब पृथ्वी पर प्रलय हो जाय!

[इतने मे एक चारण दोनो के बीच मे आकर खड़ा हो जाता है]

चारण०—यह क्या महाराज! यह क्या—(महाबतखाँ से) शान्त होओ!

राणा०—हट जाओ, तुम इसमे बाधा मत डालो।

चारण०– महाराज! शान्त होइए। जो कुछ सर्वनाश होना था सो हो चुका। अब उस सर्वनाश को अपने भाई के रक्त मे रंजित न करिए। इस शोक की सान्त्वना हत्या नही है। इसकी सान्त्वना है फिर से मनुष्य होना।

राणा०—मनुष्य होना! सो कैसे?

चारण—शत्रु-मित्र का ज्ञान भूलकर, विद्वेष का त्याग कर, अपनी कालिमा और देश की कालिमा को विश्व-प्रेम के जल से धोकर!—गाओ बालको, वही गीत गाओ जो मैने तुम लोगो को सिखलाया है।

[कई बालक गाते हुए आते है। चारण भी उनके साथ गाने लगता है]

(सोहनी—ग़ज़ल की धुन)

तुम सोक काहे को करौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ।
जो देश छूट्यो दुख न तो, फिर से मनुष्य सबै बनौ॥
है कोप औरन पै वृथा, जो आप अपने शत्रु हो।
है दोष अपनो मन धरौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ॥

'वर्त्तमान' आशा-रहित, जो चाहो मिटि जाय।
तो भाई भाई मिलो, करो सप्रेम सहाय॥
'यह आपनो,' 'यह गैर,' तजि यह, गैर को अपनो करौ।
यह जग-भवन अपनो गनौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ॥
होय शत्रु उन्नत-हृदय, जो उदार तो ताहि।
प्रेम-सहित दीजे हृदय, सब सों सदा सराहि॥
अरु मित्र जो है धूर्त कपटी, शत्रु वह सबसे बड़ौ।
तुम दूर ही वासों रहो, फिर से मनुष्य सबै बनौ॥
जग महँ द्वै सेना खड़ी, करिबे को नित जंग।
पाप-सैन्य तजि पुण्य के, दल को कीजे संग॥
जगदीस को नित ही नवौ, डूबे स्वदेस समाज हू।
है धर्म जित-तित ही रहौ, फिर से मनुष्य सबै बनौ॥

राणा०—महाव्रत !

महा०—महाराज !

राणा०—तुम्हारा कोई दोष नहीं है। हमारा ही दोष है। भाई, क्षमा करो।

महा०—भैया, आप मुझे क्षमा करें। (दोनों गले मिलते हैं)

[पटाक्षेप]



'स' और 'म' का झगड़ा

पात्र —

दो लडके—एक 'स' के लिए और दूसरा 'म' के लिए

स—भाई 'म', ससार मे छोटे से छोटे आदमी का भी एक न एक मित्र रहता है, पर मेरा कोई नहीं। इससे चित्त को सदा चिन्ता रहा करती है। क्या तू किसी ऐसे पुरुप को बतला सकता है जिसे मै अपना मित्र बना सकूँ ? पर देख, वह मुझसे हर बात मे बड़ा हो, और यदि ऐसा न मिले, तो बराबरी का तो अवश्य ही हो।

म—भाई साहिब ! आपको मित्र की क्या आवश्यकता है ? यदि आपमे भलमनसाहत है, तो सारा संसार आपका मित्र है। क्या आपने यह कहावत नहीं सुनी, "आप भले तो जग भला"।

स—तेरा कहना ठीक है; पर सुन, जिस रसोई के बहुत से रसोइए रहते है वह बिगड़ ही जाती है। यही हाल मित्रता का है। तभी तो भर्तृहरि ने कहा है :—

एको देवः केशवो वा शिवो वा
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा।
एको वासः पत्तने वा वने वा
एका नारी सुन्दरी वा दरी वा॥

अर्थात् देव, मित्र, राजा, साधु, निवास और स्त्री एक एक ही रहना भला है।

म—योग्य बन्धु ! अब मेरी समझ मे आ गया कि एक सच्चा मित्र अनेक मित्रो से कही बढ़कर है, पर मित्र बनाने के पहिले उसके गुण, जाति, कार्य और सगति की अच्छी तरह जॉच कर लेनी चाहिए, नही तो, "मित्र-लाभ" के मृग-सियार की सी आपत्ति भोगनी पड़ती है। यह सत्य है कि किसीका स्वभाव नही बदलता। इस बात की पुष्टि मे गुसाईं तुलसीदासजी का स्पष्ट कहना है :—

"विधि-वश सुजन कुसंगति परही।
फणि-मणि-सम निज गुण अनुसरहीं" ॥
"खलउ करे भल पाय सुसगू।
मिटहिँ न मलिन स्वभाव अभगू" ॥

इससे मित्र बड़े विचार के साथ किया जावे।

स—भाई ! यो मै कहॉ तक शोध लगाऊँगा ! कोई इससे भी सीधा रास्ता हो, तो बतला।

म—अच्छा, सुनिए। सबसे सीधा रास्ता यही है कि जिसे मित्र बनाना है उसकी सूरत-शकल, नैन-सैन, बोल-चाल आदि पर पूरा ध्यान दिया जावे। किसी कवि ने कहा है :—

आकृति, चेष्टा, भाव अरु वचन रूप अनुमान।
नैन-सैन, मुख-काति लखि मन की रुचि पहिचान ॥

स—तू तो बड़ा चतुर दिखता है। भला, बता तो सही, तूने इस कसौटी पर कसकर मेरे लिए कोई मित्र खोजा है ?

म—भाई ! यदि आप बुरा न माने, तो मैं एक अच्छा मित्र आपको बतलाऊँ।

स—इसमे कोई बुराई नही। तू बेधड़क बतला।

म—भाई साहिब ! मित्रता के योग्य तो मैं ही हूँ ।

स—(विस्मित तथा कुछ क्रोधित हो) क्यों रे 'म', तू ही मुझसे दोस्ती करने का दावा करने लगा । ज़रा होश में आ । तू अपनी और मेरी हैसियत को देख । क्या तू नहीं जानता कि मैं सबसे बड़े सच्चिदानन्द', 'साधु', 'संत', 'सती', 'सम्राट्' आदि का सिरा हूँ, और तू 'मूर्ख', 'म्लेच्छ', 'मद्यपी', 'मृतक' आदि का मुखिया है ? यदि मैं 'सहाय', 'सखा', 'खास', 'स्मरण' आदि शब्दों से कुछ देर को जुदा हो जाऊँ, तो वे बेचारे 'हाय' 'खा' 'खा' 'मरण' के तुल्य हो जायँ । ऐसे ही यदि किसी वाक्य का साथ छोड दूँ तो वह भी दो कौड़ी का हो जा सकता है ; यथा, "सनातनधर्म सबसे सच्चा है" से "नातनधर्म बच्चा है" रह जावेगा । मुझसे बडी भूल हुई जो तुझ नादान से बातचीत की। कहते है—"नादान की दोस्ती जी का जंजाल" ।

म—यदि मुझे यह मालूम होता कि हित की बात बताने पर भी, आपका माथा ठनकने लगता है, तो बात की कौन कहे, आपकी ओर देखता तक नहीं । जो दूसरो को बिलकुल छोटा समझ अपने आपको बड़ा मानते है वे बड़े नहीं किन्तु छोटे ही है । मैं आपकी नाईं अपने मुँह से अपनी ही बड़ाई कभी न करता, पर प्रश्न के समान उत्तर देना ही पडता है। ऐसा सोच, मैं जैसा हूँ आपको सुनाता हूँ—मै 'माधव', 'मार्तण्ड', 'महाराज', 'मुकुट' आदि शब्दों का शिरोमणि हूँ । आप सचमुच 'संहार', 'सूतक', 'संकट', 'सुरा' आदि के प्रधान है । यदि मै 'मुकुन्द', 'कामना', 'मछली', 'मसाला' आदि मे से निकल भागूँ, तो वे 'कुन्द', 'काना', 'छली', 'साला' की दुर्गति मे पड जायँ । और, यदि वाक्यो मे से हट जाऊँ तो वे भी मिट्टी में मिल सकते है,

· यथा, " मागधी भापा नीमच तक मे नही बोलते " का "गधी भापा नीच तक नही बोलते" और "दामाद के कोई मकान नही है" का "दाद के कोई कान नही है" हो जावेगा।

स—अरे 'म' ! छोटे मुँह बड़ी बात न कर। तू मेरी बराबरी का नही।

म—मै सचमुच तबतक बराबरी का नही, जबतक आपकी यह बन्दर की सी दुम (स) बनी हुई है।

स—क्यो रे गँवार ! तू बक बक करता ही जाता है। जा, अभी कुछ दिन और सीख, तब मुझसे बात करने का साहस करना। तुझे मालूम नहीं कि तू सानुनासिक वर्ण है। जब लोग बेचारे तेरा नाम लेते है मानो उस समय पीनस का रोग बुला लेते है।

म—आपका कहना सही है कि मै सचमुच नाक-वासी हूँ। पर ! सुन, यदि मेरी कुटी (नाक) न रहे, तो फिर सारी दुनियाँ नकटी ही दिखाय।

स—यह तो तू सच कहता है कि ससार मे बेनाक (बेइज्जत) रहने से न रहना ही भला है।

म०—मुझमे एक विशेपता और है कि मै और मेरा मित्र 'र' दोनो, मुकुट और छत्र नाईं, सब वर्णो के ऊपर, अनुस्वार और रेफ के रूप मे बैठने की योग्यता रखते है, और दूसरे नही; जैसा, गुसाईं तुलसीदासजी ने कहा है:—

"एक छत्र इक मुकुट मणि सब वर्णन पर जोय।
'तुलसी' रघुवर नाम के वर्ण विराजत दोय॥"

स०—भाई 'म', अब मेरे ध्यान मे आ गया कि यथार्थ मे तुम मुझसे कही बढ़कर हो। मैने मूर्खता-वश तुम्हे तुच्छ और

अपने को उच्च समझा। इसकी क्षमा माँगता हूँ, और यह इच्छा रखता हूँ कि तुम मुझे अपना साथी बनाये रहो।

म०—भाई साहिब, मैंने भी कई अनुचित बातें कहीं इसकी क्षमा चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि मुझे आप अपना सदा का ही साथी समझेंगे। देखिए, सर्व नामों में शिरोमणि जो 'सीता-राम' नाम है उसमें भी आप अग्रगामी और मैं अनुगामी ही हूँ। और तो क्या, सर्वोत्कृष्ट 'सोहं मंत्र' तक में आप आगे और मैं पीछे ही हूँ। इस तरह दोनों साथी ही हैं। अतएव उचित है कि आप और हम पहिले मिथ्याभिमान को तो ताक पर रख दें, क्योंकि यह रावण, दुर्योधन-सरीखे प्रतापी नरेशों तक को नीचा दिखानेवाला है। फिर दोनों ('स और म') यों मिल जायँ कि मिलकर 'सम' ही बन जायँ। संसार में यही एक वृत्ति है जो सबको अपना मित्र बना कठिन से कठिन कार्य सहज कर देती है, जैसा कि 'ठाकुर' कवि ने कहा है :—

शामिल में पीर में शरीर में न भेद राखे,
हिम्मत-कपाट को उघारें तो उघरि जाय।
ऐसी ठान ठाने तो बिना हू यंत्र-मंत्र किये,
साँप के जहर को उतारे तो उतरि जाय॥
'ठाकुर' कहत यह कठिन न जानो तुम,
हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय।
चार जने चारहू दिशा ते चार कोने गहि,
मेरु को हिलायके उखारें तो उखरि जाय॥

चन्दन इसी सम दशा का अनुयायी होने से देवताओं तक के माथे पर चढ़ता है। इसी गुण से दूब गणेशजी को परम प्रिय है। इसी गुण के कारण गोमाता पर लोगों का हार्दिक प्रेम है। शिशुगण इसी वृत्ति से सबकी गोद के खिलौने बने रहते

है। समुद्र इसी गुण से जलेश कहलाता है। साधु पुरुषों की ओर इसी गुण के कारण लोगों की श्रद्धा रहती है। कहाँ तक कहें! दशरथनन्द श्रीरामचन्द्र महाराज भी इसी सम-भाव ही के कारण त्रिलोकीनाथ बने हुए हैं।

स०—मेरे अहोभाग्य हैं कि तुम-ऐसे सुयोग्य साथी मुझे मिले। अब तुम मेरी ओर से वह विश्वास रक्खो कि मैं सदा 'सम' ही रहूँगा, और जिन जिनसे भेंट होगी उन्हें भी 'सम' बनने का उपदेश देता रहूँगा, तथा महात्मा तुलसीदासजी के:—

"बन्दौं सन्त समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अंजलि-गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय॥"

इस शुभ मत्र की ओर उनका ध्यान आकर्षित करता रहूँगा।



बना हुआ गवाह

पात्र—

१—मि० उल्लूफ़चन्द—वकील

२—एक और वकील

३—मि० मलूकदास—मुंशी

४—घोटादीन—गवाह

५—ख़ैरातअली नाम का नौकर, जज, चपरासी, क्लर्क

दृश्य पहिला।

(सड़क पर मुंशी मलूकदास हाथ मे बेंत लिये घूमते दिखाई देते है)

मलूकदास—मै चलते चलते यहाँ तक आ गया। अभी तक कोई ऐसा आदमी मिला ही नही जिससे अपना काम हो जाता। बातो मे फुसलाने के ढंग तो मुझे .खूब याद है, लेकिन कोई ऐसा आदमी मिले तो, जो बातो मे आ जाय। सुबह से फिरते-फिरते तबियत घबड़ा उठी। कोई चंडूल फँसता ही नही। भाई, अब वकील साहिब की मुंशीगिरी से तो तबियत ऊब उठी। (ठहरकर) लेकिन नौकरी छोड़ी भी तो नही जाती। वे लाख उल्टी-सीधी सुनाते है। देने-लेने के वक्त भी मुँह बनाते है। लेकिन वह—(छाती पर हाथ रखता हुआ) हाय! वही तो सब कुछ भुलाये है, एक मुंशी को वकील से मिलाये हुए है। उसीके पीछे वकील साहिब की झिड़कियाँ

सुन लेते हैं—गालियाँ भी खा लेते है। आज इतने फिरे, कई उल्लू के पट्ठों की .खुशामद की, लेकिन कोई सीधा ही नहीं हुआ। अब उनके लिए कहाँ से बना लाऊँ गवाह ? चलते है, कह देंगे कोई गवाह नही बनता, और गाली खा लेंगे।

(चलने लगता है। किसीके आने की आवाज़ सुनकर) मालूम होता है, कोई आ रहा है। देखें, शायद इससे मतलब सट जाय।

(डंडा लिये हुए घोटादीन पाण्डे का प्रवेश जो कि मुंशी को देखकर पाकिट से माला निकालकर 'शिव शिव' करता हुआ आगे बढता है)

मुंशी—पंडितजी, प्रणाम करता हूँ।

घोटा०—ठीक है। शिव शिव !

मुं०—(मुसकराता हुआ) क्या ठीक है महाशय ?

घो०—तुम्हारे पूँछने का आशय। शिव शिव !

मुं०—क्या मेरे प्रश्न का उत्तर यही है ?

घो०—क्या तुममे इतनी भी बुद्धि नही है ? शिव शिव !

मुं०—.खैर, इन बातो को जाने दीजिए।

घो०—(रुपया बजाने का इशारा करता हुआ) अच्छा, मतलब की बातें आने दीजिए। शिव शिव !

(माला को पाकिट मे रख लेता है)

मुं०—आपका नाम क्या है विप्रवर ?

घो०—समझाकर बताऊँ या कहकर ?

मुं०—दोनो तरह से।

घो०—(इशारे से पहिले डडा दिखाता है, फिर मार देता है)

मुं०—यह क्या है रे नालायक़ ?

घो०—हुँ.। मेहनत गई नाहक। नहीं समझे ! अच्छा (फिर डडा दिखाता है)

मुं०—(गुस्से से) अब नहीं समझना। ज्यादा बदमाशी की, तो (बेंत उठाकर) अब मैं भी हाथ छोड़ता हूँ।

घों०—नहीं समझता, तो तुझे समझाने का शौक थोड़े ही है। कहकर ही बताता हूँ। मेरा नाम है 'घोटादीन'।

मुं०—लेकिन तूने मारा क्यों ?

घों०—शिव शिव! भला मुझमें इतनी दम कहाँ जो एक उजले आदमी को मारूँ। मैं आपको सिर्फ समझा रहा था। देखिए (डंडा फिर दिखाता है) यह है घोटा और (उठाता हुआ) यह—

मुं०—(ज़ोर से) बस।

घों०—बस तो समझ गये। मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। अब यदि इसमें आप कहें कि मारा, तो मैं क्षमा माँगता हूँ।

मुं०—अच्छा, यह बतलाओ तुम कौन हो ?

घों०—केवल एक नर-पंजर-धारी जीव।

मुं०—यह तो हम जानते हैं। तुम कहाँ रहते हो ? क्या करते हो ? कौन जाति हो ? सब बताओ।

घों०—दुर्भाग्य-वश मैं एक बार एक ही प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ।

मुं०—अच्छा इस बात से हमको कुछ नहीं करना। बोलो, तुम गवाह बनना चाहते हो।

घों०—ईश्वर ने तो मुझे मनुष्य बनाया है, ऐसा मैं समझता हूँ। अब तुम गवाह बनाओगे ?

मुं०—क्यों क्या हुआ ? मनुष्य ही तो गवाह बनते हैं।

घों०—(आश्चर्य से) हैं! हमारे गुरु महाराज तो कहा करते थे कि ८४ लाख योनियों में मनुष्य-योनि सर्वश्रेष्ठ है। उन्होंने तो गवाह-योनि के विषय में तो कभी कुछ नहीं कहा। क्या तुम मुझे एक गवाह दिखाने की कृपा करोगे ?

मुं०—गवाह हमारे-तुम्हारे-सरीखे हुआ करते है। उनको कुछ सींग थोड़े ही निकल आते है।

घों०—अच्छा, गवाह बनने के लिए क्या करना पड़ता है ?

मुं०—गवाही देनी पड़ती है। और क्या ?

घों०—लेकिन यहाँ तो आज भंग के लिए भी पैसे नहीं है। गवाही मेरे पास कहाँ से आई जो दूँ।

मुं०—हर एक मनुष्य गवाह बन सकता है। गवाही सब दे सकते है।

घों०—तो क्या वह सबके पास रहती है।

मुं०—(चिढ़कर) हाँ, रहती है।

घों०—(हाथ बढाता हुआ) ज़रा आपकी दिखाइए तो सही।

मुं०—(मुँह बनाकर) हम फजूल बाते नहीं करना चाहते। तुम यह बताओ कि तुम्हे गवाह बनना है या नहीं ?

घों०—देखिए, अगर गवाह कोई अच्छी चीज़ हो, तब तो बनने मे कोई हानि नहीं समझते, लेकिन यह तो बताइए कि आप मनुष्य है या गवाह ?

मुं०—हम कुछ भी हो। लेकिन गवाह बनना अच्छी चीज़ है। इसके सिवाय, अगर तुम बनोगे तो हम तुम्हे कुछ प्राप्ति भी करा देगे।

घो—क्या तुम भंग दिला दोगे ?

मुं०—हाँ हाँ, जितनी कहोगे उतनी दिला देगे।

घों०—(कपड़े उतारता हुआ) अच्छा तो लो, बनाओ, गवाह बनाओ।

मुं०—(मुसकराता हुआ) अरे तो कपड़े क्यो निकालते हो ?

घों०—गवाह बनाते हो न ?

मुं०—हमारे साथ वकील साहिब के पास चलो। वे तुमको गवाह

बनाएँगे। वही तुमको कुछ (रुपया बजाने का इशारा करता है)

घो०—(प्रसन्नता से) अच्छा चलो।

[दोनो जाते है]

दृश्य दूसरा।

(वकील उल्लूकचंद अपने आफ़िस मे बैठे हुए है)

उल्लूक—(बड़ी उदासी से) कुछ समझ नही पड़ता, क्या किया जाय? बाप-दादो की सब जायदाद पढ़ने मे तबाह कर डाली। बड़ी मुश्किल से तीन तीन चार चार साल मे इम्तिहानो के बड़े मंजिल को तय किया। आखिर गिरते-पड़ते यहाँ पहुँचे। समझे थे कि आनन्द की कुंजी हाथ आ गई। लेकिन क़िस्मत मे हो तब तो! महीने का आज २२ वाँ रोज़ है। मिलना-जुलना कही से कुछ भी नही। ऐसा सायलो का अकाल अगर पहिले से पड़ता रहता, तो काहे को कोई वकील बनता? इसका सबब कुछ समझ मे नही आता। (सोचकर) मुझे प्रैक्टिस (Practice) करते कोई ४—५ साल हुए है। इतने वक्त मे कोई तीन बार प्लेग हो चुका। (ठहरकर) ठीक है; ज़रूर यही सबब है। डाक्टर लोगो का कहना है कि प्लेग का अटैक (attack) पहिले चूहो पर होता है, फिर आदमियो पर। लेकिन मेरे ख़्याल से अटैक पहिले चूहो पर होता है और फिर क्लाएंट्स (clients) पर। इसका इन्तिज़ाम गवर्नमेंट को ज़रूर करना चाहिए। अगर इस तरह सब मुकद्दमे-वाले मर गये, तो उसका कितना फ़ायनैनशियल लास (Financial loss) होगा? कोर्ट-फ़ी (Court-Fee) का हर

साल लाखों रुपया कहाँ से आयेगा ? (ठहरकर) जाने भी दो। किसीके लॉस से अपने को क्या ?

[एक नौकर का प्रवेश]

क्यों ख़ैरातअली, क्या है ?

(नौकर सलाम करके एक लिफ़ाफ़ा देता है)

उलूक—(पढ़कर) अच्छा जाओ। मैनेजर साहब से सलाम बोलना और कह देना कि वकील साहिब मिले नहीं। तुमको इनाम मिलेगा।

नौकर—हुज़ूर ने कई बार इनाम देने के लिए कहा, लेकिन अभी तक ग़ुलाम को कुछ मिला नहीं। इस वक्त कुछ इनायत हो जाती। ईद का मौक़ा है।

उलूक—मिलेगा। हमने कह दिया तो मिलेगा। ईद का क्या ? हर साल ईद होती है। इस ईद को नहीं, उस ईद को सही।

ख़ैरात—अच्छा है। (सलाम करके जाता है)

उलूक—इन यम-दूतों से पीछा नहीं छूटता। महीना खतम हुआ कि बिलों की दौड़ लगी। लेकिन इसमे इनका क्या कुसूर है। (ठहरकर) सोचा था कि एक पढ़ी-लिखी, एजूकैटेड वाइफ़ (educated wife) से हमे आराम होगा, सो हो रहा है। रोज़ नई नई फ़रमाइशें होती है। नये नये शौक़ होते है और यहाँ बिल पर बिल चले आते हैं। इतना समझाते है, गिड़-गिड़ाते है, लेकिन उसका कुछ भी असर नहीं, और ऊपर से नाराज़ी। आमदनी का यह हाल है। मुश्किल से एक मुकद्दमा आया। उसमे भी झूठे गवाह पेश करने का काम हमारे सुपुर्द। तिसपर भी जीत जॉय, तो कुछ मिले। ईश्वर ! तूने हमे क्यो पैदा किया था ? क्या समझकर वकील बनाया ?

और अब क्या समझकर क्लाएन्ट्स (clients) नहीं भेजता प्रभो !

[मुंशी मलूकदास और घोंटादीन का प्रवेश। वकील साहब अकड़कर कुछ कागज़ देखने लगते है]

घोंटा—(प्रवेश करते समय मुंशी से) क्या यही है ?

मुं०—हाँ, लयाकत से पेश आओ।

घों०—(बढकर, हाथ जोडता हुआ) हे गवाह-सृष्टि के निर्माण-कर्ता ! हे भंगधारी देव ! हे घर-फूक-तमाशे के बाजीगर ! हे धनियो के हथियार ! हे दरिद्रो के सर्वस्व-हर्ता ! हे वकीलदेव ! मै आपको सहस्र बार नमस्कार करता हूँ।

मुंशी०—(वकील से) आप उस मुकद्दमे मे गवाही देंगे। हाल मे आपको कुछ भंग दिला देना होगा।

उलूक—(सिर से पैर तक देखता हुआ) अच्छा। लेकिन अभी तक ये क्या कह रहे थे ?

मुं०—इससे क्या ? इनको समझा दीजिए कि अदालत मे इन्हें क्या कहना होगा।

उलूक—(कागज की शीट लौटाते हुए) मै समझता हूँ कि इनका इतना कहना काफी होगा कि गद्दू वल्द सद्दू उर्फ असगरअली से हमारे सामने नज़रअली ने कई बार तकाज़ा किया।

मुं०—देखोजी, समझ गये ?

घोंटा०—हाँ, जो कुछ कहा वह तो समझ गया, क्योकि भाषा बहुत अच्छी है। लेकिन भंग का तो कहिए।

उलूक—तुम एक बार मे कितनी भंग पीते हो ?

घोंटा०—पीता तो नहीं, लेकिन हाँ, कोई पाव, डेढ़ पाव का गोला आसानी से गले के नीचे उतार जाता हूँ। मालूम होता है, आप बहुत पुराने वकील है।

उलूक—यह कैसे जाना ?

घोटा०—आपके कपड़े और सामान को देखकर और भंग की बात सुनकर। शायद पहिले भी आपको कई भंग-भक्तो से काम पड़ चुका है। आपकी कुर्सी आर टेबिल भी बड़ी पुरानी है। उनने ज़माना देखा है।

उलूक—मुशी मलूकदास! जाओ। हमारे पास फजूल खर्च करने को वक्त नही है। जाकर भंग दिला दो और कह दो कि कल गवाही हो चुकने पर (कुछ इशारे से समझाता है)

(मुंशी और घोटादीन जाते हैं)

ऐसे ऐसे बदमाशो से काम पड़ा है। उससे मतलब है, गवाही दिलाना है। नही तो कान पकड़वाकर बाहर निकलवाता। (भीतर घंटी की आवाज़) वक्त हुआ—रोटी खाने का वक्त हुआ। चलें, देखें, अब वहाँ कैसी क्या गुज़रती है।

दृश्य तीसरा।

(स्थान:—न्यायालय)

(विचारासन पर एक देशी जज बैठे हुए है। पास ही क्लर्क और यथा-नियम दोनो ओर के वकील खड़े हैं)

जज—मिस्टर उलूकचन्द! अब आपको यह सबूत करना चाहिए कि मकान डेफेंडेट (Defendant) का नहीं है।

उ०—हुजूर! इसके लिए गवाह मौजूद है।

ज०—अच्छा, वह बुलाया जाय।

(घोटादीन को एक चपरासो लाकर गवाह के कटहरे मे बंद कर देता है)

घों०—क्यों जी, न्यायालय मे क्यो नही ले चलते ?

चपरासी—और अभी कहाँ हो ?

घों०—(अपने चारो ओर देखकर) कटहरे मे ।

च०—(गुस्से मे) न्यायालय मे हो ।

घों०—तो क्या तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि मै कटहरे मे नही हूँ ।

चप०—(गुस्से से) कटहरे मे भी हो और न्यायालय मे भी । होश मे आकर बात करो ।

घों०—(हँसता हुआ) मुझे अच्छी तरह याद है कि जब मैं पढ़ता था उस वक्त गुरुजी ने बतलाया था कि एक पदार्थ एक ही समय मे दो स्थानों मे नही रह सकता । अब तुम्हारे कहने को सत्य मानूँ या उनके कहने को ?

क्लर्क—देखो जी, यह दिल्लगी की जगह नही है ।

घों०—अगर नही है तो मुझे कटहरे मे क्यो बन्द किया है ? मेरा अपराध ?

उ०—टाइम वेस्ट (Time waste) मत करो । हलफ़ पढ़ो ।

घों०—खूब रही । यहाँ पढ़ाई भी होती है, याने मै मदरसे में हूँ ।

उ०—(गुस्से से) ज़्यादा बदमाशी मत करो । न्यायाधीश के साम्हने खड़े हो ।

घों०—(हँसकर) वाह ! अब तो थोड़ी देर में सर्वव्यापी बना जाता हूँ । (उँगलियाँ गिनता हुआ) मैं न्यायालय मे हूँ, मै कटहरे मे हूँ, मैं मदरसे में हूँ, मैं न्यायाधीश के साम्हने खड़ा हूँ—हाँ वकील साहब, और ?

जज—(मुस्कराता हुआ) Mr Uluk Chand, you have brought a very amusing witness. (अर्थात् मि० उलूकचंद, आप बड़ा मज़ेदार गवाह लाये हैं)

उलूक—(चिढ़ता हुआ) देखो वक्त जाता है। बदमाशी रहने दो, जो कुछ कहते हैं करो।

घो०—अच्छा कराइए। क्या कराते है ?

उ०—हलफ पढ़ो।

घों०—पढ़ाओ बाबा—हलफ़ पढ़ाओ।

जज—(मि० उलूकचंद से) पहले नाम वग़ैरह।

उ०—तुम्हारा नाम ?

घों०—मेरा नाम—सो क्या हुआ ?

उ०—कुछ नहीं हुआ। नाम बतलाओ।

घों०—वकील साहिब, इस वकालत-शिखर पर भला इतनी अंधी स्मरण-शक्ति के सहारे आप कैसे पहुँचे ? कल ही मेरा नाम सुना और आज भूल गये।

उ०—(गर्म होकर) The court may mark the behaviour of this man (अर्थात् अदालत इस आदमी के इस बर्ताव को देखै)

जज—(मुस्कराता हुआ) देखो जी, जो कुछ तुमसे पूछा जाय उसीका जवाब दो।

घों०—बहुत खूब धर्मावतार।

उ०—तुम्हारा नाम क्या है ?

घों०—मेरा नाम श्री घोटादीन पाण्डे।

उ०—और आपके बाप का नाम ?

घों०—मेरे बाप का नाम लेते हैं। कहिए, क्या कहीं मेरी शादी की बातचीत ..

उ०—बाप का नाम बताओ जी।

घों०—अच्छा, मेरे बाप का नाम सोटादीन पाण्डे।

उ०—तुम कौन जाति हो ?

घों०—हिन्दू ।

उ०—(गर्म होकर) मै पूछता हूँ, तुम कौन वर्ण हो ?

घों०—काला ।

उ०—(झुंझलाकर) अ ! समय नष्ट मत करो। तुम्हारे जाति है या नही ?

घों०—है नहीं, तो ले कौन गया ?

(उलूक चिढकर बैठ जाता है)

जज—हिन्दुओ मे ब्राह्मण, क्षत्री, तेली, धोबी, नाई आदि कई जातियाँ हुआ करती है। इनमे से बताओ कौन जाति हो ?

घों०—धर्मावतार । मै ब्राह्मण हूँ। 'पाँडे' सुनकर ही वकील साहब यह जान सकते थे। ख़ुद तो अनावश्यक प्रश्न करते है और मुझपर समय नष्ट करने का दोष लगाते है।

(उलूक रूमाल से चेहरा पोछ-पाछकर फिर खड़े होते है)

उ०—अच्छा, तुम्हारी अवस्था क्या होगी ?

घों०—मैंने किसी ज्योतिषी से पूँछा नहीं। कौन जाने, कल ही यह शरीर न रहे।

उ०—मेहरबानी करके यह बताओ कि इस संसार मे रहते हुए आपको कितने दिन हुए ?

घों०—दिन ही क्यो। मै समझता हूँ कि बरसें हो गई होंगी।

उ०—लेकिन कितनी ?

घों०—यह तो ठीक नही मालूम।

जज—हम लिखे लेते है अन्दाज़न ५० साल।

उ०—तुम कहाँ रहते हो ?

घों०—क्यो, इसी ससार मे।

उ०—हम यह नहीं पूँछते जी। तुम्हारा घर कहाँ है ?

घों०—कही नहीं।

उ०—तो फिर रहते कहाँ हो ?

घो०—अक्सर घरो मे ।

उ०—(चिढ़कर) किनके घरो मे ?

घो०—मनुष्यो के ।

उ०—(गुस्से से) कौनसे मनुष्यो के ?

घो०—आपके और मेरे-सरीखे मनुष्यो के ।

उ०—तुम्हारा किसी एक ख़ास मनुष्य के घर मे रहना होता है या नही ?

घों०—नहीं ।

उ०—तो फिर हमेशा इधर-उधर ही घूमा करते हो क्या ?

घो०—नहीं, अभी देखो । एक जगह खड़ा हूँ ।

(वकील झेंपकर बैठ जाता है । प्रतिवादी का वकील बोलता है)

व०—हुज़ूर ! यह विटनैस (Witness) बहुत अब्सट्रक्टिव (Obstructive) मालूम होता है ।

घो०—क्यो भइया, वकील हो क्या ?

व०—हाँ, मै प्रतिवादी का वकील हूँ । (मुसकराता हुआ) क्यो, तुमने कैसे जाना ?

घो०—(हँसकर) पाण्डेजी इतनी स्थूल बुद्धि नही रखते कि इतनी मोटी बात भी न समझ सकें । आपका पुराना और मैला सूट और सेकंडहैंड (Secondhand) शमला तो इस बात को चिल्ला चिल्लाकर कह रहा है कि आपने भी दुर्भाग्य-वश वकालत की फाँसी गले मे डाल ली है ।

व०—(बिगड़कर) I ask the protection of the court against these insults (अर्थात्, अदालत इन अपमानो से मेरी रक्षा करै) ।

जज—(मुसकराता हुआ) देखो जी, तुम अदालत मे हो। जो कुछ पूछा जाय, उसको सीधी और सरल भाषा मे कहो।

घो०—(सलाम करता हुआ) बहुत अच्छा न्यायमूर्ति!

व०—इसके अलावा, हम लोगो के पास फ़जूल वक्त नहीं है, इस बात का भी ख़्याल रक्खो। तुम्हारे इज़हार के बाद मुझे अभी तुमको क्रास (Cross) करना है।

घो०—क्यो भैया! मैं कोई नदी हूँ या समुद्र जो तुम क्रास करोगे? तुम्हारे आईन के चश्मे मे अगर मै ऐसा ही कुछ दिखता होऊँ तो अच्छा है, पुल बाँधो—नाव मे बैठो—या अगर हो सके तो खड़े ही खड़े उछलो, कूदो, फाँदो—वकील तो ठहरे।

(वकील चुपचाप बैठ जाता है)

उ०—तो तुम्हारे रहने का कोई ठिकाना नही है?

घो०—नही क्यो? इतनी बडी दुनियाँ पड़ी है।

जज०—अच्छा हम लिखते है कि रहने की कोई खास जगह नहीं।

उ०—अच्छा, तुम्हारा पेशा?

घो०—(कुछ बिगड़कर) पेशा? मै वेश्या हूँ या वकील?

उ०—क्या काम करते हो?

घो०—कटहरे मे खड़ा हुआ तुमसे बात-चीत, या यो कहो कि तुम्हारे साथ अपना मस्तिष्क खाली।

उ०—मै पूँछता हूँ कि तुम खाते-पीते कैसे हो?

घो०—भात मे दाल डालकर और दाहिने हाथ से उठाकर।

उ०—कुछ पैदा भी करते हो?

घो०—दो लड़के मर गये। एक लड़की और—

उ०—अः! खाने-पीने को कहाँ से लाते हो?

घो०—आदमियो के पास से।

उ०—क्या चोरी करके ?

घों०—नही, लेकिन हाँ, अगर आप सिद्धहस्त हो और कृपाकर मुझे सिखाने का कष्ट उठा सकें तो

उ०—अरे भाई ! मेरा मतलब यह है कि आपका उदर-पोषण कैसे होता है ?

घों०—वैसे ही जैसे आपका ।

उ०—क्या तुम भी वकील हो ?

घों०—शिव शिव ! ईश्वर न करे कि कभी मेरे दुश्मन को भी तुम्हारे-ऐसे निकृष्ट पेशे की दूकान खोलना पड़े । मै समझता हूँ कि जिस तरह कोई भले घर की स्त्री वेश्या के पेशे को नीची नजर से—

उ०—(गर्म होकर) क्या बकते हो ? (जज से) I pray you to punish this witness for contempt of court. (अर्थात्, मैं प्रार्थना करता हूँ कि अदालत का अपमान करने के अपराध पर इस गवाह को दड मिले)

जज—(मुसकराता हुआ) क्यो पाण्डेजी, वकील साहिब को क्यो तग कर रहे हो ? तुम्हारे कहने के माफ़िक जो कुछ तुम मनुष्यो से खाने के लिए लाते हो वह तुम्हे कोई क्यो देता है ?

घों०—हमारी आवश्यकता के कारण ।

जज०—लेकिन उसके बदले मे तुम क्या देते हो ?

घों०—आशीर्वाद ।

उ०—ऐसा पहले ही क्यो नही कहा ?

घों०—क्या आपने पहले पूछा था जो मैं कहता । लेकिन यह तो बताइए कि आपने कल क्यो नही कहा कि इतने बहुत से प्रश्न वहाँ पूछे जायँगे । थोड़ी सी तो लेन-देन और प्रश्न इतने । अब मालूम हुआ कि गवाह बनना

उ०—(घबराकर) हुजूर ! मै इस गवाह का इजहार नहीं चाहता ।

जज—Well, he is your own witness, you may send him away if you like (अर्थात्, खैर, वह तुम्हारा ही गवाह है । तुम चाहो तो उसे भेज दो) ।

उ०—(सलाम करता हुआ) पांडेजी, आप जाइए ।

घें०—लेकिन आपने वह तो पूछा नहीं जो कि

उ०—नहीं, नहीं, अब नहीं पूछना, आप जाइए ।

घें०—अच्छा मत पूछो, लेकिन देने को

उ०—(घबड़ाता हुआ) जो कुछ कहना हो बाहर चलकर कहना ।

घें०—क्यों ? बेमतलब की बातें तो यहाँ इतनी होती रहीं और मतलब की

उ०—(चलता हुआ) बाहर आओ ।

(दोनों बाहर जाते हैं)

उल्लूक—(कुछ रुपये जेब से निकालकर देता हुआ) लो ।

घें०—कम क्यों ?

उ०—(धीरे से) तुम्हारी गवाही कहाँ हुई ?

घें०—(आश्चर्य से) और यह क्या हुआ ? अगर नहीं हुई तो भीतर चलिए—और चलिए ।

उ०—(तंग आकर और रुपये देता है) ।

घें०—(सिर हिलाता हुआ, ख़ुशी से) ठीक है, अब पूरे हुए । वकील साहब, आशीर्वाद ! इस ब्राह्मण को कभी कभी इसी तरह अपनी कृपा में—

उ०—(हाथ जोड़ता हुआ) अब कृपा कर जाइए ।

घें०—आशीर्वाद वकील साहब ! आशीर्वाद ।

(जाता है । वकील भीतर आता है)

उ०—हुजूर ! इसके लिए मैं दूसरा गवाह पेश करूँगा ?

(मिसल बन्द करता हुआ)

ज०—अगली पेशी पर। आज फ़ुज़ूल बहुत सा वक्त लग गया। (क्लर्क से) अच्छा, इस केस की अब दो महीने के बाद पेशी रक्खो।

[पटाक्षेप]



सलाम किससे की ?

पात्र–

(१) रामनाथ—पटवारी का लड़का

(२) केदार—कोतवाल का लड़का

(३) राजाराम—मास्टर का लडका

(४) धनीराम—किसान का लड़का

(५) एक बुड्ढा किसान



दृश्य पहला ।

(पटवारी का लड़का रामनाथ अपने घर मे बैठा है और कोतवाल का लड़का केदार उसके पास आता है)

केदार (रामनाथ से)—क्यों रामनाथ, आज कल घर मे सिवा मनहूस के माफिक बैठे रहने के और भी कोई काम है या नही ?

रामनाथ—क्या करूं यार ? चाहता तो बहुत हूं कि घूमूं; पर मिले तब ना ।

के०—उसमे भी क्या मिलने की ज़रूरत है ?

राम०—सो तो ठीक है । पर देखो ना, यह समय कटनी का है और दद्दा की कटनी (रुपयो का इशारा हाथ से करता है) का समय भी यही है । इसीसे वे देहात गये है । मुझे शाम-सबेरे गाय-भैस की फिकर सौंप गये है ।

के०—अबे तू तो है मूर्ख ! जब दद्दा 'कटनी' कर रहे है, तो फिकर काहे की ? खूब यहाँ-वहाँ घूमना और गुलछर्रे उडाना। रही गाय-भैस, सो अहीर आप ही बाँधेगा-छोड़ेगा। तुझे काहे की फिकर है ? हाँ, अगर तू दद्दा का आज्ञाकारी पुत्र बनना चाहता है, तो बात दूसरी है।

राम०—गुलछर्रे तो भैया, कोतवालो के लड़को को ही सूझ सकते है जिनके यहाँ घर बैठे ही खनाखन झड़ा करते है। यहाँ तो अगर दद्दा एक दिन किसान के घर चक्कर न काटे, तो कल ही यह सब ठाठबाट धूल मे मिल जाय।

(मास्टर के लड़के राजाराम और धनीराम किसान का प्रवेश)

दोनो—ठीक है। बराबर।

राजा०—(रामनाथ से) तो यह सब इकड़ दद्दाई की कमाई पर है ? कुछ खुद की भी करामात तो कहो।

के०—(धनीराम से) लो भैया, तुम चूहो की बिल्ली तो ये देखो, कैसी बढ़ बढ़के बातें कर रहो है !

धनी०—आप ही देखो। यह तो मालूम ही है कि पाप से संचय किया धन बहुत दिन नही जाता।

राम०—अरे भाई, मेरे पीछे तुम लोग क्यों पड़े हो ? दद्दा जाने और उनका काम जाने। मुझे क्यो इस प्रकार मुफ्त में ले-दे रहे हो ?

धनी०—न घबड़ाओ दोस्त। चौथी अंग्रेज़ी तो पास हो ही गया हूँ। (ऐंठ से) और यदि पटवारी बनना चाहूँ तो कल ही बन सकता हूँ। पर थोड़ा और ठहरो। एन्ट्रेंस के बाद रैवेन्यू इन्स्पेक्टर बनूँगा, तब देखना, दद्दा की कैसी खबर लेता हूँ। फिर आप ही दौड़े आवेंगे और पैर पड़ेगे। फिर न यह

कहने की दम रहेगी कि दद्दा जानें और उनका काम जाने। सौ बार .खुशामद करेंगे और जूते साफ करेंगे।

(राजाराम और केदार ज़ोर से हँसते है और धनीराम की पीठ ठोकते है)

दोनो—शाबाश ! बराबर। रैवेन्यू इन्स्पेक्टर ही बनना।

राम—तुम तो अभी कल के बच्चे हो। दद्दा तुम्हे समझेंगे ही क्या ? उन्होंने बड़े बड़े रैवेन्यू इन्स्पेक्टरो के तो छक्के छुड़ा दिये है।

धनी०—होगे कोई बेवकूफ रैवेन्यू इन्सपेक्टर, जिनके छक्के छुड़ाये होंगे।

के०—अरे तो इस बहस से फायदा ? चलो, शाम का वक्त है। घूम आवे।

राम०—हाँ भैया। जब तुमसे अकलमंद रैवेन्यू इन्स्पेक्टर यहाँ आने लगेंगे, तो फिर मै भी दद्दा को नौकरी छोड़ देने की सलाह दूँगा।

धनी०—देना ही पड़ेगी।

राजा०—अच्छा, अब चलो। ये बाते फिर कर लेना।

(सबको पकड़ पकड़कर बाहर जाने का आग्रह करता और एक-दो को धक्का देता और दो-एक का हाथ पकड़कर ले जाता है)

दृश्य दूसरा।

(चारो लड़के घूमते और सिर हिलाते नज़र आते है। साम्हने से एक देहाती बुड्ढे का प्रवेश)

बुड्ढा०—राम राम महाराज।

सब लड़के—राम राम दद्दा, राम राम।

के०—देखो, दद्दा का कैसा रोब है कि अदना आदमी भी मुझे

बिना सलाम किये रास्ते में नही चलते । क्यो न हो भाई, आखिर को कोतवाल ही ठहरे ।

राम०—तो क्या जनाब, आप समझते है कि उसने आपको सलाम किया है ? क्या आप इसीमे फूल रहे है ? अरे भाई, एक दिन वह मेरे घर दद्दा के पास शिकमी किसान का नाम पूँछने आया था, उसी समय मैं वहाँ बैठा था. इसलिए उसने उसी पहिचान से मुझे सलाम किया है, न कि आपको हज़रत ! ज़रा होश की दवा करो ।

(राजाराम दर्शकों को कौतुक दर्शाता और उन लोगों की मूर्खता का परिचय देता है)

धनी०—राम राम ! नाहक झगड़ते हो ? अरे भाई, वह पहले गाँव के पटैल के लड़के को सलाम करेगा कि तुम लोगो को ? ऊँहुँ, नाहक झगड़ रहे हो ।

केदार—याने मतलब यह कि हम दोनो से सलाम न कर आपसे किया है ।

धनी०—बेशक । बराबर किया, क्यो राजाराम ?

राजा०—भैया, अब मुझे बीच मे न डालो । यह तो वही मसल ठहरी कि सूत न कपास जुलाहो से लठालठी । ऐसा ही तो मैं भी कहता हूँ कि यदि उसके लड़का होगा, और यदि मेरे पिता के पास भेजता होगा, तो उसी डर के कारण उसने मुझे सलाम किया है । अरे, इस बात पर नाहक झगड़ते हो । उसीको बुलाकर न पूँछ लो ।

(सब राज़ी होते है और दौड़कर उसे बुलाते है)

सब—(घबराहट के साथ) तुमने किससे सलाम किया था ?

देहाती—(काँपता-सा) सरकार, सब पंचन से ।

रा०—ठीक ठीक बोलो। किससे ख़ास तौर पर तुमने सलाम किया था ?

दे०—सरकार कहत तो हो कि सबसे (विस्मित-सा)

राजा०—अरे भाई, यह कह कि किससे ?

धनी०—हाँ ठीक ठीक बता, डरने की कोई बात नहीं है।

बुड्ढा—(सोचता है) तो सरकार, जो तुममे सबसे बुधमान है वई को मैंने राम राम करी।

सब लोग—देखो, उसने मुझसे की थी।

के०—क्योंकि मै छठवीं अंग्रेज़ी पढ़ता हूँ। मै अधिक बुद्धिमान हूँ।

रा०—मुझसे की है। मै भी तो छठवीं पढ़ता हूँ और तुमसे होशयार भी हूँ।

राम०—मुझसे की है, क्योंकि मै सातवीं पढ़ता हूँ।

धनी०—तुझे क्या करेंगे (रामनाथ की ओर) ? पटवारी के लड़के को सलाम करेगा ? अपने रे० ई० के यहाँ भी पैदा होता तो मान सकते थे।

राम०—(देहाती से) साफ़ कहो जी कि तुमने किससे राम राम की है। मुझसे की है न ?

दे०—अच्छा, आप लोग लड़बो बन्द करो, तो फिर मै बताउत हौं।

(सब लोग चुप खड़े हो जाते है)

सब०—अब कहो।

दे०—(सोचकर, जल्दी से) अच्छा जो सबमे मूर्ख है वाको।

[इतना कहकर हँसता हुआ भाग जाता है]

(सब लोग एक दूसरे की तरफ़ देखकर विस्मित हो जाते है)

[पटाक्षेप]



पात्र—

१—शराबी राजा

२—मंत्री

३—चपरासी

४—फ़र्यादी

५—हरिया नाई

६—टल्लू बनिया

(एक शराबी राजा अपने मंत्री के साथ बातचीत करता बैठा है। चपरासी दूर खडा है)

राजा—(शराब मे मस्त होकर) क्यो मंत्री, तुम कैसा है ?

मंत्री—स्वामीजी ! जैसा था वैसा ही हूँ।

राजा—अबे मूर्ख ! स्वामीजी नही, तू कैसा है ?

मं०—दीनबन्धु ! मै अपना ही हाल तो कह रहा हूँ कि सदा के अनुसार हूँ।

रा०—प्रजा का क्या हाल है ?

मं०—वैसे तो आपके प्रबन्ध से सब आनन्द है, परन्तु कही कहीं बहुत दंद-फंद है।

रा०—रहने दो, चुप रहो। तुम मेरे पीछे झगड़ा लगाना चाहता है।

चपरासी—महाराज, ड्योढ़ी पर एक फ़र्यादी खड़ा है। वह किसी

दुःख मे तो निस्सन्देह है , परन्तु बातचीत मे विशेप कड़ा है ।

रा०—ऐसा ! अच्छा, उसको सलामी के साथ ले आ ।

चप०—जो आज्ञा महाराज ! (जाता है और फ़र्यादी से कहता है) भाई ! राजा की आज्ञा है कि सलामी के साथ लाओ । सलामी का अर्थ यह है कि हम तुम्हारा कान पकड़े लेते है और तुम सिर झुकाये राजा के साम्हने तक चले चलो ।

फ़र्यादी—(अचंभे से) अरे यह क्या ? अचानक राजा ने ऐसी आज्ञा क्यो दी ? क्या तुम्ही ने तो नहीं कुछ भिड़ा दिया ?

चप०—भला मुझे इन बातो से मतलब ?

फ़०—तो राजा का ऐसा स्वभाव कैसा है कि मेरा ही नुकसान हो और मेरा ही कान पकड़ा जाय और सिर झुकाया जाय ?

चप०—अबे चलता है कि मुझसे बहस करता है ? जो कुछ कहना हो सो वही चचा से कहना । मुझ मे देर करके मेरी आफ़त कराना चाहता है ?

फ़०—भाई, मुझे तो अब भय लगता है । साम्हने जाने को जी काँपता है । यदि तू कृपा कर दे, तो मैं भाग जाऊँ ।

चप०—(हाथ पकड और धक्का देकर कान पकड़ता है) चल जल्दी । (ले जाकर साम्हने खड़ा कर देता है) महाराज ! यह हाज़िर है ।

रा०—(नशे का जोर दिखाकर) क्यो बे क्या है ? कहाँ आया ?

फ़०—महाराज ! मेरी भैंस ने हरिया नाई के चने खा लिये, इससे उसका पेट फूल गया और वह मर गई ।

रा०—चपरासी, हरिया नाई को अभी पकड़ ला ।

चपरासी—(जाता है और नाई को पकड़ लाता है । तब तक राजा नशे में अटपट बकते है)

महाराज ! हरिया हाज़िर है ।

रा०—क्यों रे ? हौए, कौए, नालायक नौए, तूने ऐसे चने क्यों रक्खे कि जिनके खाने से इसकी भैंस मर गई ?

ना०—(हाथ जोड़कर) ग़रीबपरवर, इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मैंने तो वे चने टल्लू बनिये की दूकान से ख़रीदे थे।

रा०—ठीक है। चपरासी, इस नौए को दो धक्के लगाकर निकाल दे और टल्लू बनिया को अभी पकड़ ला।

चप०—जो आज्ञा महाराज। (नाई को धक्के मारता ले जाता है; और बनिये को पकड़कर लाता है)

महाराज ! बनिया हाज़िर है।

रा०—क्यों बे बनिया, चटनी की धनिया, तूने ऐसे चने क्यों बेचे कि जिसके खाने से नौआ मर गया ? अरे नौआ नहीं, (फ़र्यादी को दिखाकर) इसकी भैंस मर गई ?

ब०—(हाथ जोड़कर) महाराज, इसमें मेरा रंच मात्र भी अपराध नहीं है। इसमें सब अपराध ज़मीन का है।

रा०—क्यों, ज़मीन ने क्या किया ?

ब०—महाराज ! ऐसे चने उसीने पैदा किये हैं।

रा०—(चपरासी से) चपरासी, इस बनिया को कान पकड़के निकाल दे।

चप०—बहुत अच्छा। (बनिया को कान पकड़कर ले जाता है। लौटते वक्त अपने आप कहता है) इस नौकरी पर पत्थर पड़े। ऐसे शराबी के पाले पड़े हैं कि रातदिन दौड़ना पड़ता है। जान पडता है, इसी ६) रुपये की ताबेदारी में ही प्राण निकल जावेंगे।

रा०—चपरासी ! ओ चपरासी ! आ गया ?

चप०—हाज़िर हूँ महाराज !

रा०—शीघ्र जा और उस चने-वाली ज़मीन को पकड़ लो।

मं०—महाराज ज़मीन .

रा०—तू क्यो बोला ? नालायक, मूर्ख, गधा, चुप बैठा रह, नही तो बेत से खाल खिंचवा लूँगा। क्यो बे चपरिसिया, गया कि नही ?

चप०—(डरता डरता) महाराज, ज़मीन तो निर्जीव पदार्थ है। वह चल नही सकती, और उसे सज़ा भी कुछ नही हो सकती।

रा०—(क्रोध से) नही चल सकती, तो सिर पर रखके ला। हम बराबर उसको सज़ा देगे।

चप०—महाराज, वह ज़मीन ऐसी ही है जो अपने नीचे है। वह किसी प्रकार आ नही सकती।

रा०—तो फिर भैस मरने के अपराध मे ज़मीन को जो सज़ा होना चाहिए वह कौन भुगते ? (कुछ देर मे) क्यो मंत्री ! अबे बोलता क्यो नही. मै भुगतूँ या तू भोगता है ?

मं०—(कुछ बनकर) महाराज ! मै तो आजकल बहुत ही निर्बल हो रहा हूँ।

रा०—अच्छा तो मै हूँ हट्टा-कट्टा। चपरासी, मुझे ही लगा चार धक्के, उस भैस की सज़ा किसीको भी तो होना चाहिए। (चपरासी खड़ा रह जाता है) क्यो रे ! हुक्म मानता है या नही कि राजी होना है ?

मं०—(एक ओर मुँह करके, चपरासी से) तू तो लगा धक्के। फिर देखा जायगा। डरता क्यो है ? देर करने से ऐसा न हो कि मेरी और तेरी दोनो की दुर्दशा हो जाय। ये तो मतवाले ठहरे। इनका क्या विश्वास ?

रा०—अबे चल बे !

चप०—(एक धक्का ज़ोर से मारता है। राजा चिल्लाता है)

रा०—बस ! बस ! माफ़ करो ! कृपा करो। मै इसकी भैस अभी

घोंघा-बसंत विद्यार्थी

पात्र—

घोंघाबसंत तथा ४-५ विद्यार्थी

(घोंघा-बसन्त का हुलिया—कहीं-के-कहीं बटन लगाये हुए, मैली धोती या पायजामा पहने हुए, जिसमे दो-चार पेबंद ऐसे लगे हों जो दूर ही से देख पड़ते हों, सूरत देखने मे उजबक मालूम होता हो, चलने मे पैर सीधे न पड़ें, बात करते मे गर्दन को झटका-सा देने की और प्रायः सीधी आँख मीचकर बांईं आँख को बहुत अधिक खोलने की आदत हो, मोटा-ताज़ा भदेसिल बदन हो)

घोंघा-बसंत—(भागकर आता हुआ और दम फूल जाने के सबब से लंबी साँसें लेता हुआ) सब-के-सब कम्बख्त पीछे पड़े हैं! 'शिकारपुरी', 'शिकारपुरी' करके मेरी जान आफत मे कर डाली है, जैसे कोई शिकारपुर में आदमी ही न रहते हों! ऐसा जानता तो मैं कभी यहाँ न आता, बल्कि आगरे चला जाता। खाट के पाये से चुटिया बाँधकर रात-रात भर पढ़ा, तब कहीं इंटरमीडियट पास हुआ। और, कहा गया था कि संसार के इतिहास मे जिसे तुम सबसे बड़ा आदमी समझते हो उसपर निबंध लिखो, सो मैंने अपने बापूजी पर लिख दिया, जिससे कि मुझे सेकंड डिवीजन मिला, हालाँकि वे पटवारी है। पर यहाँ के लोग गुणवालों को देखते नहीं, घर का पता

पूछते है "कहाँ के रहनेवाले हो ? कहाँ के रहनेवाले हो ?" अरे, रहनेवाले है तुम्हारे घर के, कहो क्या कर लोगे तुम हमारा ? कह दिया करता था कि ज़िला बुलंदशहर का रहनेवाला हूँ, पर अब किसी कम्बख़्त ने—भगवान उसे सौ वरस तक सब विषयो में फेल करे और सत्यानाश जाय उसका—आस्तीन का साँप, कुल्हाड़ी का बेटा कहीं का! और फिर, आपको बोलना हो बोलिए—जी हाँ, न बोलना हो न बोलिए, अपना रास्ता नापिए, चाल दिखाइए, हवा खाइए, सवारी बढ़ाइए वग़ैरह-वग़ैरह और भी बहुत से अच्छे अच्छे वाक्य है। हम जहन्नम के रहनेवाले सही, क्या कर लेंगे आप हमारा ? चखश! यह बात दूसरी है कि सारा अवा का अवा ही बिगड़ गया है! मै अभी बतला सकता हूँ कि लखनऊ से इलाहाबाद तक जाने पर कौन-कौन से स्टेशन बीच मे पड़ेंगे। यही क्यों, आप यहाँ से लगाकर उटकमंड तक किसी भी रेल का टाइम या स्टेशन का नाम पूछ देखिए। देखिए, कैसा फराफर बताता चला जाता हूँ। अरे, हम चाहे घोचू हो, चाहे घपाचू हो, चाहे तामलोट हो, चाहे बैंगनदास हो, तुम हमारे गुण देखते हो या ख्वाँमख्वाँ हवा से लड़ते हो! कालेज का घंटा जब बजने लगता है तब कोई कम्बखत एक जूता उड़ा देता है, कोई टोपी चुरा लेता है—(कुछ आहट सुनकर और चौकन्ना होकर, नाक पर उँगली रखकर देखनेवालो से चुप रहने का इशारा करता हुआ, कुछ धीरे से) आये सौरे, यहाँ भी आये। (इधर-उधर देखकर जल्दी से एक ओर छिप जाता है; दूसरी ओर से पाँच-छः लड़के हँसते हुए आते हैं)

एक लड़का—अबे यार, गया किधर ? कहीं किसी धोबी-ओबी ने तो नहीं बाँध लिया ?

दूसरा—मेरे सामने तो इधर ही आया था (चारो ओर देखकर) न हो तो चलो और ही कहीं ढूँढ़ें ।

(सामने से, रूमाल मे कुछ बाँधे हुए, एक लड़का आता है)

सबके सब—आइए वर्माजी, आइए, आप ही की कसर थी ।

एक—भला यह तो बतलाइए कि रूमाल मे क्या बाँधे लिये जा रहे है ?

दूसरा—अरे भाई टोको मत, ससुराल से मिठाई आई है ।

तीसरा—वे क्या बेचारे मना करते है, खानी हो तो खा लो ।

वर्माजी—यारो, है तो चीज़ खाने ही की, पर तुम्हारी हिम्मत नहीं पड़ सकती ।

सब—क्यो ? क्यो ?

वर्माजी—यह तो किसी गधे के खाने की है ।

(सब हँसते है)

एक—मालूम होता है, ससुराल-वालो ने आखिर आपको पहचान ही लिया ।

दूसरा—आखिर दिखलाइए भी तो कि क्या है ।

तीसरा—अजी इधर लाइए । (छीनकर खोलता हुआ) दावत उड़ने दीजिए, ऐसा चकमा किसी और को दीजिएगा ।

(खोलने पर उसमे शंतरे, केले, अखरोट आदि के छिलके निकलते है । सब अचरज करते है)

चौथा—वर्माजी, यह क्या ? क्या हम सबको उल्लू बनाने का सामान किया था या सचमुच—

वर्माजी—(बीच मे बात काटकर) सचमुच क्या, आप सब जानते ही है कि अबकी बार मुझे एक शिकारपुरी साथी मिला है जिसके मारे मेरे कमरे का नाक मे दम रहता है । परसाल साफ़-सुथरा रखने का इनाम मुझे मिला था, अब की बार यह एक

ऐसा साथी अटका है कि सारे कमरे को गंदा किये रहता है। और तो और, आपको फल खाने का शौक़ चर्राया है। देहात मे तो कभी मिलते नही थे, अब हज़रत करते यह है कि फल खाने के बाद छिलको को सूँघा करते है। (सबका हँसना) पूछने पर जवाब देते है कि "गूदा नही तो सुगंध तो बाकी है, फेंक कैसे दूँगा, मैंने तो सुगंध-समेत के पैसे दिये थे, मेरे पैसे क्या कोई मुफ़्त के थे?" इस तरह कर-करके कमरे मे छिलको का ढेर लगा दिया है। (सब हँसते है) कहता है कि शंतरे के छिलके सुखाकर उनका चूरन कर लूँगा और खाते समय दाल-तरकारी मे डाल लिया करूँगा। इससे सुगध भी आ जाती है और अजीरन भी दूर हो जाता है (सबका हँसना) जब अपनी खाट के नीचे जगह नही रही, तब आप मेरी खाट के नीचे अटंबार लगाने लगे। (सबका हँसना) जी हाँ, मक्खियो की भिनभिनाहट के मारे सोना-बैठना हराम हो रहा है। (सबका हँसना) कुछ न पूछो यारो, पूरी मुसीबत मे हूँ। (फिर हँसना) अब जब नही सहा गया तो यह शिकारपुरी तोहफ़ा वार्डन साहब को बतौर बड़े दिन की सौग़ात देने जा रहा हूँ। (सब हँसते है) अब या तो वही इस कमरे मे रहेगा या मै ही। (सब लोग हँसते है) सच कहता हूँ, अब एक म्यान मे दो तलवारें नही रह सकती।

(सब लोग हँसत है, घोंघा-बसंत कुपित होकर बाहर निकल पड़ता है। सब लोग हँसते और अचरज करते है। घोंघा-बसंत क्रोध से आँखें निकालकर फटकारने लगता है। क्रोध के आवेश मे अपना पैर भी दे दे मारता है)

घोंघा-बसंत—ख़बरदार, मेरा नाम लिया तो। मैने ऐसे लड़के ही कहीं नही देखे! अपने आप तो मेरे तकिये के नीचे कभी पिन

लगा देते है, कभी जूता रख देते हैं—उस दिन कुल्हड़ मे गोबर और ऊपर मलाई रखकर मुझे रबड़ी बताकर खिला दिया—बाहर सोता हूँ, तो खाट-समेत उठाकर नदी-किनारे पटक आते है, भीतर सोता हूँ, तो बाहर से कुंडी लगा देते हैं; सो तो कुछ नही, अब कहीं दो छिलके पड़े रह गये होंगे, सो सब-के सब मेरी रिपोर्ट करने चल दिये। (वर्माजी से) मुझे भी स्वीकार नहीं है आपके साथ रहना। बस, यह निश्चय हुआ कि मै कोई दूसरा कमरा खोज लूँ और आप दूसरा साथी। किसीने क्या ही अच्छा कहा है कि 'दुष्ट संग नहिं देइ बिधाता।'

(सब हँसते है)

एक—अच्छा भाई, अब जो हुआ सो हुआ, मेल हो जाना चाहिए। तनिक-तनिक सी बातें वार्डन साहब के पास पहुँची, तो आखिर बदनामी किसकी है, यह भी तो सोचो।

दूसरा—ठीक है, ठीक है। आप लोग क्षमा कीजिए एक दूसरे को।

वर्माजी—अरे यार, रोज का झगड़ा है, कोई आज का ही थोड़े है।

घोंघा—(बाँहे चढ़ाता हुआ) झगड़ा है तो लड़ लो, आ जाओ।

तीसरा—चलो हुआ म्याँ, चुप भी रहो।

वर्माजी—देख लीजिए, अब आप ही देख लीजिए।

घोंघा०—हूँः, वार्डन साहब हमे फाँसी लगा देंगे।

वर्माजी—और उसपर तुर्रा यह कि आप अकड़े ही चले जाते है।

घोंघा०—अकड़ते क्या है, तुम बातें ही ऐसी करते हो। हम तो अकड़ते नहीं, हमें क्या कुत्ते ने काटा है! तुम्हीं अकड़ते हो। जब देखो तब दिल्लगी ही दिल्लगी! दिल्लगी के सिवा दूसरी बात ही नहीं! मै तो कहता हूँ, कौन भी बोले, कौन भी बोले।

(सबका हँसना) बस, यही तो है। बहुत किया तो ठि ठि· ठिः ठि· हँस दिये।

(सबका हँसना)

एक—आपने बजा फ़रमाया। आपने तो जनाब इस लेक्चर में वह-वह बातें कह डाली है, जो सुकरात के बाप ने भी न कही होंगी, जब कि उसने वारन हेस्टिंग्स पर चार्ज लगाया था।

(सबका हँसना)

दूसरा—सच है, हम सब लोग अपने-अपने हाथ जोड़कर आपके अंग-प्रत्यंगों से क्षमा माँगते हैं।

(सबका हँसना)

तीसरा—क्योंकि हकीम अफ़लातून कह गये है कि गुस्सा करने से क़ूवत घटती है कि जिससे चेहरे पर शिकन पड़ती है, जवानी मे बुढ़ापे के आसार नमूदार होते हैं, जो कि बाद को पाउडर और पोमेड लगाने और ताक़त की दवाएँ खाने पर भी वापिस नही मिलता।

(सब हँसते है, घोंघा-बसंत नाराज़ होता है)

चौथा—हैं हैं, आप व्यर्थ आपे से बाहर न हों, नहीं तो प्रलय हो जाने में कोई संदेह नहीं। भला हम कहीं आपके शरीर से कोई अनुचित या आउट-आफ़्-ऐटीकेट बात कह सकते हैं ?

(सबका हँसना)

पाँचवाँ—अभी तो आपने मालकौस का धुरपद ही अलापा है, कहीं दुलत्ती झाड़कर ताल भी दे दी, तो एकाध का ढेर हो जायगा!

छठा—भला जो आप हैं सो कहीं कोई दूसरा हो सकता है!

जन्म-भर रोते रहे डारविन, उनको न मिला।
हमने पाया है मगर आज मिसिंग लिंक * यहाँ।

* आदमी और बन्दर के बीच का जीव।

वेंवा०—(आप-ही-आप) अब इन दुष्टो से मै कहाँ तक लड़ूँगा। ये सब एक हो गये है। (लड़कों से) अच्छा तो अब आपको यह ज्ञात हो जाना चाहिए कि मुझमे अधिक सहनशीलता नहीं है। दूसरी बात यह है कि मै अपने साथी की रिपोर्ट करने जा रहा था। अब आप लोगो के कहने-सुनने से चुप हो रहूँगा। आप लोग या तो इन्हे समझा लें और या मेरे लिए कोई दूसरा कमरा खोज दें।

सब—स्वीकार है, स्वीकार है।

वेंवा०—मै सच कहता हूँ कि हरेक बात की एक सीमा होती है। अगर अब की बार किसीने मुझसे बेजा हरकत की और मुझे ज़बरदस्ती मुर्दा बनाकर निकाला, या ऐसी-वैसी चीज़ खिलाई तो बस, समझ लीजिएगा।

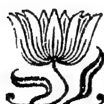
सब—स्वीकार है, स्वीकार है।

वेंवा०—मै किसीसे कुछ न कहूँगा, एकाध को उठाकर दे मारूँगा।

सब—अवश्य, अवश्य।

एक—हमें आपकी सब बाते स्वीकार हैं, बस अब मेल हो जाने दीजिए। आइए वर्माजी, आइए।

(दोनों के हाथ मिलवाये जाते है; हिप-हिप-हुर्रे करते हुए सब जाते है)



गुरु और चेला

पात्र—

१—विद्यार्थी

२—पंडितजी

३—मौलवी साहब

(मौलवी जमीन पर बैठे एक लड़के को उर्दू पढा रहे है)

चेला—क्यो ओस्तादजी, लफ्ज़ वेद या बैद का क्या मतलब है और उसे वेद कहना चाहिए या बैद ?

उस्ताद—तू अभी इतना भी नहीं समझता ।

चे०—ज़रा समझाइए ओस्तादजी ।

उ०—अबे यह क्या बक रहा है ? जा निकल जा मेरी क्लास से ।

चे०—मुआफ़ कीजिएगा जनाब, क्लास का भी मतलब मैं नही समझता ।

उ०—क्लास दफ़अ को कहते है । बस, जा, मुझसे नाहक सिर-पच्ची न कर ।

चे०—ओस्तादजी, 'दफ़अ' लफ्ज़ तो मुझसे कहते ही नही बनता । कल सस्कृत के महाराजजी कहते थे, 'दफ़ा' कहा करो ।

उ०—तू महज़ बेअक्ल है । यहाँ उर्दू पढ़ता है या हिन्दी-संसकीरत ?

चे०—अच्छा जनाब, तो कल इसे अच्छी तरह रट लूँगा; पर मुझे वेद का मतलब जरूर समझाइए।

उ०—वेद हिन्दुओ के शास्तर को कहते है। तूने 'कुरआन' देखा है ?

चे०—हाँ, कुरान तो देखा है ओस्तादजो !

उ०—अबे फिर ओस्ताद कहा।

चे०—तो, फिर क्या कहूँ जनाब ?

उ०—उस्ताद, उस्ताद। कुरआन, कुरआन।

चे०—मै छोटा हूँ। मेरी जीभ लौटती नही।

उ०—तो पढ़ता क्या है पत्थर ! रोज़ नदी-किनारे जाकर पत्थरो के छोटे छोटे टुकड़े चुन उन्हे मुँह मे भर जीभ (ज़बान) चलाया कर। बहुत जल्द मुलायम हो जायगी।

चे०—बहुत अच्छा जनाब, ऐसा ही करूँगा। पर शास्त्र को शास्तर और सस्कृत को संसकीरत न कह सकूँगा। महाराजजी सस्कृत के घंटे मे सुनेगे, तो शपाशप बेत लगा देगे।

उ०—अबे उल्लू ! इतना कठिन उच्चारन तुझसे न हो सकेगा।

चे०—तभी तो अर्ज़ करता हूँ, मुझे कुरान कहने दीजिए।

(उस्ताद बेत मारता है। परदा गिरता है, और दूसरा परदा उठने पर वही चेला संस्कृत के अध्यापक के साम्हने खड़ा दिखाई देता है)

चे०—महाराजजी, चरन छूता हूँ।

उ०—रे मूर्ख, चरण कहना चाहिए या चरन ?

चे०—कल मुंशी हरफन मौला कहते थे कि सरल उच्चारन करना चाहिए और जहाँ तक हो शब्द को सरल रूप देना चाहिए।

गु०—सरल रूप देने का उद्देश्य यह नही है कि शब्द के वास्तविक रूप को ही बिगाड़ बैठना।

चे०—तो महाराजजी, वे उच्चारन क्यो कहते थे ?

गु०—तू यहाँ संस्कृत सीखने आया है कि तर्क करने ?

चे०—तर्क कैसा महाराजजी ? छमा कीजिए। उन्होने और भी ऐसी कई बाते कही है।

गु०—क्या कहा है ?

चे०—वे कहते थे 'वेद' को 'वैद' और 'कुरान को 'कुरआन' कहा करो।

गु०—तो फिर वैद ही क्यों कहता है, सीधा 'बैल' क्यो नही सीख लेता।

चे०—नही गुरूजी, आपके पाँव पड़ता हूँ। छमा कीजिए। बैल तो खेती के काम मे आता है। वेद से ईश्वर का पता लगता है। दोनो मे बड़ा अंतर है।

गु०—रे दुर्मुख, 'क्षमा' को 'छमा' कहता है। जा, बैल नही तो बैद कर ले।

चे०—भूल गया गुरूजी। हाँ हाँ, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए। पाँव पड़ता हूँ, हाथ जोड़ता हूँ, मुझसे बैद न कहलवाइए।

गु०—क्यों ?

चे०—'वैद' तो 'वैद्य-हकीम' को कहते है।

गु०—तो क्या हानि है ? तेरे मुंशी क्या कम बैद हैं ?

चे०—वह आपही जाने, पर अब मुझे अधिक उलझन में न डालें और बतला दें कि मैं क्या कहूँ ?

गु०—हमारे वर्ग में आकर तू 'वेद' ऐसा शुद्ध उच्चारण किया कर।

चे०—जो आज्ञा पंडितजी। मेरी चौथी पुस्तक में शब्दों का बहुत ही शुद्ध रूप दर्शाया गया है।

गु०—कैसा ?

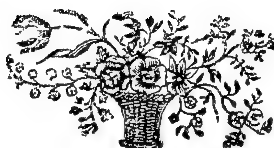
चे०—दफ़अ़, कुरआन, मुस्लमान इत्यादि।

गु०—रे पाखंडी ! भाग यहाँ से ! वादानुवाद करने आया है कि पाठ सीखने ?

चे०—गुरूजी, वादानुवाद नही करता। हाँ मे हाँ मिलाता रहूँगा। अब चला। दण्डवत् !

गु०—हाँ, ऐसी उद्दण्डता ! अच्छा, ले, पहले पुरस्कार—पुरस्कार।

(गुरु मारने को बेत उठाता है। चेला भागकर परदे मे छिप जाता है)



विजेता और पराजित

पात्र—

१—शत्रुसाल—विजेता राजा

२—वीरसेन—पराजित राजा

३—सोमराज—शत्रुसाल का सेनापति

४—दो सिपाही

(वीरसेन को दो सिपाही बाँधे हुए लाते हैं । पीछे से शत्रुसाल और सोमराज का प्रवेश)

शत्रु०—सोमराज, मैं अपने इस पुराने बैरी को हराकर आज बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ । यह बहुत दिन मुझसे नहीं बच सकता था; मेरे वीर सैनिक इसकी कूड़े-कचड़े-सरीखी सेना को एक दिन अवश्य ही साफ़ कर देते । इसका राज्य तो मेरे हाथ में ही आ गया है; किन्तु यह भी पूरी तरह मेरे अधीन है ।

वी०—एक समय था जब मुझे भी लोग आदर-सूचक शब्दों से सम्बोधन करते थे ।

श०—परन्तु तब तुम स्वाधीन थे, अब मेरे अधीन हो ।

वी०—मेरा शरीर तुम्हारे अधीन भले ही हो, पर मैं अब भी स्वाधीन हूँ ।

श०—अकड़कर बोलते हो ! बोटी बोटी अलग करा दूँगा ।

वी०—इससे क्या मैं तुम्हारी अधीनता स्वीकार कर लूँगा ?

श०—देखो, मौत से डरो, इसी क्षण तुम मुर्दों मे गिने जा सकते हो।

वी०—मुर्दों मे किसी न किसी समय सब गिने जायँगे।

श०—तुम्हारा शरीर गिद्ध और स्यार खा जायँगे।

वी०—मरने के पीछे मेरे शरीर का क्या होगा—इसकी मुझे लेश-मात्र भी चिन्ता नही। जो लोग मौत से डरते है वे किससे नही डरते? दो बार तो कोई मरता नही, मौत जब आयगी एक ही बार आयगी। फिर उससे या और किसी वस्तु से भय खाना मूर्खता है। यदि मेरा शव गिद्ध खा जायँगे, तो खाने दो। उसका दाह-कर्म करना या गड्ढे मे डालना या कुत्तो से नुचवाया जाना सब समान है। जो लोग देहान्त के पश्चात् की दशा से डरते है वे असल मे मृत्यु से नही डरते। मृत्यु तो अवस्थान्तर का नाममात्र है। जो लोग कहने के लिए मृत्यु से डरते है वे असल मे अर्थी की सूरत, उस समय रुदन करनेवालो के क्रन्दन और अपने तिरोहित हो जाने पर जगत मे जो एक स्थान शून्य हो जावेगा उसका स्मरण करके भयभीत होते है। ये अवस्थाएँ मृत्यु का भेद नहीं। इसलिए मैं मरने के पीछे होनेवाले दुःखो से नही डरता हूँ; क्योंकि मरण के उपरान्त कोई दुःख होता ही नही।

श०—लोग तुम्हारे शव की दुर्दशा देखकर तुम्हारी अपकीर्ति करेंगे।

वी०—मैंने जीवन-काल मे चापलूसो के यशमात्र की उपेक्षा की, मरने के पीछे निन्दको द्वारा किया हुआ अपयश मुझे अणुमात्र भी विचलित नही कर सकता। जन साधारण की कल्पना किसीको एक क्षण में हाथी पर चढ़ा देती है और दूसरे क्षण गधे पर बिठला देती है। उनकी अस्थिर सम्मति का विश्वास

भोले-भाले और अहंकारी मनुष्य ही कर सकते है। यदि किसी अन्यायी का क्लीवोचित बर्ताव और पतित शत्रु के साथ अत्याचार उन्हे रुचिकर है, तो मेरा इससे बिगड़ता ही क्या है ? तुम्हारे मन मे जो आता हो सो करो।

श०—क्या तुम्हे संसार कुछ भी प्रिय नही ?

वी०—ऐसा कोई नही जिसका विचार मेरे स्वाभिमान के बीच मे आ जाय। जो लोग मेरा विचार रखते है वे अपने प्रेम और मोह से मेरे स्वाभिमान को नही तौलते।

श०—तुम्हारी जीभ बड़ी प्रखर मालूम होती है।

वी०—उससे डरने का आपको कोई कारण नही, क्योकि आपके खड्ग की धार उससे भी अधिक प्रखर है।

श०—तो तुम मेरी अधीनता स्वीकार न करोगे ?

वी०—मुझे एक प्रश्न का दो दो बार उत्तर देने का अभ्यास नही।

श०—तुम इतना कह दो कि तुम्हारे अधीन हूँ, तो तुमको आधा राज्य लौटा दूँगा।

वी०—स्वर्ग का राज्य भी मेरे मस्तक को अवनत नही कर सकता।

श०—तो तुम्हारी गर्दन मारी जाने मे बहुत विलम्ब नही है।

वी०—बहुत बात करने की आवश्यकता ही क्या ? मै तैय्यार हूँ। मुझे भी स्वय जल्दी है।

श०—क्या मरने की ?

वी०—हाँ उसीकी। तुम तो कदाचित् अमर हो ?

श०—सिपाहियो, इसकी आँख पर पट्टी चढ़ाओ।

वी०—यह कष्ट सिपाहियो को न दो। इसके सिवाय इसमे मेरा अपमान भी है। पट्टी मै अपने-आप चढ़ा लूँगा, अपना काम ये करे। लाओ, पट्टी मै बाँधता हूँ।

सो०—महाराज, इतनी कृपा तो आप इनपर अवश्य करें, यह नृपोचित है।

वी०—शत्रु पर कृपा ? सिपाहियो, तुम्हीं पट्टी बाँधो। कृपा से अपमान अधिक वाञ्छनीय है।

श०—वीरसेन, तुम्हारा यह नाम किसने रक्खा ? तुम्हारा नाम आज से विजेता और मेरा नाम पराजित हुआ। मैं हारा और तुम जीते। (हाथ जोड़कर) मैं नतमस्तक हूँ। मुझे क्षमा करो।

वी०—(आश्चर्य से) हैं ! यह क्या ?

श०—मैं हार गया, मेरी सम्पूर्ण सेना हार गई। यदि तुम संसार में न रहोगे, तो मुझ ऐसे पामर यहाँ रहकर क्या करेंगे ?

वी०—(गद्‌गद होकर) अब मैं तुम्हारे अधीन हुआ। निस्सन्देह मेरी स्वाधीनता छिन गई।

सो०—दोनों महाराज राजसभा में चलकर एक साथ सिंहासन पर विराजमान हों। लोग इस लोकोत्तर वीर को देखें और समझें कि वीरता इसे कहते हैं और वीरता का आदर यों होता है।

(सब जाते हैं)

[पटाक्षेप]

युवक-वीरता

पात्रः—

१—विशाल

२—भूपाल

(दो युवक एक बरामदे मे टहल रहे है)

एक—अरे भाई विशाल !

विशाल—कहो भाई भूपाल !

भूपाल—आज तो मेरे मन मे यह आ रहा है कि मैं भी योरूपीय महाभारत के रणस्थल मे जाकर जर्मन कैसर के विरुद्ध घोर युद्ध करूँ।

वि०—चल रे, तू डेढ़ पसली का आदमी क्या युद्ध करेगा। छोटे मुँह बड़ी बात ! हाँ, यदि मै योधा बनूँ तो एक बात भी है।

भू०—तेरे बाप-दादो ने कभी योधाओ का नमक खाया था कि तू ही एक अनोखा योधा हो जावेगा ? क्या कहिए साहब, नानी तो कॉरी मर गई, नवासे के नौ नौ व्याह।

वि०—अरे चलो जी पिलपिलीदास ! अब भी यदि तुम्हारे हृदय में गीदड़ फुदकना चाहे, तो फुदकें।

भू०—क्या तुम मेरी मरदानगी देखना चाहते हो ? अजी देखना तो रहा दूर, पहिले कान-पूँछ फटकारकर सुन ही लो। देखो,

यदि तुम इस समय यहाँ पर सौ पापड़ों का भी ढेर लगा दो तो मै एक ही मुक्के से क्षण भर मे उन सबो को चूर चूर कर सकता हूँ। क्या कोई भी मेरी वीरता मे बट्टा लगा सकता है ?

(दोनो बैठते हैं)

वि०—हाँ, सौ पापड़ और एक मुक्के में ! (मित्र की पीठ ठोककर) तब तो तुम वीर क्या, वीराङ्गणा हो।

भू०—तुम तो हो मूर्ख। तुमसे ऐसी बाते करना व्यर्थ है। ठीक तो है, बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद। और भी देखो, यदि कभी किसी मोटे-ताज़े चूहे से साम्हना होता है, तो मेरा हृदय तनिक भी नहीं काँपता। और बस, उसको धोखा देकर एक ही डंडे से उसका काम तमाम कर डालता हूँ।

वि०—भाई, तुम तो बिल्ली के भी ताऊ निकले।

भू०—और चीटियो-मक्खियो को तो कुछ समझता ही नही। हाथ से ही चटनी बना सकता हूँ।

वि०—वाह् क्यो न हो ! भला कभी किसी चींटे से भी मुकाबिला हुआ है कि नहीं ?

भू०—बाबा रे बाबा ! उसके नाम को तो सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते है। भाई ! एक बार उससे भी युद्ध ठन चुका है। उसकी वीरता भी माननी पड़ेगी। जब वह किसी के शरीर मे चिपक जाता है, तो चाहे आप उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले, पर वह मेरा यार वहाँ से न हटेगा।

वि०—तुमसे भी बढ़कर शूर है। तुम चीटों की सेना तैयार कर लो।

भू०—भाई, तुम तो हँसी करते हो। क्या तुमको नही मालूम कि मै कुत्ते तक से नही डरता ? एक बार उसका भी शिकार खेल चुका हूँ।

वि०—पर उस समय तुम्हारे साथ कितनी सेना थी ?

भू०—छिः ! छिः ! क्या बाते करते हो ? तुम मेरी इन भुजाओ का बल-पराक्रम नही जानते ?

वि०—तो भाई, फिर कहो भी, ऐसी बड़ी शिकार के लिए कैसे साहस हुआ ?

भू०—बस, एक मचान बनवा ली थी। उसपर से एक बन्दूक छोड़ी ही थी कि वह भारी चतुष्पद चारो खाने चित्त जा गिरा और प्राण त्याग दिये।

वि०—शाबाश मित्र शाबाश ! तो चलो, आज किसी व्याघ्र का शिकार...

(भूपाल पृथ्वी पर गिरकर बेहोश हो जाता है)

वि०—है ! है ! यह क्या हुआ ? क्या 'व्याघ्र' शब्द सुनते ही यह दशा हो गई ? अब क्या करूँ ? इस समय न ठंडा जल ही है और न कोई औषध ही है। (जेब मे हाथ डालकर) अहा ! थोड़ा-सा कपूर है। इसीको सुँघाऊँ।

(सुँघाता है)

भू०—(होश में आकर) भाई, बहुत नींद आई।

वि०—बलिहारी तुम्हारी नींद की ! अब बेकाम की बाते तो छोड़ो और यह बतलाओ कि तुम व्यायाम करते हो कि नही ?

भू०—वाह अच्छे रहे ! व्यायाम करै वह जो हीनबल हो। भला हमारे समान शूरवीरो को उससे क्या मतलब ?

वि०—तुम तो मूर्खों की सी बाते करते हो ! क्या तुमको कोई भी वीर कहेगा ?

भू०—भला मै क्यो मूर्ख ? जो मुझको वीर न बतलावे वह मूर्ख ! यदि वीर न होता, तो पाँच सात-बच्चे कैसे हो जाते ?

वि०—तुम्हारी आयु क्या है ?

भू०—आयु भी बहुत हो गई। अब तो बुढ़ापा आ चला। तिस पर भी इतना बल है कि फिर हाँ

वि०—फिर भी आयु तो बतलाओ।

भू०—इक्कीस वर्ष सात मास का हूँ। अब तो यह विचार है कि सांसारिक जाल को छोड़कर विरक्त हो जाऊँ।

वि०—हाँ भाई, ऐसा ही उचित है, क्योंकि अब यह आपका चौथापन है। तुम्हारा विवाह कब हुआ था?

भू०—वही साधारण समय पर।

वि०—साधारण समय तो १६, १७ वर्ष है।

भू०—ह ह ह ह ह ह! तुम तो निरे विशाल हो। तुम्हारी बुद्धि बहुत संकीर्ण है। अजी मेरा विवाह हुआ था जब मैं पाँच वर्ष का था और दो वर्ष बाद स्त्री भी घर में आ गई थी। उसकी आयु उस समय दस वर्ष की थी।

वि०—जोड़ा तो अच्छा था!

भू०—चलो जी, तुमको सिवा हँसी के और भी कुछ आता है? बस, अब तो मैं जाता हूँ और (Volunteers) वालन्टीयर्ज़ में नाम लिखवाता हूँ।

वि०—चलो, मैं भी चलूँ, तुम्हारी सिफ़ारिश भी कर दूँगा; परन्तु चींटों की सेना साथ ले चलना।

(दोनों हँसते हुए जाते हैं)

पाठशाला

पात्र—

पंडितजी और ५—६ विद्यार्थी



(कुर्सी पर पंडितजी और फ़र्श पर कुछ विद्यार्थी बैठे है)

पं०—अरे लड़को, क्या कर रहे हो ? यहाँ आओ, तुम्हारा पाठ सुने। (सब चुप रहते है) क्यो नही बोलता, अरे गोविन्द ?

गो०—हाँ पंडितजी।

पं०—यहाँ आ।

गो०—(पास आकर) कहिए।

पं०—इतिहास याद कर लाया ?

गो०—वाह पंडितजी ! मै इतिहास वितिहास नहीं पढ़ने का। वह तो हमारा उपहास है। उसमे लिखा है कि हिन्दू पशु के समान जंगली थे।

पं०—चल बे, क्यो बकबक करता है ? हट यहाँ से। अरे भोला, तू यहाँ आ।

भो०—(हाथ जोड़कर, मुसकराते हुए) महाराज ?

पं०—भूगोल सुना। अबे बोलता क्यो नहीं ?

भोला०—भूगोल पृथ्वी गोल है। (इसीको बार बार कहता है)

पं०—अबे आगे बढ़।

भो०—कहाँ ? आपके सिर पर ?

पं०—(आँखें लाल लाल करके) लाना मेरा डंडा।

सब विद्यार्थी—(खड़े होकर) पंडितजी, डंडे का क्या कीजिएगा ?

पं०—तुम लोगों की मरम्मत करूँगा।

सब वि०—क्या हम टूटे-फूटे पदार्थ हैं जो आप मरम्मत करेंगे ?

पं०—(स्वगत) परमेश्वर ! इन लड़कों से पीछा छुड़ा। इधर ये नाक में दम करते हैं, उधर वे लोग कसकर सवारी गाँठते हैं। (प्रगट) लड़को, तुम अपना भला नहीं देखते ?

सब वि०—क्यों नहीं, क्यों नहीं ? आप हमें छुट्टी दीजिए। फिर हम अपना भला ही भला देखेंगे।

पं०—चुप रहो, अपना पाठ सुनाओ।

चंचल—पंडितजी, आप भी विचित्र मनुष्य हैं। चुप रहें और पढ़ें भी, यह कैसे ?

पं०—(साँस खींचकर) हे ईश्वर ! लड़को ! तुम सब शैतान के अवतार हो।

चं०—तो हम सबका पूजन कीजिए और अच्छा अच्छा प्रसाद चढ़ाइए।

पं०—बस, अब बहुत गड़बड़ हो ली। अब सवाल करो।

सब वि०—(एक संग चिल्लाकर) पंडितजी, आपने कल क्या खाया था ? आपने सवेरे किसका मुख देखा था ? आपके बाप का नाम

पं०—अबे ! यह क्या कर रहे हो ?

सब वि०—आपकी आज्ञा का पालन। यह सब सवाल ही तो हैं।

पं०—अरे लड़का ! तुम्हारी परीक्षा निकट आ गई है। तुमको कुछ भी चिन्ता नहीं है।

भो०—महाराज ! परीक्षा तो आपही के निकट है। यदि हम लोग

फेल हो जावेंगे तो आपकी बदनामी होगी, आपपर जुर्माना होगा और तनख्वाह भी कम कर दी जावेगी। आप हमको तङ्ग करते है। उसीका यह फल है।

पं०—(दीनता से) अरे बाबा! समय तो तुम्हारा ही नष्ट होगा। फेल होने पर फिर पढ़ना पड़ेगा।

चं०—समय कौन बला है? अभी हमारी आयु ही क्या है? यदि अभी से पढ़ने लगेंगे तो पंडितजी, आपकी बुद्धि का दिवाला निकल जावेगा।

पं०—अच्छा समय जाने दो। रुपया भी तो तुम्हारा खर्च होगा।

चं०—हमारा रुपया क्यों? हमारे बाप का रुपया लगता है।

पं०—तो क्या तुम और तुम्हारे बाप दो है?

भो०—नहीं तो क्या एक है? देखो, हमारा शरीर अलग, उनका शरीर अलग।

पं०—तुम लोग नहीं पढ़ना चाहते, तो हमारी पाठशाला छोड़ दो।

सब वि०—बहुत अच्छा।

[सब भाग जाते हैं]

पं०—परमात्मन्! इन लोगो का कहना भी ठीक है। पास-फेल होना तो हमारा ही है, इनका क्या? नतीजा अच्छा रहे तो पारितोषिक नहीं तो जुर्माना बना-बनाया है। (साँस खींचकर) चलो जी, घर चलें। जो होगा सो होता रहेगा।

[प्रस्थान]

सुकरात

पात्र—

१—सुकरात

२—यूथीफ्रान

(स्थान—राज-प्रासाद के निकट का मार्ग)

(सुकरात का राज-प्रासाद के निकट खड़े रहना और यूथीफ्रान का उस ओर आना)

यूथीफ्रान—क्यों सुकरात, तुम यहाँ कहाँ? तुम अपने शान्ति-मय एकान्त-वास को छोड़कर इस चहल-पहल के स्थान पर कैसे आ पहुँचे? क्या राज-प्रासाद की ओर जा रहे हो?

सुकरात—हाँ, वहीं तो जा रहा हूँ।

यूथीफ्रान—सो क्यों? क्या कोई मुकद्दमा है? किसीसे फौजदारी तो नहीं कर बैठे?

सुक०—अरे "मरे फौजदारी की नानी, दीवाना करती है दीवानी"। मैं इन दीवानी-फौजदारी के झगड़ों में नहीं पड़ता और न किसीको सलाह देता हूँ कि इन सत्यानाशी झगड़ों में पड़े। क्या तुम्हें किसी प्रसिद्ध कवि के ये वचन स्मरण नहीं है:—

हा! हिंस्र पशुओं के सदृश हममें भरी है क्रूरता,
करके कलह अब हम इसीमें समझते हैं शूरता।
खोजो हमें यदि जब कि हम घर मे न सोते हो पड़े—
होंगे वकीलों के अड़े अथवा अदालत में खड़े।

न्यायालयो मे नित्य ही सर्वस्व खोते सैकडों,
प्रति बार पग पग पर वहाॅ है खर्च होते सैकडों।
फिर भी नही हम चेतते है, दौडकर जाते वही,
लघु बात भी हम पाॅच मिलकर आप निपटाते नही ॥

यूथी०—यह तो सब सुन चुका।—
"पर-उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥"
आप ख़ुद अदालत जा रहे हैं और मुझे उपदेश दे रहे है। इससे लाभ ?

सुक०—भाई! मुझे तो आज जबरदस्ती यहाॅ आना पडा है। मेलिटस नामक एक नवयुवक ने मुझपर यह दोषारोपण किया है कि मै नवयुवको को बड़े बड़े गहन विषयो पर व्याख्यान देकर उन्हे बहकाया करता हूॅ और नये नये देवताओ को मानता हूॅ। इन अभियोगो का उत्तर देने के लिए मै आज न्यायालय की ओर जा रहा हूँ। पर अब, यह तो बताओ कि तुम न्यायालय की ओर क्यो जा रहे हो? क्या तुमपर भी मेरी-नाई कोई अभियोग लगाया गया है या तुम स्वयं ही किसी दूसरे पर अभियोग लगाकर उसे न्यायालय जाने को विवश कर रहे हो?

यूथी०—मै स्वयं अभियोग लगा रहा हूॅ।

सुक०—किसपर ?

यूथी०—एक ऐसे अपराधी पर जिसपर कि अभियोग लगाना चाहिए।

सुक०—क्या किसी नवयुवक पर? मेलिटस पर तो नहीं ?

यूथी०—नवयुवक पर नही, एक बहुत बूढ़े मनुष्य पर।

सुक०—वह कौन है ?

यूथी०—वह मेरा पिता है।

सुक०—अरे भाई! यह क्या कह रहे हो? स्वयं तुम्हारा पिता !!

यूथी०—जी हाँ, मेरा पिता।

सुक०—तुम उसपर नालिश क्यों कर रहे हो? उसपर क्या अभियोग है?

यूथी०—उसपर क़त्ल करने का अभियोग है।

सुक०—ईश्वर कुशल करे! तुम तो ऐसे अदालती हो कि अपने पिता पर भी मुक़द्दमा चलाते हो, तो फिर और किसको छोड़ोगे? मेरा इतना बकना सब जंगल में रोना ही हुआ। प्रथम तो मनुष्यों को उचित अनुचित का ज्ञान ही नहीं होता। इसका पूर्ण ज्ञान होने पर भी, मेरी समझ में, ऐसा काम करने का साहस वही कर सकता है जिसे यह दृढ़ विश्वास हो कि मैं ग़लती नहीं कर रहा हूँ।

यूथी०—हाँ, बिल्कुल सच है।

सुक०—तो क्या, तुम्हारे पिता ने जिसे मार डाला है वह तुम्हारा कोई सम्बन्धी था? हाँ, मैं समझता हूँ कि वह कोई न कोई तुम्हारा नातेदार ज़रूर होगा, नहीं तो एक अनजान मनुष्य को मार डालने के लिए तुम अपने पिता पर कभी अभियोग न लगाते।

यूथी०—तुम मेरी दिल्लगी उड़ा रहे हो। भला इससे क्या अन्तर पड़ सकता है कि क़त्ल किया हुआ मनुष्य हमारा सम्बन्धी था या कि कोई अनजान व्यक्ति? तुम्हें केवल यह पूछना चाहिए कि क़त्ल करनेवाले ने यह काम न्याय-पूर्वक किया या न्याय-विरुद्ध। यदि न्याय-पूर्वक, तो उसे छोड़ देना चाहिए, यदि न्याय-विरुद्ध, तो उसपर क़त्ल करने का अपराध अवश्य लगाना चाहिए, फिर चाहे वह हमारा रिश्तेदार या कुटुम्बी ही क्यों न हो। इस मामले में क़त्ल किया गया मनुष्य हमारे खेत में काम करनेवाला एक कुली था। शराब के नशे में चूर

हो क्रोध मे आकर उस कुली ने हमारे यहाँ के एक दूसरे कुली को मार डाला।

सुकरात—शराबियो का तो यही हाल होता है। मद्य का प्याला चढ़ाने पर वे अन्ध होकर अपने-आपको ही भूल जाते हैं। दारिद्रय देवता का अभिनय करनेवाले, केवल दो-चार आने कमानेवाले, ये मज़दूर भी इस सर्व-नाश-कारी प्रथा से बाज़ नहीं आते। देखो न :—

दो चार आने रोज के भी जो कुली-मज़दूर है—
सन्ध्या-समय वे भी नशे मे दीख पड़ते चूर है।
मर जायँ चाहे बाल-बच्चे भूख के मारे सभी,
पर छोड़ सकते है नही उस दुर्व्यसन को वे कभी!

यूथीफ्रान—हाँ, यह तो बिलकुल ठीक है, पर उस कुली का पूरा हाल तो सुन लो। कत्ल करने के बाद मेरे पिता ने उस कत्ल करनेवाले कुली के हाथ-पैर बाँध दिये और उसे एक खाई मे फेंक दिया तथा इस बीच ही मे उसने एथेन्स के एक पुलिस-अफसर को दूत द्वारा यह खबर भेजी और उनसे यह पूँछा कि उस मनुष्य से कैसा बर्ताव करना चाहिए। दूत के चले जाने पर मेरे पिता ने उस कुली की बिलकुल परवाह न की। उन्होने यह सोचा कि यह घातक मनुष्य है, अतएव यह मर भी जाय, तो भी कोई हानि नहीं। और, वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। दूत के घर लौटने के पहले ही शीत और क्षुधा से पीड़ित हो तथा हाथ-पैर जकड़े रहने के कारण उसके प्राण-पखेरुओ ने सदैव के लिए उससे बिदा माँग ली। और, अब मेरा पिता और अन्य कुटुम्बी-जन मुझसे इसलिए अप्रसन्न हो रहे है कि मै अपने पिता पर अभियोग लगा रहा हूँ जिसने इस हत्या करनेवाले

की हत्या की है। लोगों का कहना है कि मेरे पिता ने उसकी किसी प्रकार से हत्या नहीं की, और यदि उन्होंने बार-बार भी उस कतल करनेवाले को क़तल किया है, तो भी उनका कोई अपराध नहीं है। उनका यह भी कहना है कि मुझे इन बातों में हाथ नहीं डालना चाहिए, क्योंकि पिता पर अभियोग लगाना पुत्र के लिए अपवित्र कार्य है। देखो, सुकरात! पवित्रता और अपवित्रता के ईश्वरीय नियम के विषय में उनका ज्ञान कितना थोड़ा है।

सुक०—तो इससे मालूम होता है कि तुम्हें ईश्वरीय नियमों तथा पवित्रता और अपवित्रता का इतना ज्ञान है कि तुम यह भली भाँति जानते हो कि अपने पिता पर दोषारोपण करने पर भी इस मामले में तुम अपवित्र कार्य नहीं कर रहे हो?

यूथी०—यदि मैं अच्छी तरह न समझता, तो ऐसा काम करने को उद्यत ही क्यों होता?

सुक०—तो भाई, मुझे अपना शिष्य बना लो और इन ईश्वरीय विषयों को स्पष्टता-पूर्वक समझाओ। मुझे पवित्रता और अपवित्रता के विषय में जानने की बड़ी लालसा है। ऐसा होने से कदाचित् मैं मेलिटस के फंदे से भी छुटकारा पा सकूँ।

यूथी०—अच्छा तो, तुम मुझसे क्या पूछना चाहते हो?

सुक०—तुम मुझे यह बतलाओ कि पवित्रता किसे कहते हैं और अपवित्रता किसे कहते हैं? इनके जानने का असली तत्त्व क्या है?

यूथी०—अच्छा सुनो, पवित्रता का मतलब यह है कि हत्या करने-वालों, धोखा देनेवालों और इसी प्रकार अन्यान्य अपराध करनेवालों को दंड देना, फिर चाहे वे अपने माता, पिता या

कुटुम्बी ही क्यो न हो। और, ऐसे मनुष्यो को दंड न देना अपवित्रता है।

सुक०—वाह भाई, खूब समझाया। मैंने तो तुमसे यह पूँछा था कि पवित्रता किसे कहते है। पर तुमने अपने उत्तर में यह समझाने का प्रयत्न किया है कि जो काम तुम इस समय कर रहे हो, अर्थात् अपने पिता पर अभियोग लगाना, पवित्र कार्य है।

यूथी०—हाँ सुकरात, निस्सन्देह यह पवित्र कार्य है।

सुक०—हो सकता है, पर क्या अन्य अन्य कई कार्य पवित्रता के अन्तर्गत नही है?

यूथी०—क्यो नही?

सुक०—तो स्मरण रक्खो कि मैंने तुमसे एक या दो पवित्र कार्यों का वर्णन करने के लिए नही कहा था। मैंने तुमसे पवित्रता का असली तत्त्व पूँछा था।

यूथी०—निस्सन्देह।

सुक०—तो मुझे यह बताओ कि वह कौन सी कसौटी है जिसपर जाँच करने से मुझे यह शीघ्र मालूम हो जाया करे कि कौन कौन कार्य पवित्र है और कौन कौन अपवित्र है।

यूथी०—अच्छा तो जो कार्य देवताओ को रुचिकर होते है वे पवित्र है और जो उन्हे अरुचिकर होते है वे अपवित्र है।

सुक०—अब मुझे तुम्हारे शब्दो की जाँच करने दो। पर पहले यह तो बताओ कि कही तुम यह तो नही मानते कि देवताओ मे कई विषयो में मतभेद है और कभी कभी वे आपुस मे लड़ाई-झगड़े भी किया करते है?

यूथी०—मै तो इन सब बातो को मानता हूँ।

सुक०—सच कहो, क्या तुम सचमुच इन बातो को मानते हो?

यूथी०—हाँ, यथार्थ मे इन बातो पर मेरा विश्वास है।

सुक०—तो प्रिय महाशय, तुम्हारे कहने का यह अर्थ हुआ कि जिस कार्य को कुछ देवता उचित समझते है उसे ही दूसरे देवता अनुचित समझते है, क्योकि यदि यह अन्तर न होता, तो उनमे भेद होने का कोई कारण ही नही दिखाई देता।

यूथी०—तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है।

सुक०—अच्छा तो तुम्हारे कहने का यह मतलब हुआ कि एक ही कार्य से कुछ देवता प्रसन्न रहते है और कुछ अप्रसन्न रहते है ?

यूथी०—हाँ, यह तो स्पष्ट ही है।

सुक०—तो तुम्हारे कहने से तो वही कार्य पवित्र होगा और वही अपवित्र ?

यूथी०—ऐसा ही मालूम होता है।

सुक०—प्रिय मित्र, तब तो तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नही दे सके हो। मैने तुमसे यह नही पूछा है कि ऐसा कार्य बताओ जो पवित्र और अपवित्र दोनो हो। तब यह बात सभव है कि अपने पिता पर अभियोग लगाने के कारण कुछ देवता तुमसे प्रसन्न होगे और कुछ अप्रसन्न।

यूथी०—पर सुकरात, मै समझता हूँ कि इस बात पर देवताओ में कुछ मत-भेद नहीं है। सबकी यही राय है कि यदि कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य की न्याय-विरुद्ध हत्या करता है, तो उसे दंड अवश्य मिलना चाहिए।

सुक०—इस बात का तुम्हारे पास क्या प्रमाण है कि एक हत्यारे कुली का इस भॉति मर जाना न्याय-विरुद्ध हत्या है ? और, सब देवता इसे अनुचित कार्य तथा पुत्र के लिए अपने पिता को दोषारोपण करने को उचित कार्य समझते है ? यदि

तुम मुझे यह भले प्रकार समझा सकोगे, तो जन्म भर मै तुम्हारी बुद्धिमानी की प्रशंसा किया करूँगा।

यूथी०—मै तुम्हे स्पष्टता-पूर्वक समझा तो देता, पर मुझे डर है कि बहुत विलम्ब हो जायगा और कदाचित मैं ठीक समय पर अदालत मे उपस्थित न हो सकूँ।

सुक०—तो तुम समझते हो कि मै अक्ल के पीछे लट्ठ लिये फिरता हूँ। न्यायाधीशो को तुम यह स्पष्ट रीति से समझाओगे ही कि तुम्हारे पिता ने अनुचित कार्य किया है और सब देवता इसे अनुचित मानने मे एकमत है।

यूथी०—हॉ यदि वे मेरी बातो पर ध्यान देगे, तो मै अवश्य ही उन्हे स्पष्ट रीति से समझा दूँगा।

सुक०—हॉ, यदि वे समझेंगे कि तुम ठीक कह रहे हो, तो वे अवश्य तुम्हारी बातो पर ध्यान देंगे। पर यदि तुम समझा भी सके कि सब देवता तुम्हारे पिता के इस कार्य को अनुचित समझते है, तो भी तुम केवल एक कार्य विशेष का उदाहरण दे रहे हो और हम पहले ही मान चुके है कि पवित्रता और अपवित्रता की परिभाषा इस प्रकार नहीं की जा सकती।

यूथी०—अच्छा तो हमे इनकी परिभाषा इस प्रकार करनी चाहिए—जिससे सब देवता प्रेम करते है वह पवित्रता है, और जिससे सब देवता घृणा करते है वह अपवित्रता है।

सुक०—तो क्या अब हम इस परिभाषा की जॉच करे कि यह ठीक है या नही? क्या हमे अन्य मनुष्य जो कुछ कहते है या स्वयं अपन ही जो कुछ कहते है उसे बिना प्रश्न किये मान लेने से संतोष करना चाहिए या हमे इनकी जॉच अवश्य करना चाहिए?

यूथी०—हमें उनकी जाँच अवश्य करना चाहिए। पर मेरे ख्याल से तो इस समय परिभाषा बिल्कुल ठीक है।

सुक०—इसका तो अभी हमें पता लगा जाता है। अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए:—क्या देवता-गण पवित्रता से इसलिए प्रेम-करते हैं कि वह पवित्र है या कि वह इसलिए पवित्र है कि वे उससे प्रेम करते हैं ?

यूथी०—मैं तुम्हारी बातों का बिल्कुल नहीं समझता।

सुक०—देवता पवित्रता से प्रेम क्यों करते हैं ? पवित्रता पवित्र है इसलिए, या और किसी कारण से ?

यूथी०—नहीं, और किसी कारण से नहीं, पर क्योंकि वह पवित्र है इसलिए।

सुक०—तो देवता पवित्रता पर इसलिए प्रेम करते हैं कि वह पवित्र है। वह इसलिए पवित्र नहीं है कि देवता लोग उससे प्रेम करते हैं।

यूथी०—कुछ ऐसा ही मालूम होता है।

सुक०—मालूम होने से मतलब नहीं है। इसे भले प्रकार समझाओ।

यूथी०—अच्छा तो देवता-गण जिन जिन कार्यों को अर्थात् जप-तप और प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हैं वे पवित्र हैं।

सुक०—तो तुम्हारे कहने का यह अर्थ हुआ कि वे इन्हें स्वीकार करते हैं, पर इनसे प्रेम नहीं करते ?

यूथी०—नहीं, जब वे इन्हें स्वीकार करते हैं, तब इनसे प्रेम भी करते हैं।

सुक०—अर्थात्, जिन जिन कार्यों से देवता प्रेम करते हैं वे पवित्र हैं।

यूथी०—निस्सन्देह।

सुक०—इतनी झंझट करने और अपनी परिभाषाओ को बार बार बदलने पर भी तुम मुझे पवित्रता की परिभाषा नही बतला सके हो। जिस परिभाषा को तुम बनाते हो वही जॉच करने पर भ्रम-पूर्ण प्रमाणित होती है। अब की बार तुमने जो परिभाषा बतलाई है यह वही परिभाषा है जिसे एक बार जॉच करने पर तुम स्वयं ही जान गये हो कि तुम्हारी परिभाषा ठीक नहीं है।

यूथी०—तो अब किया क्या जाय ? तुम तो कुछ ऐसे सत्तू बॉध के मेरे पीछे पड़े हो कि जो परिभाषा तुम्हारे साम्हने रक्खी जाती है वही ग़लत साबित हो जाती है।

सुक०—नहीं भाई, तुम तो ऐसे विद्वान हो कि इन सब बातो को भली भॉति समझते हो, तभी तो बिल्कुल निर्भय हो अपने पिता पर दोषारोपण कर रहे हो। भाई, अब तो तुम छका चुके हो। अब कृपा कर थोड़े शब्दो मे अपनी परिभाषा को स्पष्टता-पूर्वक समझा दो। जो कुछ तुम जानते हो उसे छिपाने से भला क्या लाभ ?

यूथी०—मै किसी दूसरे समय तुम्हे इस परिभाषा को स्पष्टता-पूर्वक समझा दूँगा। अब तो तुम मेरा पिड छोड़ो। इस समय मै जल्दी मे हूँ और अब यहॉ नही ठहर सकता। [ऐसा कहकर यूथीफ्रान वहॉ से जल्दी जल्दी भागता हुआ चला जाता है]

सुक०—अरे भाई, यह क्या ? देखो, वह यहॉ से चल ही दिया। उसने मेरी सब आशाओ पर पानी फेर दिया। जो अपने को भारी विद्वान् समझता है वह मुझे एक साधारण-सी बात नही समझा सका है। जाने पर ऐसा उतारू था कि मेरे बात करते करते ही वह यहाँ से रफू-चक्कर हुआ। कैसे शोक की

बात है कि जिन शब्दों को हम सदा उपयोग में लाते हैं, जिन के जानने का दावा करने में जी-जान लड़ा देते हैं, जिनके कारण हम अनेक वाद-विवाद और लड़ाई-झगड़े करते हैं, उन्हें यथार्थ में हम इतना थोड़ा समझते हैं। ईश्वर हमें सुबुद्धि दे!

[सुकरात का प्रस्थान]



सभी ह्यः ह्यः !

पात्र—

१—गपोड़शंख

२—गडबडानन्द

३—सड़बड़ानन्द

४—पक

५—एक नौकर

प्रवेश पहला।

[**स्थल—एक कोठरी—**उसमे का सामान बिलकुल अव्यवस्थित रीति से पड़ा है। वही एक आरामकुर्सी भी रखी हुई है। उसपर एक महाशय आड़े-टेढ़े बैठे हुए है। आपका नाम है गपोड़शंखजी। इस समय आप प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि शेक्सपियर का रचा हुआ "मिडसमर नाइट्स ड्रीम" नामक नाटक पढ़ने मे मग्न हैं]

गपोड़शंखजी—ह्यः ह्यः! क्या मज़ा है कि वाह! यदि कहीं मुझे 'पक' के समान थोड़ा-सा मज़ा लूटने को मिल जाय, तो सचमुच बड़ा ही आनन्द होगा। (पुनः पढने लगता है। इतने मे बाहर से कोई 'गपोड़शंखजी' कहकर चिल्लाता है)

गपो०—कौन है ?

बाहर से—मै हूँ।

गपो०—तुम कौन ?

बाहर से—पहले किवाड़ तो खोलो, फिर बतलाता हूँ कि मै कौन हूँ ?

गपो०—क्या कहा ? अच्छा, मै पढ़ रहा हूँ और तुम और—(उठकर द्वार खोलता है) अरे यहाँ तो कोई नही है ! (अच्छी तरह से यहाँ-वहाँ देखता है) आवाज़ तो स्पष्ट सुनाई पड़ी; पर यह क्या ? यहाँ तो चिड़िया तक नहीं है। ख़ैर, होगा कोई। (किवाड़ बन्द कर लेता है) कदाचित् धन्ना खोनचेवाला होगा। बड़ा शैतान है। (कुर्सी पर बैठने ही वाला था कि इतने मे फिर कोई दरवाजे पर धक्के देता है) अरे !

बाहर से—ह्यः ह्यः ! गपोड़शखजी !

गपो०—क्या शैतानी मचाई है जी ? जान पड़ता है कि तुम्हे अब पिटना है ! (उठकर द्वार खोलता है और एक सपक्ष और विचित्र पोशाक पहने लडका भीतर प्रवेश करता है)

गपो०—(घबड़ाकर) आँ ! कौन ? (थरथर काँपने लगता है)

लड़का०—ह्यः ह्यः ! क्यो जनाब ? आप घबड़ाते क्यो है ? क्या आपने मुझे नही पहचाना कि मै कौन हूँ ?

गपो०—(अच्छी तरह से देख-भालकर) नहीं तो।

लड़का—नही पहचाना ? अभी तुम क्या पढ़ रहे थे ?

गपो०—शेक्सपियर का "मिड्समर नाइट्स ड्रीम"।

ल०—अच्छा, ठीक है। फिर अब पहिचानो कि मै कौन हूँ ?

गपो०—नही जनाब, अभी कुछ ठीक नहीं।

ल०—है ! भला तुम पढ़ते पढ़ते बीच मे हँसे क्यो ?

गपो०—इस नाटक में 'पक' का किया हुआ मज़ा मैंने पढ़ा।

लड़का०—इसलिए हँसे। और, कहा क्या था ?

गपो०—हाँ, कुछ कहा तो था। क्या भला ? (सिर खुजाते हुए)

[सभी ह्यः ह्यः !

हाँ, यह कहा था कि यदि मुझे पक के समान थोड़ा-सा भी मज़ा लूटने मिल जाय तो ..

लू०—अजी जनाब, इसीलिए तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ।

गणे०—अ, तो क्या तू ही 'पक' है ?

लू०—हाँ, जिसका आपने स्मरण किया वह 'पक' मैं ही हूँ। कहिए, अब मैं आपको कौनसा मज़ा दिखलाऊँ ?

गणे०—मज़ा ! मेरे मन मे मज़ा करने की बात समाई है, पर वह न जाने किस प्रकार पूरी हो सकती है ?

पक—इसकी आप क्यों चिन्ता करते हैं ? पहले तो आप यह बतलाइए कि आपको किस बात की आवश्यकता है ?

गणे०—देखो, यदि मैं इस समय एक जगह जा सकूँ तो आनन्द हो जाय ! (घड़ी देखकर) हाँ, वे लोग इस समय एकत्रित हो ही गये होंगे।

पक—केवल इतना ही ? अजी, यह काम अभी लीजिए। पर, पहिले यह तो बतला दीजिए कि आपको कहाँ जाना है ? फिर मैं (हाथ मे का फूल दिखाता हुआ) यह फूल तुम्हारे—

गणे०—क्या ? यह मेरी आँख में निचोड़ोगे ? नहीं बाबा !

पक—अजी, वह नहीं, (दूसरा फूल दिखाकर) यह फूल। वह दूसरा है।

गणे०—हाँ, तो कोई हर्ज नहीं, नहीं तो कुछ और का और हो

पक—वैसा नहीं जी ! मैं इस फूल को अपने और तुम्हारे सिर के आसपास फिरा दूँगा जिससे अपन दोनों अन्तर्धान हो जायँगे, याने हम किसी को भी न दिखेंगे।

गणे०—ऐसा क्या ? तो फिर ख़ूब मज़ा होगी।

पक—हाँ, पर इतनी बात ध्यान मे रखना चाहिए कि तुम कहीं भी कुछ न बोलना और न किसी दूसरे को अपना स्पर्श होने

देना। जो कुछ दिखेगा उसे चुपचाप देखते और सुनते रहना। बस!

गपो—ठीक है, कोई हर्ज नहीं, परन्तु अपन तो एक दूसरे को देख सकेंगे न?

पक—हाँ हाँ! अवश्य!

गपो०—अच्छा ठीक है; पर यह तो बताओ कि फिर किस प्रकार प्रकट होऊँगा?

पक—ये, इसमे क्या है? जिस समय हम यहाँ लौट आवेंगे कि बस, उस समय मै यही फूल तुम्हारे सिर के आसपास उल्टा फिरा दूँगा। जहाँ ऐसा किया कि बस, काम हो गया। तुम तो मेरा इशारा पाकर वहाँ से चुपचाप मेरे पीछे पीछे चले आना। और, यह देखो कि जो मजा मै तुम्हे बतला रहा हूँ वह केवल तुम्ही को भला?

गपो०—वा! वा! अति उत्तम।

पक—तो फिर चलो। देर क्यो करते हो? पहले कपड़े पहनो।

गपो०—यह देखिए पहनता ही हूँ। (गपोड़शंखजी कपड़े पहनकर तैयार होते हैं और हाथ मे एक लकड़ी लेते है) अच्छा तो, अब चलिए।

पक—यहाँ नही, घर के बाहर हम गुप्त होगे और फिर जहाँ जाना हो वहाँ चलेंगे।

गपो०—ठीक है, ऐसा ही सही।

(दोनों जाते है)

प्रवेश दूसरा।

[स्थलः—श्री गड़बड़ानन्द की अट्टालिका का एक कमरा]

(बीच मे एक फटा और मैला कालीन बिछा हुआ है। उसपर बैठे

ध्यान नहीं दिया। बात तो यह है कि मैंने वह पुस्तक अच्छी तरह पढ़ी कहाँ है ?

गड़०—ह.-हः-ह.-

सड़०—सचमुच, गपोड़शख के उस नाटक की अपेक्षा तुम्हारे पिता का वह काव्य कितना सुन्दर है। वाह ! क्या प्रतिभा !! भाषा का वह प्रवाह, वाह ! अनुपम ग्रन्थ है !

गड़०—परन्तु सड़बड़ानन्दजी ! उसे अपने नाटक का कितना घमंड है ?

सड़०—अजी, वह स्वय ही क्या कम घमडी है ?

गड़०—कुछ न पूछिए ! ह -ह. !

सड़०—मै कहता हूँ कि वह बेटा सदा अपने ही घमड मे मरा जाता है। छ्यः, बिल्कुल मूर्ख है। जहाँ देखो वहीं अपना नाटक लिये फिरता है और उसपर समालोचनाएँ इकट्ठी किया करता है। यही उसका काम है। आजकल तो इन समालोचनाओं का एक तमाशा ही हो गया है। जितनी अक्ल लेखकों मे रहती है उतनी ही समालोचको मे भी रहती है। छ्यः ! छ्यः ! छ्यः !

गड़०—खैर, जाने भी दीजिए। यह देखिए सड़बड़ानन्द, ऐसा ही हाल रहेगा ?

सड़०—वैसा नहीं। मै तो भाई, एक निर्भीक मनुष्य हूँ। मै उन लोगों मे से नहीं हूँ जो भीतर कुछ रखते है और बाहर कुछ उगलते है।

गड़०—अजी, परन्तु संसार को भी तो यह बात पसंद होनी चाहिए ? केवल हमारे और तुम्हारे स्वभाव की एकता से ही क्या संसार का कार्य चल सकता है ? कदापि नहीं।

सड़०—नहीं चल सकता, तो मरने दो। हमें संसार से कोई वास्ता नहीं।

[सभी ह्यः ! ह्यः !

गड़०—ह्यः ! ह्य ! भाई, तुम तो बड़े निर्भीक हो ! नहीं तो हमारे गपोड़शंखजी—

सड़०—हाँ हाँ, अजी उन्हे गपोड़शंख न कहिए ! नही तो—

गड़०—याने ?

सड़०—वाह ! क्या तुम्हे यह दिल्लगी नहीं मालूम ?

गड़०—नही तो।

सड़०—अजी, एक रोज़ मैने उनसे कहीं "गपोड़शंख" कहा। तो आप इकदम ऐसे क्रोधित हुए कि जिसका हिसाब नही, और बोले कि "देखो जी, मुझे इतने बड़े नाम से मत पुकारा करो। यह मुझे बिल्कुल पसद नहीं। मुझे तो अपने सादे "गपोड़" किम्वा "शंख" ये ही नाम अच्छे लगते है।"

गड़०—ह्यः ! ह्य ! बिल्कुल सिम्पलटन (simpleton) है।

सड़०—कुछ न पूछिए। उसी प्रकार उसे अपने लिखने-पढ़ने का भी बड़ा घमंड है। वह भी कितना ? कि जिसकी सीमा नहीं। जैसे कि ये ही बेटे बड़े लिखैया-पढ़ैया की दुम हो ! जिसके पास देखो उसीके पास अपनी प्रशंसा करता हुआ नाचता है। किसीसे कहता है कि मेरा यह देखो, मेरा वह देखो। कही कहता है कि मैने कालिदास पढ़ा है, शेक्सपियर पढ़ा है, शैले पढ़ा है। मै नाटक लिखता हूँ, उपन्यास लिखता हूँ।

गड़०—परन्तु क्यो जी, क्या वह कुछ समझता भी है ?

सड़०—सिर समझता है। हमने इतना सिर पीटा, इतना परिश्रम किया, लाखो पीपे तेल जलाया, इतने रुपये खराब किये, परन्तु हमे तो शेक्सपियर और शैले अभी तक कुछ भी समझ मे नहीं आये। और यह बेटा, कल का छोकरा, केवल एफ० ए० पास होकर ही कहता है कि मुझे यह समझता है, वह समझता है ! इस गधे को ...

गड़०—हः ! हः ! हः ! है ! गपोड़शंख भी एक चीज !

सड़०—चीज़ क्या है, एक पूरा उल्लू है।

(दोनों ज़ोर से हँसते है। इतने मे गपोडशंख अत्यन्त ही क्रोधित होता है, यहाँ तक कि उसे तनिक भी सुध नही रहती और वह सडबड़ानन्द की पीठ पर ख़ूब ज़ोर से, अदृश्य रीति से, अपनी लकडी मारता है)

सड़०—"अरे गड़बड़ानन्द ! अरे बाप रे" !

(चिल्लाता है। पक गपोड़शंख को इशारा करता है और वे दोनों एकदम उस कमरे से बाहर हो जाते हैं)

गड०—(शीघ्रता से सड़बड़ानन्द के पास जाकर) कहिए, क्या हो गया सड़बडानन्द ?

सड़०—दैया रे ! बाप रे ! आः ! कुछ नहीं, पीठ पर तो देखो, कितनी खाल निकल गई है।

(सड़बड़ानन्द तकिये से टिककर बैठ जाता है और उसका मित्र गड़बड़ानन्द उसकी पीठ पर हाथ धरता और पीछे का परदा उठता है)

प्रवेश तीसरा।

[स्थलः—शहर के पास की टेकड़ी]

(उसके आसपास कुछ धनाढ्य मनुष्यो के बँगले है। गड़बड़ानन्दजी और गपोडशंखजी सायंकाल के समय उस टेकड़ी पर घूमने के इरादे से आये है। इधर सड़बड़ानन्दजी और पक अदृश्य रूप मे टेकड़ी चढ़ रहे और धीरे धीरे बातचीत कर रहे है)

सड़०—(पक से) वे दोनो क्या मेरी ही चर्चा कर रहे है ?

पक०—मै क्या कहूँ ? अजी, मैंने जब पहिले यह सुना तभी तो आपको इस शीघ्रता से यहाँ ले आया हूँ। चलिए, अब जरा जल्दी चलिए।

[सभी हः हः !

सड़०—परन्तु देखो जी पक, ऐसी दिल्लगी कहीं गपोड़शंख या गड़बड़ानन्द को न दिखाना। समझे?

पक०—छिः छिः! यह कैसे हो सकता है? अजी जनाब; यह नहीं की जायगी। हं—अब बिल्कुल न बोलिए।

(धीरे से पास जाकर)

(दोनों, गड़बड़ानन्द और गपोड़शंख के इतने समीप जाकर बैठते हैं कि जहाँ से वे उन दोनों की बातचीत सुन सकें)

गपो०—सच पूछा जाय, तो मुझे इससे करना क्या है? परन्तु उन्होंने ही मेरे पास यह बात निकाली थी, इसलिए मैंने तुमसे कहा। मैं कभी न कहता, परन्तु तुम हो मेरे मित्र, इसलिए कह दिया।

गड़०—तुमने कह दिया सो बहुत ठीक किया। अच्छा ऐसा है? ठीक है।

गपो०—अच्छा मनुष्य होगा।

गड़०—अजी, कहाँ का अच्छा है? बिल्कुल पाजी है। यदि वह मेरे विषय में इस प्रकार की चर्चा करता है, तो उस सड़बड़ानन्द का कौन बड़ा अच्छा घराना है? क्या आप इस बात को नहीं जानते?

गपो०—नहीं, मुझे तो उस विषय में विशेष कुछ नहीं......

गड़०—अजी, वह सब हाल मुझसे पूँछिए। मैं आपको उसका सारा पाजीपन बतलाता हूँ। यह इतना धनाढ्य क्यों है? किसके ज़ोर पर वह घोड़े और बग्गियाँ चला रहा है? उस ट्रस्टी के मुकद्दमे में उसने कुछ कम पैसा नहीं खाया? पचास हज़ार रुपये हज़म कर गया।

गपो०—सचमुच?

गड़०—सचमुच नहीं, तो क्या मैं झूठ बोलता हूँ? हँ! हँ! क्या

आप यह सब उसीकी कमाई समझते है ? उसके बाप ने तो दो-चार विधवा स्त्रियो के गहने मार दिये। तभी तो बेटाजी सड़ सड़के मरे ! इनके बाप ने कुछ कम अत्याचार नही किये। मुझे सब मालूम है।

गपे०—हूँ—

गड़०—तुम मुझसे पूछो, मुझसे सब पूछो। काका ने तो प्रत्यक्ष शूद्र स्त्री से विवाह किया। उस अवसर पर क्या झगड़ा हुआ था कि वाह ! .खूब दिल्लगी हुई !

गपे०—ह.—बिल्कुल विचित्र !

गड़०—विचित्र याने कितनी विचित्र ? मुझे भी क्या मालूम ? वही बेटा स्वयं कह रहा था, बाप की यह दशा, काका की वह दशा। .खैर, खुद लड़के की दशा पूछी जाय तो बस, राम का ही नाम लो।

गपे०—यह तो मुझे भी मालूम है।

गड़०—सभी कुशल हैं ! बच्चे देखो तो बेटे को दर्जन भर है, परन्तु आचरण एक का भी ठीक नही। छोटे शाहज़ादे बंबई मे ही रहते है और वहाॅ .खूब चैनबाज़ी करके पैसा फूॅक रहे है।

गपे०—अजी, ऐसा ही होता है—

गड़०—बाप तो रोज़ मेरे पास आकर अपने बेटो के गुणो का वर्णन किया करता है। दूसरे बेटे के विषय में पूॅछना ही क्या है। पचास-साठ दफे एन्ट्रेस परीक्षा में बैठे; परन्तु हमेशा उनका नाम गज़ट मे सफेद स्याही से ही लिखा हुआ आया। उनका कार्य-क्रम क्या ही मजेदार है ! सुबह-शाम टेनिस खेलना और रात हुई कि नाटक देखना। बस, यही उनका धंधा है !

गपे०—ह: ! पट्ठा शेर है !!

गड़०—यह तो बेटो की कथा हुई। भला, बेटियाँ भली होती, तो

भी ठीक था। पर, उनका भी हाल विचित्र है। नज़ाकत की तो वे अवतार ही है। जहाँ देखो वहाँ फुटाने-जैसी फूटती रहती है। स्कूल को क्या जाती है—छाता क्या लगाती है—नये नये नखरे क्या बनाती है कुछ न पूछिए ! परसों उस छोटी ने तो बड़ी मज़ा की। प्रत्यक्ष सगा भाई मर गया था, माँ और बड़ी माँ सबके पास खड़ी खड़ी रो रही थीं, वहीं बाप खड़ा था और ये बेटी एक खिलौने के लिए रो रही थी !

गपो०—वाह ! बहुत उत्तम !!

गड़०—तुम कहीं उसके घंटों पूजा करने पर न भूल जाना। वह बेटा पूरा ढोंगी है—ऐसा नालायक और हरामज़ादा है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं। एक ओर तो पूजा करने बैठता है और दूसरी ओर खिड़की के पास खड़े होकर दुर्बीन से औरतों की सूरतें निरखा करता है। कहीं वह आती है तो कहीं यह आती है। कहीं किसी से घर में बैठ और किवाड़ों को बन्द कर घंटों बातचीत किया करता है। मेरे मन में ऐसा आता है कि बेटे के मुँह पर ख़ूब ज़ोर से एक थप्पड़ लगाऊँ।

(इतने में सड़बड़ानन्द क्रोध के मारे आगबबूला हो जाता है और आगे सरककर गडबडानन्द के मुँह पर तान के तमाचा मारता है)

गड़०—(गाल खुजाते खुजाते)—आ-हा-हा-हा-दाढ़ में से इकदम ऐसी ठनक निकली है कि—अरे—हा-हा !

(सड़बड़ानन्द और पक चले जाते हैं)

गपो०—इतने ज़ोर की ठनक इकदम कैसे निकली ?

गड़०—अजी-हाँ—जब निकलती है, तब कभी इसी तरह निकलती है ! हा ! आ हा-हा, चलो अब रात हो चली। आ-हा-हा—

(गड़बड़ानन्द गाल खुजाते खुजाते गपोड़शंख को साथ लिए टेकड़ी के नीचे उतरने लगता है)

[परदा गिरता है]

प्रवेश चौथा।

(स्थलः—फ़व्वारे के पास एक ताँगा खड़ा है। उसके सामने सड़बड़ानन्द और गपोड़शंख बैठे बैठे गप्पे हाँक रहे हैं। उसके पास ही गडबड़ानन्द और एक उनकी बातचीत सुनते हुए खड़े है। दूसरे लोग आते-जाते है)

सड़०—यदि गड़बड़ानन्द इतनी चैनबाज़ी मे रहकर गुलछर्रे उड़ाया करता है, तो फिर संसार मे इसका काम किस प्रकार चलता है ?

गपो०—बतलाया न ? इसकी टोपी उसके सिर और उसकी पगड़ी इसके सिर रखना, यही उसका धंधा है।

सड़०—ऐसा ?

गपो०—और नहीं तो क्या ? यदि किसीको यह सीखना हो कि बिना कुछ कमाये किस प्रकार गुलछर्रे उड़ाना, तो उसको हमारे गड़बड़ानन्द का आदर्श सन्मुख रखना चाहिए। ज़रा हज़रत के यहाँ जाकर देखो। कुर्सियाँ, टेबले और पुस्तको के ढेर के ढेर पड़े है। ऐसा रोब है कि जैसे लार्ड फ़ाकलेंड हों।

सड़०—ये: ! वर्णन तो कमाल का किया।

गपो०—भला इतनी वस्तुएँ मोल तो ली है; पर यदि उनके दाम दिये हो, तो सौगन्ध है।

सड़०—याने ?

गपो०—याने क्या ? यह सारा क़र्ज़ का बाज़ार है। यहाँ से पाँच रुपये ले, वहाँ से दस रुपये ले, बस यही किया करता है। उस बेवक़ूफ़ को अपनी इज्ज़त का ज़रा भी ख़्याल नही है। भला, इतना हो करके भी फिर आपको व्यवहार-ज्ञान का बड़ा घमंड है। नालायक है, पाजी है।

[सभी ह्यः ह्यः !

सड़०—ह्य. ह्यः ह्यः !

गपो०—वह नालायक़ अपने को बड़ा बुद्धिमान् समझता है। परन्तु उसके मुँह पर सदा कुत्ता बँधा रहता है। कहीं इससे झगड़ा, कहीं उससे झगड़ा। अभी हाल मे तो वह एक भंगी से ही लड़ पड़ा था।

सड़०—भंगी से ?

गपो०—हाँ भंगी से, मेहतर से ! क्या तुम्हे वह हाल नहीं मालूम ? एक दिन यह पायखाना गया था। उसी समय मेहतर आया और नीचे की बाल्टी निकाल ली। बस, फिर क्या पूँछना था ? आप पायजामे के बाहर हो गये और बाहर आकर उससे ही झगड़ना आरम्भ कर दिया, यहाँ तक कि दोनो में मारपीट होने लगी।

सड़०—ह्य. ह्यः ह्यः !

गपोड़०—फिर क्या ? उस समय आदमियों की ख़ूब भीड़ हो गई।

सड़०—ग़लीज तो इतना है कि कुछ न पूँछो। तम्बाखू से अपना मुँह भर लेता है और जहाँ देखो वहाँ पच-पच थूकता फिरता है। यदि नाक पोंछना हो, तो पाकेट मे रूमाल रखकर भी अपनी धोती से पोछ लेता है।

सड़०—(पुकारता है) ऐ ! (गपोड़शंख ताँगे के पायदान पर बायाँ पैर रखकर खड़ा हो जाता है। इतने मे सड़बड़ानन्द का नौकर बाज़ार से भाजी लेकर आता है और सब भाजी ताँगे मे रखकर एक ओर खड़ा हो जाता है)

सड़०—(नौकर से) सब तरकारी ले आया ? ठीक है। चलो, अब घर चलें।

गपो०—(सड़बड़ानन्द से) मुझे तो उसकी नकटी नाक को देख इतना गुस्सा बढ़ता है कि कुछ न पूँछो।

सड़०—ह्य' ह्य ह्य: !
गपो०—वह बेटा ठिंगना है। इसलिए जब चलता है, तो बड़ी दिल्लगी आती है। जब वह सपाटे से चलता है, तो ऐसा मालूम होता है मानो कोई छोटा-सा कुत्ता दौड़ रहा हो। ह्य. ह्य. !

(इतने में चिढा हुआ गड़बडानन्द आगे आकर गपोड़शंख को एक तमाचा मारता है। गपोड़शंख जमीन पर औंधा गिर पड़ता है। गड़बड़ानन्द और एक अदृश्य हो जाते है। गपोड़शंख के नौकर इत्यादि गपोड़शंख को उठाते है। बहुत से लोग तमाशा देखने को जमा हो जाते है।)

सड़०—क्यों गपोड़शंखजी, क्या हो गया ?
गपो०—कुछ नहीं, ठंड के कारण जरा पैर को झटका पहुँच गया।
सड़०—बैठो, गाड़ी में बैठो, और चलो, घर चलें।

(दोनो जाते है)

(पटाक्षेप)

प्रवेश पाँचवाँ।

[स्थलः—सड़बड़ानन्द के मकान का एक कमरा]

(सामने पुस्तकों से भरी हुई कुछ आलमारियाँ रक्खी हुई है। बीच मे एक गोलमेज है और उसके आसपास कुर्सियाँ रक्खी है। सड़बड़ानन्द, गड़बड़ानन्द और गपोड़शंख कुर्सियो पर बैठे है। टेबल पर प्याले और रकाबियाँ रक्खी है। सड़बड़ानन्द तीनो प्याले मे चाय डाल रहे हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने प्याले मे की चाय अपनी डिश मे डालकर पीने लगता है। अदृश्य रूप मे एक भी समीप ही खड़ा है)

गड़०—(बिस्कुटों का डब्बा गड़बड़ानन्द के साम्हने रखकर) लीजिए, लीजिए, बिस्कुट लीजिए।

[सभी ह्यः ह्यः !

गड़० (एक-दो बिस्कुट लेकर) भैया, आज की चाय तो बड़ी फ़र्स्ट-क्लास बनी है। क्यो गपोड़शखजी, ठीक है ना ?

गपो०—अजी आज की ही क्या, सड़बड़ानन्द के यहाॅ की चाय सदा ही एक्सलेंट (excellent) रहती है। यहाॅ के समान चाय इस गाॅव भर मे और कही भी नही मिलती।

गड़०—केवल चाय ही क्यो, सड़बडानन्द के यहाॅ की सभी चीज़े अच्छी रहती है।

गपोड़०—इसमे क्या शक है ?

गड़०—ह्यः ह्यः ह्यः ! हम लोग तो मित्र-त्रय है ना ? सड़बड़ानन्द के बिना गड़बड़ानन्द को चैन नही पड़ती और गड़बड़ानन्द के बिना गपोड़शंख को क्षण भर भी अच्छा नहीं लगता। हम लोग सचमुच बिलकुल त्रिमूर्ति दत्तात्रेय ही है।

सड़०—ह्य. ह्यः ! ऐसा तो चला ही है।

गड़०—जहाॅ जाते है वहाॅ तीनो एक साथ ही जाते है। कल नाटक देखने को भी हम तीनो साथ ही गये थे।

गपो०—सचमुच कल नाटक बहुत ही अच्छा हुआ था। मुझे तो वह बहुत पसन्द आया।

सड़०—मुझे भी पसन्द आया। उसमे उन लोगो की अच्छी दिल्लगी उड़ाई थी जो मुॅह पर स्तुति और पीठ-पीछे निन्दा किया करते है। सचमुच ऐसे लोग बड़े बेईमान होते है।

गड़०—यदि देखा जाय, तो संसार मे ऐसे ही दुष्ट जीवो की संख्या अधिक है। वे बेटे मुॅह पर बड़ी प्रशंसा करेंगे और पीठ-पीछे निन्दा करने लगेंगे। ह्यः ह्य. !

गपो०—अजी यह तो चला ही करेगा। पीठ-पीछे भला कौन गालियाॅ नही देता ? परन्तु ज्यो ही अपना आमना-सामना हुआ कि फिर सब एक ही। ह्यः ह्यः !

सड़०—ह्यः ह्यः ह्य ! बहुत ही उत्तम कविराज ! अत्युत्तम, हियर हियर !

गपो०—मैं तो समझता हूँ कि ऐसे लोग को डंडे मार मारकर ही ठीक करना चाहिए। ह्यः ह्यः ह्यः !

सड़०—नहीं जी, मैं तो यह समझता हूँ कि उन लोगों को एक अच्छा करारा चाँटा रसीद करना चाहिए। ह्यः ह्यः ह्यः !

गड़०—नहीं नहीं, उन लोगों को इस प्रकार लत्ता प्रहार करना चाहिए कि बेटे औंधे ही गिरकर ज़मीन चाटने लगें। ह्यः ह्यः ह्यः !

[सभी लोग "कैसी दिल्लगी की" इस भावना से एक दूसरे की ओर देखकर जोर जोर से हँसते हैं। त्यों ही अदृश्य रूप में एक भी कहता है कि "कैसी दिल्लगी की ! कैसी मज़ा दिखलाई।" तीनों मित्र आश्चर्य-चकित हो एक दूसरे की ओर देखने लगते हैं]

[पर्दा गिरता है]



शशि और शंख

पात्र—

शशि और शंख नामक दो ब्रह्मचारी। शशि का शरीर दुबला-पतला, और शंख कसरती और मोटा-ताज़ा है। पास ही कुछ घड़े पड़े है।



स्थान—ऋषि का आश्रम।

एक—लो यह घड़ा, तुम भरो पानी। क्या मुझे खरीदा हुआ दास समझ रक्खा है? चले साहब, आप तो सीधे सीधे कामो में मस्त! भूखो को भोजन दे आये, भूले को मार्ग बता आये और मेरे माथे यह घड़ा मार रक्खा है, अरे हाँ!

दूसरा—शंख दादा, क्रुद्ध क्यो होते हो? मै ये सब घड़े भर लूँगा, पर यह तो बताओ कि तुम बैठे बैठे कौन सी लंका जीत लोगे?

शङ्ख—ए, हम झख मारेंगे, तुम्हें क्या?

दूसरा—दादा, झख* न मारना। उन बेचारे निरपराधी जीवों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? अहिंसा के विषय में गुरुजी की शिक्षा भूल गये मालूम होते हो।

---

* झख = मछली।

शङ्ख—वाहरे शशि, धन्य तुम्हारी बुद्धि ! झख भी कोई जानवर होता है ? हॅ हॅ—तब तो ऑख मारने मे, पलक मारने मे, हाथ मारने मे, मन मारने मे हिसा होने लगी।

शशि—आपको मालूम नही, झख कहते है मछली को—ऐसा अमरकोष मे लिखा है।

शङ्ख—बस महाराज, मारो उस अमर कोष को। मै विश्वास दिलाता हूॅ आपको, इसमे कुछ हिंसा नही होगी। राम राम, जबसे "यस्य ज्ञान दयासिंधो" प्रारम्भ किया है, नाक में दम आ गया है। टीका-टिप्पणियो मे "दित्यमरः" लिखते लिखते लेखनी घिस गई। वेचारे विद्यार्थि-जीवन के लिए यही अमर काफी था, परंतु कही से पाणिनी महाराज निकल पड़े। रटो "सुड़-नपुन्सकस्य, स्त्रीपुन्वच्च, अंसभोगात् लुढ़कन्त, अन्ध भविता-भ्यांच, शफलुवच्च, मुच्चि, रिच्च विच्च सिच्च खिच्च गिच्च पिच्च अद् खिद् छिद् तुद्—धत्तेरे की" मेरा तो दम भर गया।

शशि—दादा, थोड़ा विश्राम लो।

शङ्ख—खूब विश्राम लेता हूॅ। भरो पानी, मुझे अपने दिल की जलन बुझाने दो।

शशि—दादा, परिश्रम किया करो, तो यह जलन उत्पन्न ही न हो। सतताभ्यास से मूर्ख भी पंडित हो जाते है।

शंख—परिश्रम तो मै खूब करता हूॅ और उसका यह परिणाम है कि अभी कहूँ कि भरो पानी, तो सतताभ्यासी महाराज, मेरे घूॅसे को देखकर चुपके से पानी भरना ही पड़े। घूॅसे के आगे 'सतताभ्यासी' की भी नही चलती। (गाता है)

गायन।

है घूँसा देखो दुनियाॅ मे बलवान।
इसको मारा, उसको पीटा, तुमको जा धमकाया।

पंचांगुलि का ऐक्य साधकर, सब कुछ बस मे लाया है ॥ है० ॥
इसके आगे सब ही झुकते, बड़े बड़े अभिमानी ।
राजा झुकते, रैयत झुकती, मूर्ख और विज्ञानी ॥ है० ॥
है स्वतन्त्रता पराधीनता दोनो इसकी माया ।
इस घूँसे मे सब पोथो का सारा तत्त्व समाया ॥ है० ॥

(यो कहकर शशि की पुस्तके छीनकर फेक देता है)

शशि—(पुस्तके उठाते हुए, क्रुद्ध होकर) तुम निरे शङ्ख हो ।

(झाड़-पोछकर पुस्तको को प्रणाम करता है)

शंख—(हाथ उठाकर आशीर्वाद देता है)—

वत्स जियो कुछ वर्ष, हर्ष को दूर भगाओ ।
बनो दया के पात्र, गात्र को क्षीण बनाओ ॥
सदा बढ़े मन्दाग्नि, आँख की ज्योति घटाओ ।
बनकर पुस्तक-कीट, जगत मे ख्याति बढ़ाओ ॥
मेरा आशीर्वाद यह, शिर घूमे पर तुम नही ।
रोग-शोक-चिंता-भवन हो जाओ तुम शीघ्र ही ॥

शशि—वह क्या ?

शंख—पुस्तको की ओर से आशीर्वाद ।

शशि—पुस्तको का आशीर्वाद तो पाठशाला मे प्रकट होता है । वहाँ शङ्खजी, आपको बेत और चपेट का आशीर्वाद मिलता है—उसे भूल गये ।

शङ्ख—मेरा तो भूलना स्वभाव है ही, परन्तु तुम्हे सब याद रहता है । व्यायाम-माला मे पुस्तके नही आती । याद होगा उस दिन का वह दाँव, जब गिरे थे मुँह के बल ।

शशि—और कक्षा में संस्कृत, पाली, पश्तो इत्यादि के समय बैठते हो मुँह लेकर ! (मुँह बनाता है)

शङ्ख—रहने दीजिए महाराज अपनी संस्कृत, पाली और पश्तो को ।

हमे कही गुप्तचर नहीं वनना है और न किसीकी चुगली ही खानी है।

(ऋषि का प्रवेश। उन्हे आया जान)

तुम तो हमे खाये जाते हो जैसे, रहने दो, तुम्हे तो लड़ने की आदत पड़ गई है।

शशि—(ऋषि को देखकर) देव प्रणाम।

शङ्ख—(ऋषि को लम्बी आवाज मे) महाराज प्रणाम।

ऋषि—वत्स, दोनो कर्मवीर बनो। (शङ्ख से) शंख, यह क्या झगड़ा है ?

शङ्ख—महाराज, क्या कहूँ ? ये कंधे देखिये (कन्धे दिखाता है) प्रतिदिन प्रातःकाल घड़े उठाते उठाते दुखने लगे हैं। आज मैंने शशिभूषणजी से कहा—भैया, दो-एक घड़े भरने मे कुछ सहायता कर दो, तो कहने लगे, भैंसे का सा शरीर लिये हो, घड़े भी नही उठते ?

शशि—गुरुजी, स्नान का समय हो गया है, शंख दादा की बातें तो होती ही रहेगी।

गालव—वत्स, चलो, पुण्यसलिला भगवती भागीरथी मे स्नान कर विश्व की विजयिनी शक्तियो का आवाहन करे।

शङ्ख—पर, महाराज भगवती बड़ी ठंढी है, हिम की महतारी रखी है। रोज़ रोज़ सबेरे नहाते जी ऊब उठता है। (स्वगत) न जाने इससे कब पिण्ड छूटता है।

शशि—हिम की महतारी नहीं, पुत्री है।

गालव—(चलते हुए) क्यो शशि ?

शशि—ना महाराज, उषःकाल की शान्तता और मधुर वायु हृदय मे बिजली दौड़ाती है।

शंख—(स्वगत) शायद इसीलिए थरथर काँपते और दाँत कटकटाते हो।

शशि—भगवती भागीरथी मे स्नान करने के पश्चात् कितना आनन्द आता है ?

शंख—(स्वगत) यहाँ तो प्राण जाता है।

शशि—उनकी तरंग-मयी गोद मे तैरते हुए बड़ा ही भला मालूम होता है। जब तरंगें शरीर से आकर लगती है, तब दीखता है मानो माता थपकियाँ दे रही है।

शंख—थपकियाँ ? अरे हंटर मार रही है, हटर ! मै तो मरा जाता हूँ। थपकियाँ ! देखना कही माता की गोद मे सो न जाना।

शशि—भारत माँ के सपूतो के हृदयो की धधक, यदि भगवती गंगा न होती तो कौन बुझाता ?

शंख—पसीने और आँसुओ की धारा-माता।

[तीनों का जाना]

अधूरी विद्या

पात्रः—

१—रामाधीन—५० वर्ष का वृद्ध

२—रामसेवक—रामाधीन का अंग्रेजी पढा लड़का

३—रामप्रसाद—रामसेवक का बड़ा भाई जो अंग्रेज़ी नहीं जानता है

[स्थानः—बैठक का कमरा]

(रामाधीन अपने दोनो पुत्रो के साथ बैठे है)

रामाधीन—(रामसेवक से) क्यो बेटा, अच्छी तरह से रहे ?

रामसेवक—जी हाँ, आपकी कृपा से अच्छी तरह रहा। कोई भी कष्ट नही हुआ।

रामाधीन—छुट्टी कब हुई ?

रामसे०—यो तो छुट्टी परसो ही से शुरू हो गई थी, परन्तु मैं वहाॅ हाकी-मैच के लिए ठहर गया था। अंग्रेज़ो से मैच हुआ था। उन्हे ख़ूब ही .

रामप्रसाद—(रामसेवक से) क्यो लल्लू, अंग्रेज़ो के साथ क्या कहा ?

रामसे०—अजी भाई साहब, आपको तो कुछ भी मालूम नहीं। आपके समय मे तो यह कुछ था ही नही। यह एक तरह का

खेल होता है। अंग्रेज़ो की टीम को चार गोल से हराया। मै तो क्या ही अच्छा खेला ? सब लोग मेरे लिए चियर्स पर चियर्स देते रहे।

रामाधीन—पढ़ने-लिखने का भी कुछ ध्यान है कि केवल खेल-कूद में ही रहते हो ? तुम छमाही इम्तिहान मे तो पास हुए ही नही। सालाना इम्तिहान भी तो अब होनेवाला ही होगा। तुम्हारे साथ इन्टरेस मे कितने लड़के है ?

रामसे०—मेरी क्लास मे ३२ लड़के है। फ़र्स्ट टीम मे मुझे मिलाकर कुल ५ ही है। अब तो मै पास हो ही जाऊँगा। छमाही मे तो मेरा दिमाग़ न जाने क्यो चक्कर खाने लगा। अंग्रेज़ी मे ही सिर्फ फेल हुआ था, सो तो मै अब शेक्सपियर के ड्रामाज़ पढ़ता हूँ। लोग तो उनकी बड़ी तारीफ करते है, परन्तु अभी वे मेरी समझ मे नहीं आते। उनके पढ़ने से अपने दर्जे के अंग्रेज़ी के पर्चे मे तो पास हो ही जाऊँगा।

रामाधीन—शेक्सपियर वेक्सपियर तो मै कुछ समझता नही। अपने दर्जे की किताबे क्यो नही पढ़ते ? बिना उनके पढ़े इम्तिहान मे क्या कर सकोगे ? इसीसे तो तुम फेल होते हो।

रामसे०—सो तो मै आठ-दस दिन मे कर लूँगा। अभी तो जनरल नोलेज (General knowledge) बढ़ाता हूँ।

रामाधीन—क्या कहा ? जनरा नाला बढ़ाता हूँ ? तुम्हे नाले-नहर से क्या काम ?

रामसे०—जी नहीं, यह तो अंग्रेज़ी का शब्द है। इसका अर्थ होता है, ऊपरी योग्यता।

रामाधीन—अबे, अपनी भीतरी योग्यता तो पहले ठीक कर ले। ख़ैर, चाहे जो कर। मेरी तो यही शिक्षा है कि मन लगाकर काम

करो और तुम्हे सदैव शंकरजी प्रसन्न रक्खे। रास्ते मे कुछ तकलीफ तो नहीं हुई ?

रामसे०—क्या ही मजा आया। हम सब २५ लड़के आज साथ ही ट्रेन से आ रहे थे। नाचते-गाते चले आये। गाड़ी के मुसाफ़िरो को तो ख़ूब ही रुलाया। बेचारो को गाड़ी छोड़कर भागना पडा। एक बुड्ढे साहब की डाढ़ी मे शायद ही कोई बाल बाक़ी बचा हो। वह साहब जब इधर देखते थे तो एक लडका उधर से उनके बाल खींचता था और जब वह उधर देखते थे तो एक लडका इधर से। आहा! टोपी तो उनकी पहले ही खेतो की सैर करने लगी थी। वह कैसा खीझा! पर क्या हो सकता था ?

रामाधीन—वाह! वाह! बड़ो की यह इज्ज़त ? तुमने बहुत अनुचित किया।

रामसे०—मैंने अकेले क्या किया ? बुरा भी क्या था ? दुनियाँ मे यो तो लाखो बुड्ढे है। किसका किसका अदब किया जाय ? शाहजहाँ ने जहाँगीर के साथ क्या किया ? औरंगज़ेब ने शाहजहाँ के साथ कैसा वर्ताव किया ? सरवाइवल आव दि फ़िटेस्ट (Survival of the fittest) का ही सिद्धान्त सच्चा है। जिसकी लाठी उसकी भैस। पुरानी बाते और रंग-ढंग तो मुझे बिल्कुल पोचे दिखते है। अब उनका ज़माना नहीं रहा। मै तो अपने नौलेज (knowledge) को रोज़ रोज़ काम मे लाना चाहता हूँ।

रामाधीन—सो तो तुम्हारी भूल है। दया और धर्म ही सच्ची शिक्षा है। तुम्हारी सूखी विद्या एक न एक दिन तुम्हे धोखा देगी। तुम बात नहीं मानते हो। पढ़-लिखकर अन्धे हो गये हो।

यदि किसीसे काम पड़ गया, तो तुम्हारा और तुम्हारे साथियो का सारा साहस न जाने कहाँ भाग जायगा।

रामसे०—(रा० प्र० से) भाई साहब, और भी बड़े मज़े रहे। कल स्टेशन पर इक्के-वाले ने चीं-चपड़ की। बस, उसे हम लोगों ने ऐसा ठोका कि उसे अपने लड़कपन की याद आई होगी।

रा० प्र०—मारना तो ठीक न था। पुलिस-वालो ने क्या नही देखा ?

रामसे०—बस, आप भी वैसी ही बातें करते है। सेल्फ डिफेंस (self-defence) मे हमने ऐसा किया—यह कहते क्या देर लगती थी। अब तो खाने को बड़ी देर हुई। भूख के मारे पेट में बिल्लियाँ कूद रही हैं। किताब मे पढ़ा है कि खाने-पीने मे रेगुलर (regular) और पङ्क्चुअल (punctual) होना चाहिए। घर में इसीसे तो मुझे बहुत रहना पसन्द नहीं।

रा० प्र०—अच्छा ख़ैर। यह लो, दो सेब रक्खे है। तब तक इन्हीं को खाओ। भोजन भी तय्यार होता ही है।

रामसे०—अकेला तो नही खाने का। आपको भी खाना पड़ेगा। पिताजी, आप भी खाइए।

रामाधीन—नहीं, तुम्हीं लोग खा लो। मुझे तो भूख नहीं है। है भी तो दो ही। तुम्हीं लोग एक एक ले लो।

रामसे०—ऐसा तो नहीं। मै इन्हे तीन साबित कर सकता हूँ। देखिए यह एक हुआ, और यह दो। दो और एक तीन होते है। इसलिए ये सब तीन हैं। एक सेब आप भी खा सकते है।

रामाधीन—अच्छा बेटा, तुम्हारा कहना निश्चय ही ठीक है। यह पहला मैं लिये लेता हूँ। दूसरा यह, रामप्रसाद, तुम ले लो। तीसरा रामसेवक! तुम अपनी किताबी विद्या को खिला दो।

[सब हँसते है]

(परदा गिरता है)

घर सा सुख कहीं नहीं है

पात्र—

१—नन्दकिशोर—रायपुर के एक रईस

२—ब्रजकिशोर—नन्दकिशोर के छोटे पुत्र

३—भूपकिशोर—नन्दकिशोर के बड़े पुत्र

४—शंकरप्रसाद—ब्रजकिशोर के मित्र

५—बाबू साहब—नन्दकिशोर के मित्र

६—रामू—नौकर

७—चिट्ठीरसा

८—छोटा बालक

प्रथम दृश्य ।

[स्थान—ब्रजकिशोर का अध्ययनागार]

(ब्रजकिशोर क्रोध से कुछ बड़बड़ाते हुए कमरे मे प्रवेश करते है, और टेबल के पास रखी हुई कुर्सी पर हाथ टेककर खड़े हो जाते है)

ब्रजकिशोर—जब देखो तब देरी से रोटी बनती है। अक्सर भूखे ही स्कूल को जाना पड़ता है। कैसी निठुर स्त्रियाँ है ! घर का लड़का भूखा चला जाय और इनके कान पर जूँ तक न रेंगे ! धन्य है री स्त्रियो ! तुम्हे कुलीन वंश में जन्म ही क्यों लेना था ? पर भगवान् ! तुम तो सब जानते थे न ? फिर क्यों

ऐसी मट्ठर स्त्रियो को हमारे घर भेजा ? भेजा तो भेजा। तुम पर वश ही क्या है ? परन्तु दादा को भी तो इसका कुछ प्रबन्ध करना चाहिए था। धन्य हमारे भाग्य ! वे भी तो कुछ नहीं—कुछ ही नही समझो—कहते। बासी रोटी खाकर जाओ तो क्लास मे बैठे बैठे आलस्य आता है। भूखे जाओ तो पढ़ने मे जी नहीं लगता। लगे कहाँ से, पेट में तो बिल्ली कूदती रहती है। थोड़ी देरी से जावे सो भी नही बनता, मास्टर साहब एंग्री (angry) होते है। अब क्या किया जाय ? फेल हो जाते है तो दादा लाल-पीली आँखें दिखाते है। माँ भी क्रोधित होती हैं। भाई-बन्धु भी आकर जले पर नमक छिड़कते है। "जब ही देखो तब ही भैया गुस्सा होते रहते है। विद्या में चित्त थोड़े ही रहता है। थाली परसने में थोड़ी ही देरी हो गई कि बस चौका से ही लौट आये। रोटी बनने मे केवल पाँच मिनटो की देरी हुई तो उसीपर तड़प उठे। ऐसा कहीं पढ़ना होता है।" अरे बाबा ! तो कैसा होता है पढ़ना ? तड़पूँ न तो क्या करूँ ? चारो ओर तो मेरा मरना है। चलो जी, ऐसा तो लोग कहते ही रहते है। मुझे तो भूखे ही जाना अच्छा है। लगावेंगे मन को, कैसे न लगेगा ? अवश्य लगेगा। जब मन ही नही लगेगा, तो स्कूल के चपरासी को दो पैसे देकर बाज़ार से ढाई आने की मिठाई मँगाकर बगीचे में खा लूँगा ? बस, यही ठीक है। चलो तो अब जायँ।

(नौकर को बुलाते है)

"रामू ! ओ रामू !"

(नेपथ्य मे "आया बाबू, आया")

[रामू का प्रवेश]

ब्रजकिशोर—हम स्कूल जाते है। झटपट मोजे-जूते पहिनाओ।
रामू—बाबू, रोटी खा ली ?
ब्रज०—(क्रोध से) रोटी खाई हो या न खाई हो, तुमको इससे क्या मतलब ?
रामू०—आप भूखे जायँगे तो मलकिन का जी कितना जलेगा।
ब्रज०—(क्रोध से) जलने दो, हम क्या करे ? उनको इस बात की चिन्ता ही नहीं। होती तो क्यो रोटी जल्द न बनती ?
रामू०—पर अभी पौने दस तो बजे ही है बाबू ! पॉच मिनट ठहर...
ब्रज०—(बात काटकर) बेवकूफ़ ! नालायक ! सुअर का बच्चा ! पाजी !

(कुरसी पर बैठकर ब्रजकिशोर स्वयं मोजे पहिनना चाहते है। रामू झट उनके हाथ से मोजे लेकर चुपचाप उन्हे पहिनाता है। कुल वेशभूषा से सज्जित होकर ब्रजकिशोर टेबिल पर से ४-५ पुस्तके उठाकर स्कूल के लिए प्रस्थान करते है)

द्वितीय दृश्य।

(स्थानः—अध्ययनागार)

(एक ओर टेबिल रखी हुई है। उसपर एक स्वच्छ हरा वस्त्र बिछा है और बहुत-सी पुस्तकें दो-तीन श्रेणियो में रखी हैं। दूसरी ओर एक पलॅग बिछा है। साम्हने एक अति प्रकाशमान् टेबिल-लेम्प जल रहा है। बाबू ब्रजकिशोर आते और कुरसी पर बैठकर पढ़ना आरम्भ करते है)

"ग्यारहवी कहानी—नामकरण—छट्ठी की रीति हो जाने पर जन्म से बारहवे दिन नामकरण के लिए बरही की खुशी मनाई गई। राजा, बाबू, साहु, सेठ, गरीब, अमीर इत्यादि सभी प्रजा आई। राजा के आँगन मे इतनी भीड़ हुई कि तिल रखने को जगह न मिलती थी। लोग खुशी से भरे उमड़े चले आते थे। नारियॉ

थारों में मंगल का सामान लिये गाती-बजाती और आनन्द में माती आभूषणों से लदी रनिवास मे चली जाती थीं। लगन आने पर वशिष्ठ ने लड़के का नाम राम रक्खा। शास्त्र मे लिखा हुआ है कि तीन पुरुष के भीतर जो नाम हो उन्ही मे से नाम रखना चाहिए। पर वशिष्ठ ने रघु, दिलीप और अज इन सबको छोड़कर राम ही नाम रक्खा। राम को गोदी में लेकर वशिष्ठ ने नह, अँगूठा, तर्जनी, बिचली, छोटी कनगुरिया, तरवा, पैर की पीठ, एड़ी, घुट्ठी, मुद्धा, पिंडली, टाँग, नड़हर (नली), चक्की, घुटना, जाँघ, पट्टे, चूतर, पेड़ू, कमर, कुल्हा, कोखा, पेट, पीठ, रीड़, नाभी (बोड़री), गाल, गर्दन, गलफड़ा, ओठ, नाक, नाक के पूरे, बिनास, बाँसा, नाक, ललरी, भौंह, बरौनी, पलक, आँख, आँख के डोरे, कोआ, पुतली, कोर, कँधा, कनपटी, माथा, चाँदी, तालू, सिर, खोपड़ी, बाल, रोएँ, काँख, बाँह, केहुनी, हाथ, कलाई, हथेली, हाथ की पीठ, अँगुलियों के पोर, गवाई, रेखा, यव, सुतही, शंख, चक्र, कमल, मछली, चमड़े, जोड़, त्रिशूल, गाँठ, कलेजा, जीभ, घटी इत्यादि सभी को बड़े ध्यान से देखकर, सभी मे सुलक्षण पाया और तब बच्चे को सब गुण का घर जानकर राम ऐसा नाम रक्खा।"—भाई! द्विवेदीजी भी बड़े विचित्र आदमी है। इन नामो को पढ़ते पढ़ते जी घबड़ा जाता है (अपने पीछे कुछ आहट पाकर) है! बाबू शंकरप्रसाद! आपको यहाँ आये कितना समय हुआ? बैठिए!

शं०—(पास की कुर्सी पर बैठते हुए) अभी तो आया हूँ। कोई तीन मिनट हुए होंगे। आप

व्रज०—वाह! और मुझे मालूम भी न पड़ा। खैर, भला आप आये तो चुपचाप कुर्सी के पीछे क्यों खड़े हो गये?

शं०—(मुस्कराकर) क्यों, कोई अपराध हो गया? ऐसा हो, तो क्षमा चाहता हूँ।

व्रज०—(उठकर और शंकरप्रसाद का हाथ अपने हाथ में लेकर, हँसते हुए) उसमे अपराध काहे का जो चले क्षमा माँगने ?

शं०—(मुस्कराकर) थोड़े थोड़े मे तो आपका अपराध होता है। अम्मा तक को आपसे क्षमा माँगनी पड़ती है, फिर मै किस गणना मे हूँ ?

व्रज०—भैया, आप ऐसा क्यो कहते है ? भला आपसे मै कब क्रोधित होता हूँ ? प्रिय मित्र ! आपने तो मुझे कभी अप्रसन्न होने का अवसर ही नही दिया।

शं०—अच्छा, अब उन बातो को जाने दीजिए। यह बताइए जब मै यहाँ आया था तो आप कौन सी पुस्तक पढ़ रहे थे ?

व्रज०—अरे ! कुछ न पूँछो "रामकहानी" पढ़ रहा था।

शं०—उसीके सम्बन्ध मे आप कह रहे थे "पढ़ते पढ़ते जी घबड़ा जाता है" ?

व्रज०—जी हाँ, उसीके सम्बन्ध मे।

शं०—सो क्यों ?

व्रज०—देखिए न, इस पुस्तक मे कोई कोई वाक्य कितने लम्बे लिखे गये है ? नामो की कैसी बौछाड़ दी गई है ? इन्हे पढ़ते पढ़ते जी न ऊबे, तो क्या हो ?

शं०—पर मित्र ! ऐसा बहुत कम हुआ है और यह पुस्तक का दोष न होकर गुण—अलंकार—है। उसकी भाषा तो आप देखिए, कितनी सरल है। संस्कृत या फ़ारसी के क्लिष्ट शब्द उसमे प्रायः बिल्कुल ही नही आने पाये हैं।

व्रज०—तभी तो वह एन्ट्रेंस परीक्षा के लिए रक्खी गई है। उसमे संस्कृत या फ़ारसी के क्लिष्ट शब्द नही आये है। ठीक; पर दूसरे क्लिष्ट शब्द तो आये है।

शं०—जैसे ?

ब्रज०—जैसे मुद्धा, करुई, कोआ, बॉसा, गवाई, होरिला, फिरहरी इत्यादि। लम्बे लम्बे वाक्य भी मै एक-दो नहीं, कई बता सकता हूँ। सुनिए—"सुनयना ने सीता से कहा कि बेटी, तुम्हारे बाप की पूजा की वेरा आ गई। मै घर के धन्धे मे फॅसी हूँ। जॉत, चक्की, ओखरी, मूसर, खल, सील-लोढ़े, सिलौटी-लोढ़िया, सूप-झरना, आखा-चलनी, दौरी-दौरा, चकला-बेलना, कूचा-बढ़नी, कठौत-कठौता, बेना-पंखा, पंखी, खॉचा-खॅचिया, करुई, मौना-मौनी, सरौता, पहॅसुल, होरिसा, बिलैया (कद्दूकस), थारी-लोटा, ग्लास-हंडा, गगरा-गगरी, कडाल, तसला-तसली, बटुआ-बटुई (बटलोही), परात, करछुल, चमचा, सॅड़सी, तावा-तवनी, कराही-कराहा, पौना-पौनी, झरना, कटोरा-कटोरी, चूल्हा-चूल्ह, वोरसी, कोठिला-कोठली, पाटा, ओटा, ताख, दीयट और बहुगुने आदि के जॉच-परख मे लगी हुई मजूरिनियो से सब साफ करा रही हूँ, फिर पीछे से आज ही धान कुटवाना और गोहूँ पछोरवाना है, सो तुम जाकर धनुष की जगह को लीप-पोतकर साफ कर आओ, नही तो तुम्हारे बाप हमसे बहुत नाराज़ होगे।" और सुनिए—

"लगन की वेरा आई, जनक के नाई राजा दशरथ के यहाॅ से बर की ठिल्ली (कलसे का जल) ले आये। उस पानी से जानकी नहवाई गईं, नहछू होने लगा, सखी-सहेलियाॅ रहस-कूदकर, समय समय की गीत गाने लगी, वर की ओर से अनवट, बिछिया, पलानी, कड़ा, छड़ा, पायजेब, सॉकड़ा, करधनी, जब्बा, बाजू, बरेखी, जोसन, बिजायठ, अॅगूठी, मुॅदरी, कंकन, पोरिआ, हुमेल, हॅसुली, टीक, पॅचलरी, सतलरी, गोफ, सिकड़ी . . .

(नौकर आकर कहता है)

"बाबू! रोटी बन गई है। मालकिन बुला रही है।"

व्रज०—जाकर कहो अभी दस मिनट मे आते है। (शंकर से) हाँ, सुनिए, अभी यह वाक्य पूरा नही हुआ है।

श०—अब रहने दीजिए। फिर कभी देख लेगे। समय थोड़ा है। मुझे आपसे एक आवश्यक बात कहनी है।

व्रज०—अच्छा कहिए।

श०—आज आप रोटी खाये बिना ही स्कूल गये थे ?

व्रज०—हाँ, गया तो था।

शं०—सो क्यो ?

व्रज०—मित्र! आप मेरे घर की बातो से परिचित रहकर भी, आश्चर्य है, ऐसा प्रश्न क्यो करते है ? मेरे लिए यह बात नवीन नही है। ऐसा तो कई बार हुआ है। क्या करूँ ठीक समय पर रोटी नहीं बनती।

शं०—आप कितने बजे रोटी चाहते है ?

व्रज०—सबेरे ९½ बजे और संध्या को ७ बजे।

शं०—(घड़ी देखकर) अभी तो रोटी ठीक समय पर बनी है। इस समय ७ बजने को दस मिनट शेष है।

व्रज०—हाँ, कभी कभी ठीक समय पर बन जाती है; पर बहुधा देरी हो जाया करती है।

शं०—आप जानते है, आपके घर में १६ व्यक्तियो के लिए रोटी बनती है। ५-१० मिनट की देरी हो जाना स्वाभाविक ही है। आपको इस कारण क्रोध न करना चाहिए।

व्रज०—क्रोध न करूँ, तो शायद ११ बजे भी भोजन न मिले। (शंकर को हँसते देख) आप हँसिए नही। मै सच कहता हूँ, मेरे घर का प्रबन्ध ऐसा ही है।

शं०—जी हाँ, सो तो आप मुझसे कई बार कह चुके है, पर मै कहता हूँ कि मनुष्य-मात्र से त्रुटि हुआ ही करती है।

व्रज०—ऐसी त्रुटि मैने इसी घर मे देखी है, अन्यत्र नही।

शं०—कुछ भी हो। यदि आप थोड़े ही दिन प्रवास में रहे तो आप समझ जायँगे कि अन्यत्र इतना सुख मिलना भी दुर्लभ है। घर सा सुख संसार मे कहाँ ?

व्रज०—चूल्हे मे जाय ऐसा 'घर सा सुख'। मै तो चाहता हूँ, किसी भाँति ऐसे घर से पिंड छूटे, तो जी को कुछ सुख मिले।

शं०—अच्छा! इस विषय पर मै फिर कभी बातचीत करूँगा। आप भोजन कीजिए। मैं जाता हूँ। मुझे विश्वास है, मेरे शब्दों से आप अप्रसन्न न हुए होगे। (जाना चाहते है)

व्रज०—(मित्र के कन्धे पर हाथ धरे हुए, कुछ दूर पहुँचाने जाते जाते) नहीं मित्र, नही। भला स्वप्न मे भी हुआ है ?

शं०—(मुस्कराते हुए) स्वप्न में नहीं, तो प्रत्यक्ष सही।

व्रज०—देखो, फिर वही बात।

शं०—अच्छा मित्र, जैरामजी की !

व्रज०—जैरामजी की !

(शंकर का प्रस्थान)

व्रज०—रामू!—रामू!—ओ रामू!

(रामू का प्रवेश)

व्रज०—हम रोटी खाने जाते है। तुम हमारे बिस्तर अच्छे फटकार के बिछा दो और पान लगाकर रक्खो।

(एक छोटे बालक का प्रवेश)

बालक—भैया! अम्मा तुमका लोटी खाय का बुलौती है।

व्रज०—चलित है। (छोटे भाई को उठाकर चुम्बन करते हुए प्रस्थान)

तृतीय दृश्य ।

(स्थानः—एक कमरा)

(पण्डित नन्दकिशोर और उनके एक आत्मीय बाबू साहब बातचीत करते हुए कमरे मे बैठे है)

नंद०—फेल हो गये तो एक साल और पढ़ें, झुकते । हम क्या करे ? हम तो पहिले ही से कहते आये है कि भइया ! पढ़ो, भइया ! पढ़ो । पर भइया काहे को पढ़ते है ? भइया पढ़ते, तो घर के लोगों से लड़ता-झगड़ता कौन ? उनपर लाल-पीली आँखे कौन करता ? भइया अपनी तेज़ी ही में मरे जाते थे । अब निकल तो गई सब तेज़ी । अब हाथ-पॉव पसारकर पड़े है पलँग पर मुर्दे की नाईं । रोटी भी नही खाते । (भूपकिशोर को आते देखकर) अरे भूपकिशोर ! जाओ, उसको समझाओ कि जाकर रोटी खावे । जो हुआ सो हुआ, अब लघन करने से फायदा ? एक साल और सही, क्यो बाबू साहब ? (भूपकिशोर का प्रस्थान)

बाबू—जी हॉ, ऐसा तो होता ही रहता है । जो घोड़े पर चढ़ता है एकाध वार वह गिरता भी है। इसमे निराश होने की क्या बात है ?

नंद०—कुछ नही ।

बाबू—निराश होने की अपेक्षा, मैं समझता हूँ, उन्हे तो और उत्साह से अपने काम मे लग जाना चाहिए, ताकि ऐसा अवसर फिर न आने पावे । स्काटलैन्ड की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते समय राबर्ट ब्रूस ने दस वार हार खाई थी, परन्तु ग्यारहवी बार उसकी जीत हुई । पण्डितजी ! अब आपही कहिए, यदि वह पहिली ही बार, अथवा दूसरी बार, नहीं तो तीसरी

भी बार, निरुत्साहित एवं निराश हो जाता तो क्या उसकी मनोकामना पूर्ण हो सकती थी ?

नंद०—कदापि नहीं। इसीसे तो कहता हूँ कि एक साल और परिश्रम करे। अब की बार पास हो जायँगे।

बाबू—और, इस देश के विश्व-विद्यालयों मे तो ऐसा होता ही रहता है। प्रति १०० लड़को मे कठिनाई से ४० लड़के पास होते है। देखिए न, प्रयाग विश्वविद्यालय मे गये साल अनुमान ४७०० लड़के बैठे थे और पास हुए पौने दो हज़ार से भी कम !

नंद०—हॉ, हॉ, कुछ आश्चर्य नहीं। मद्रास-विश्व-विद्यालय तो इसका भी नगड़दादा है।

बाबू—जी हॉ, वहॉ तो ऐसे लड़के बहुत ही कम होंगे जो बेचारे एक ही बार मे एन्ट्रेन्स पास कर सके हो।

(भूपकिशोर का प्रवेश)

नंद०—क्यो, गया व्रजकिशोर रोटी खाने ?

भूप०—जी हॉ। मैंने उसे समझाया था। वह रोटी खाने गया है। वह पढ़ने को भी राजी है, पर कहता है कि मै यहॉ न पढ़ूँगा।

नंद०—यहाँ न पढ़ेगा, तो कहॉ पढ़ेगा ?

भूप०—बाबू साहब के छोटे भाई के साथ नागपुर मे पढ़ने को कहता है।

नंद०—यहॉ पढ़ने में क्या उसे कॉटे गड़ते है ?

भूप०—नहीं, उसे यहॉ पढ़ने मे शरम लगती है।

नन्द—क्या ख़ूब ! तो फेल ही क्यो हुआ ? अच्छा, शरम लगने दो, हम उसे दूसरी जगह न भेजेंगे। बाबू साहब, आपका तो जैसे वहाँ घर-द्वार है। ये क्या करेंगे ? इनको कौन रोटी

वनाकर देगा ? मै जानता हूँ, परदेश मे कितना दुःख होता है। घर सा सुख उसे कहीं मिल सकता है ?

बाबू—जी नहीं। कहा है, "परदेश कलेश नरेशन को"।

भूप०—मैंने उसे बहुत समझाया, नहीं मानता। जब मैंने उसे विश्वास दिलाकर कहा, "अच्छा, मै तुम्हे नागपुर पहुँचाने का भरसक प्रयत्न करूँगा," तब वह माना।

नन्द०—(आश्चर्य से) क्या तुम उसे नागपुर भेजने के पक्ष मे हो ?

भूप०—जी हाँ, मुझे वाध्य होकर उसके पक्ष मे होना पड़ा।

नन्द०—क्यों ?

भूप०—जब मैंने देखा कि ब्रजकिशोर पर कसी प्रकार के उपदेश का असर नहीं पड़ रहा है, तब विवश होकर मुझे यह वचन देना पड़ा।

नन्द०—क्या तुम यह नहीं समझते हो, नागपुर मे उसे कितनी तकलीफ़ होगी ?

भूप०—जी हाँ, सो तो मै समझता हूँ। पर किया क्या जाय ? यहाँ तो वह पढ़ेगा ही नहीं। अतएव घर मे चुपचाप बैठाये रखने की अपेक्षा उसे नागपुर भेजना मैं अच्छा समझता हूँ। वहाँ वह कुछ तो पढ़ेगा। फिर इस वर्ष नहीं, तो अगले वर्ष उसे बाहर भेजना ही पड़ेगा ; क्योंकि यहाँ केवल एन्ट्रेन्स तक ही पढ़ाई होती है। हमारा कर्त्तव्य है उसे सीख देवें। सो हम कर चुके। अब वह न माने तो कोई क्या करे ? वह कुछ बालक तो है ही नही कि किसी प्रकार का डर बतलाकर या मार-पीटकर उसे अपनी सीख पर चलावें। भलाई इसीमें है कि उसे अपने मन की कर लेने दे। उसे आप पश्चात्ताप होगा और तब उसे अपनी भूल समझ पड़ेगी। इसलिए मेरी तो यही प्रार्थना है कि उसे आप नागपुर जाने दें।

नन्द०—(झुँझलाकर) बाबू साहब) मै तो ऐसे मामलो से तंग आ गया। क्या करूँ ? मुझे कुछ सूझ नही पड़ता।—बेवकूफ अगर पहिले से ध्यान देता, तो काहे को यह अवसर आता।

(क्षणिक शान्ति)

नन्द०—अच्छा है। जाने दो—नागपुर ही जाने दो। वहीं पड़े, हमे क्या ? चूल्हा फूँकने जब बैठेंगे, तब हमारा उपदेश याद आयेगा। इतना समझाया, नही मानता तो जावे।

(क्षणिक शान्ति)

नन्दू०—भूपकिशोर! तुम जाकर फिर समझाओ। मान जाय तो अच्छा ही है, नही तो जावे। फिर भेजना तो है ही।

भूप०—बहुत अच्छा, जाता हूँ। (प्रस्थान)

नन्द०—बाबू साहब, बगीचे की ओर चलिएगा क्या ? बाते करते करते मेरा सिर दर्द करने लगा।

बाबू—जी हाँ, चलिए।

(दोनो का प्रस्थान)

चतुर्थ दृश्य।

(स्थान—नागपुर का एक छोटा-सा कमरा)

(पृथ्वी पर बिस्तर बिछे हुए है, जिनपर व्रजकिशोर उदासमन बैठे कुछ सोच रहे है। पास ही एक सन्दूक और एक ट्रंक रक्खा है। कुछ पुस्तके बिथरी हुई पड़ी है। कमरे मे कूड़ा-कचरा भी ख़ूब फैला हुआ है)

(कुछ देर बैठे रहने के पश्चात् व्रजकिशोर खड़े होकर दुःखित कंठ से गान करते है)

व्रजकिशोर—

"कहाँ कहाँ" कर जन्म जहाँ पर अहो लिया था।
घुटनो के बल भ्रमण जहाँ बहु बार किया था॥
लेकर प्यारी धूल शीश पर जहाँ चढ़ाई।
हो करके स्वच्छन्द जहाँ अति धूम मचाई॥
वह बाल्यकाल बीता जहाँ, माँ की प्यारी गोद मे।
हम सन्तत डूबे ही रहे, नख से शिख लो मोद मे॥ १॥

जहाँ सदा मिष्ठान्न विविध पक्वान्न उड़ाये।
और सरस-रस-युक्त नित्य नाना फल खाये॥
छोटे छोटे बाल बोल थे मधुर सुनाते।
कानो मे पीयूष घोल सा सन्तत जाते॥
वह हरा-भरा उद्यान-सा भुवन आज है छोड़के।
हम प्रबल पंक में आ पड़े, मुख सु-नीर से मोड़के॥ २॥

सच्ची सदा सहानुभूति सब थे दिखलाते।
सौम्य स्नेह से सने शब्द थे सखा सुनाते॥
तोते तक मे और पालतू पशुओ मे भी।
कुसुमो मे था प्रेम सदा उन तरुओ मे भी॥
वह रंगभूमि कौमार्य की स्वर्ग-भूमि सी थी अहा।
है हमने उसको त्याग के धिग्! धिग्! मौर्ख्य किया महा॥३॥

हाय! अब हमें पिता के वचन स्मरण आते है। नन्दन वन को छोड़कर हम इस बबूल-वन मे विहार करने आये है। हमसा मूर्ख इस पृथ्वी पर कौन होगा? ४) किराये पर यह छोटा-सा कमरा मिला। शयन करने के लिए पलंग के स्थान मे आज एक टूटी खटिया भी नही है। (बैठकर)—दो घण्टे सबेरे और दो घण्टे सन्ध्या को रोटी बनाने में व्यर्थ ही जाते हैं—बर्तन माँजने तक को

हमे अभी तक कोई नौकर नही मिला। धोती धोना और कमरा बहारना भी अब हमारे ही ऊपर निर्भर है। भगवान ! अब पश्चात्ताप करवाते हो, पहिले ही हमे बुद्धि क्यो न दी ? अब वापिस जाते भी नही बनता। पिता को यदि कुछ लिखे तो वह भी व्यर्थ है। वे और भी क्रोधित होगे। यह विपत्ति हमारी ही बुलाई है। इसका दोष हमीं पर है। हाय ! हमने अपने हाथ से ही अपने पाँव मे कुल्हाड़ी मार ली।

पढ़ना-लिखना अब कुछ हो ही नही पाता। घर का सारा समय इन्ही बातो के सोचने मे चला जाता है। यदि इस बार भी हम फेल हुए, तो हमारा मरण हो जायगा। हम किस प्रकार लोगो को अपना मुख दिखलावेगे ? विद्यार्थियो का भी जीवन कितना दुःखमय है। हाय ! गत वर्ष ही यदि हम पास हो गये होते, तो क्यो ये दुःख सहने पड़ते ?

जगदीश्वर ! हम किन अपराधो का दंड पा रहे है ? क्या हमारी इस दशा का शीघ्र अन्त न होगा ? हाय ! यहाँ तो कोई दुःखो का सुननेवाला और सहानुभूति दिखलानेवाला भी नही। मित्र शङ्करप्रसाद ! तुम जिसकी आँखो मे एक बूँद आँसू भी नही देख सकते थे, जानते हो आज उसकी क्या दशा है ? नहीं, सचमुच तुम नही जानते। जानते, तो हमे विश्वास है, तुम कभी चुप न बैठते। तुमने भी हमे समझाया था। पर हाय ! तुम्हारे इस अभागे मित्र ने तुम्हारा कहना न माना। (साँस लेकर) जो होना था सो हो गया। अब क्या करना चाहिए ? क्या इन दुःखो के विषय मे मित्र को कुछ लिखना चाहिए ? हाँ ! अवश्य लिखना चाहिए। दूसरा उपाय नही। उन्होने कहा भी था, "यदि वहाँ कुछ तकलीफ़ हो तो मुझे लिखना।" उनके

सिवाय और किसीको लिख भी तो नही सकते। अच्छा तो अब एक चिट्ठी डाले।

(सन्दूक मे से एक काग़ज़ निकालकर पत्र लिखते हैं। पत्र लिख चुकने पर घड़ी देखकर)

लो! पौने दस बज गये। स्कूल जाना चाहिए। वही रास्ते में चिट्ठी डाल देंगे (मोजे-जूते आदि पहनते पहनते) देखो, एक वह समय था जब कि हमे नौकर मोजे-जूते पहिनाता था और एक आज है जब कोई यह तक नही पूँछता कि तुमने रोटी खाई या नही।

(पुस्तके लेकर स्कूल की ओर प्रस्थान)



पंचम दृश्य।

(स्थानः—रायपुर में शंकरप्रसाद का कमरा)

(एक दरी बिछी हुई है। उसीपर बैठे शंकरप्रसाद कुछ सोच रहे हैं। पास ही कुछ पुस्तकें रक्खी है)

हाय परमेश्वर! जिनके साथ वार्तालाप कर मै सदा सुखी होता था, जिनके बिना एक घंटा भी मुझे बड़े कष्ट से बीतता था, आज वे ही मुझसे २०० मील की दूरी पर है। न जाने, अभी तक उनके रहने आदि का कुछ प्रबन्ध हुआ या नही? यहाँ की अपेक्षा क्या वे अधिक प्रसन्न होगे? वहाँ का भोजन क्या उन्हे रुचिकर होगा? कदापि नही। वहाँ क्लेश के सिवा सुख का नाम नही। हाय! मुझ-सा अभागा कौन होगा जो मित्र को दुःखो से घिरा जानकर भी यहाँ चैन की वशी बजा रहा हूँ। मैने तो शक्ति भर प्रयत्न किया था कि वे यहीं रहे। हे परमेश्वर! मैने आप से भी प्रार्थना की थी, पर मुझे अभागा जान आपने भी मौन

धारण कर लिया। आज तीन दिन हो गये चिट्ठी भी नहीं आई। गाड़ी चलते चलते मैंने उनसे कह दिया था कि पहुँचते ही चिट्ठी डालना। क्या मित्र, मुझे इतने शीघ्र भूल गये? नहीं, यह असम्भव है। मुझे जितना अपने हृदय पर विश्वास है उतना ही उनके हृदय पर। यह शङ्का व्यर्थ है! दुर्भाग्य के ही कारण मुझे अभी तक उनके समाचार न मिले। (नेपथ्य मे, बाबू शङ्कर-प्रसादजी?) हे परमेश्वर, मै बारम्बार प्रार्थना करता हूँ कि मुझे शीघ्र उनके कुशल-समाचार मिलें।—(नेपथ्य मे, शङ्करप्रसादजी?)

शङ्कर—कौन है भाई?

नेपथ्य मे—मै हूँ चिट्ठीरसा (शङ्करप्रसाद दौड़कर चिट्ठी ले आते है)

ऐ! मेरा हृदय क्यों काँपता है? हे भगवन्! इस पत्र में क्या लिखा होगा? हृदय, धैर्य धारण कर। पहिले देख तो ले, पत्र मे क्या लिखा है, फिर घबड़ाना। (चिट्ठी खोल-कर पढ़ते है)

"परम प्रिय बन्धु,

पत्र भेजने मे विलम्ब हुआ। आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। मै यहाँ २० तारीख़ की रात को पहुँचा। धर्मशाला मे गया, तो वहाँ स्थान ही न था। ख़ैर, रात भर बाहर ही पड़ा रहा। सबेरे एक कमरा ख़ाली हुआ। उसमे सब सामान रक्खा। अब भूख ने सताया। रोटी की चिन्ता हुई। परन्तु वहाँ रोटी बनाने को स्थान ही न था। थोड़ी सी मिठाई मोल ली। उसमें शक्कर ही शक्कर, मुझसे खाई न गई। दस बजे स्कूल चला गया। संध्या को फिर रोटी बनाने के लिए स्थान न मिला। अब की बार सत्तू मँगाया। उसे खाने लगा, तो मालूम हुआ कि उसमें मैदा बहुत मिला हुआ था। उसे भी फेंकना पड़ा। किसी भाँति रात काटी। सबेरे उठकर किराये का घर ढूँढ़ने निकला। नौ

बजे तक घर का ठीक हुआ। फिर झट-पट नहा-धोकर, कपड़े पहिनकर स्कूल चला गया। संध्या को स्कूल से वापिस आया। धर्मशाला से सब सामान उठवाकर नये मकान मे ले गया, तब कहीं रात को आठ बजे रोटी का ठिकाना हुआ। इस प्रकार मुझे दो दिन भूखे ही रहना पड़ा।

जब मै आपत्तियो से घिरा था, तो मुझे क्षण क्षण पर माता-पिता, तथा भाई-बन्धुओ का स्मरण आता था। अहा ! एक समय वह था जब मै घर के नन्हे नन्हे बालको के प्रसन्न मुखड़ो एवं उनकी भोली, किन्तु मनोहर, छवि को देखकर अत्यंत आह्लादित होता था, और एक समय यह है कि घर में मुझे ६ बजे से १० बजे तक तथा ४ बजे संध्या से ६ बजे सवेरे तक अकेले ही रहना पड़ता है। जब मै मित्र-मंडली का स्मरण करता हूँ, तो मेरे नेत्र मानो पानी के झिरने बन जाते है।

आपके पवित्र प्रेम की सुधि आते ही सारा शरीर निर्जीव-सा हो जाता है। मैं सचमुच बड़ा अभागा हूँ। यदि मै आपका कहना मानता, तो क्यो यह दुर्दशा होती ? आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। भैया, अपने पूर्व प्रेम का स्मरण करो और मुझे क्षमा करो। अपने हृदय से पूछो और मुझे क्षमा करो। संसार को देखो और मुझे क्षमा करो।

मकान मिल जाने के कारण अब भूखा तो नहीं रहना पड़ता; परन्तु बात यह है कि चौका तक अपने ही हाथो से लगाना पड़ता है। बर्तन भी मैं ही माँजता हूँ। क्या करूँ, कोई नौकर नहीं मिलता। अब प्रायः नित्य ही भात गीला होता है। दाल बहुधा खारी हो जाती है। रोटियाँ जल जाया करती है। घर मे ये बाते होतीं तो आप जानते ही है कि मै क्या करता; परन्तु यहाँ मै विवश हूँ। जब मै घर की दशा से इस दशा का मिलान करता हूँ,

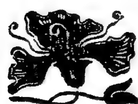
रक्खो, वह शीघ्र तुम्हारे पास तैर कर आवेगा और तुम्हें उससे मुक्त करने के लिए अपनी शक्ति भर प्रयत्न करेगा।

अच्छा, अब पहले तो ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। फिर पिता की अनुमति लेकर मित्र के पास जाना चाहिए। मुझे विश्वास है, पिता मुझे नाहीं न करेंगे। हम दोनों का प्रेम उनपर भली भाँति प्रकट है।

"हे दीनबंधु! दयालु! विनती दास की सुन लीजिए।
मम मित्र जो अन्यत्र है उनपर कृपा प्रभु! कीजिए॥
उनके हृदय मे शांतिदायक! शांति का सञ्चार हो।
मस्तिष्क उनका बुद्धिदाता! बुद्धि का भंडार हो॥ १॥
हो सर्व सुविधाएँ सुहृद को सदन स्वर्ग बनाइए।
छोटी-बड़ी आपत्तियो से लोकनाथ! बचाइए॥
एण्ट्रेंस में करके परिश्रम शीघ्र ही उत्तीर्ण हो।
प्रभु! प्रेम-पत्र पवित्र मुझपर मित्र के अवतीर्ण हो"॥ २॥

हे परमेश्वर! मुझे मित्र के पास शीघ्र पहुँचाइए और उनके समस्त क्लेश दूर कीजिए। भगवान्! मुझे केवल तेरा भरोसा है। बस, जब तू मेरा सहायक है तो मुझे किसका डर है? चलो, तो जाऊँ, पिता की अनुमति ले लूँ और आज ही नागपुर के लिए प्रस्थान करूँ। (जाते हैं)

[यवनिका-पतन]



मियाँ की जूती, मियाँ ही का सिर

पात्रः—

१—मटल्लू } मित्र
२—कल्लू }
३—सेठ धनदास
४—सेठ लखमीचन्द

दृश्य पहला।

(मटल्लू का प्रवेश)

मटल्लू—कर्ज़ वाले नाक मे दम किये है और नौकरी से तो हाथ धो ही बैठा हूँ सो तो सभी जानते हैं। सब जाने चाहे न जानें; पर मै तो ज़रूर जानता हूँ जिसकी जोरू ज़ोर से कान खींच-खींचकर बातें सुनाती है। (कान स्वतः खींचता है) वह भी बेचारी कान न खींचे, तो करे क्या? एक-दो आदमी हो तो बन भी जाय। मेरी गृहस्थी तो क्या है तमाम रिश्तेदारो की खासी काँजीहौस है। देखो, जिसके यहाँ औरत, लड़के-बच्चे, कच्चे-पक्के, भाई-भौजाई, भतीजे-काका, बावा, दादा-नाना, काकी-दादी, नानी-बहिन, बहनोई-साला, साली-सरहज, सास-

ससुर, और यहाँ तक जब मै ५ साल का था तब अजिया ससुर भी जिनकी श्रीमती अपने बड़े बड़े दाँत दिखाती हुई ज़िन्दी चुड़ैल की शक्ल अभी तक मेरे यहाँ वर्तमान है, जिनके मारे बड़ा नाक मे दम है। लड़के-बच्चे उसे देख ले तो ज़ोर ज़ोर से चिल्लाते है। बहुत चाहता हूँ कि उसे एक दिन चुपचाप कुएँ मे ढकेल दूँ, पर औरत के मारे भला यह कैसे हो सकता है? फिर औरत को मानो समझा भी लिया, पर पापी पुलिस से कैसे बचूँगा?

(कल्लू का प्रवेश)

कल्लू—अरे क्या बड़बड़ा रहा है बड़ी देर से? काका, बाबा, भूत, चुड़ैल, पुलिस—इन सबका मतलब क्या है? क्या भाभी ने घर से निकाल दिया?

मटल्लू—अरे दोस्त, यह हो जाय तब तो समझ लो कि बन पड़ी। फिर तो रहा अकेला पेट, सो आध सेर आटा कहीं भी कमा लूँगा।

क०—हाँ हाँ। (हँसता है) फिर कहो, विचार क्या है और कहीं नौकरी तलाशी है कि नहीं?

म०—अरे दोस्त, नान-मेटरिक (Non-matric) को कौन पूछता है? रेलवे में अभी तक रहा। अब तो बड़ी आफ़त सी दिखती है। मैने भी अब सोच लिया है कि नौकरी न करूँगा।

क०—तब क्या करोगे?

म०—कोई रोज़गार करूँगा। ऐसा सोचता हूँ।

क०—पर पूँजी भी है?

म०—सो तो तुम-सरीखे मित्रो के सामने किस बात की कमी है?

क०—ऊँ हूँ। सो तो यहाँ भी फ़ाकेमस्त है। उसीकी तलाश में तो मै फिर रहा हूँ।

म०—(हँसता है और दोनो हाथ मिलाते है) तब तो बन पड़ी। चलो, किसी साहूकार के यहाँ तुम मेरी सिफारिश कर देना, मै तुम्हारी कर दूँगा। टंटा छूटा।

क०—पर हम लोगों की सिफ़ारिश कहाँ तक काम करेगी समझ मे नहीं आता। भला ऐसा कौन उल्लू होगा जो हम लोगों के झपके मे अवेगा ?

म०—अजी वह धनदास, पक्का धन का गुलाम। चलो, उसी को मूँड़ें। चलो तो तुम। मेरी सिफ़ारिश भर कर देना और लम्बा-चौड़ा व्याज कबूल करा देना कि बस, टंटा छूटा और काम सिद्ध भी हो जायगा।

क०—तो कितने रुपये लेना चाहिए ?

म०—चार सौ ले लो कम से कम।

क०—पर मुझे भी तो ज़रूरत है। उसका कैसा इन्तज़ाम करोगे ?

म०—मै तुम्हे सटल्लू सेठ से जितना कहो दिला सकता हूँ।

क०—अच्छा है। यह ठीक है। तो चलो पहले धनदास के यहाँ चलें।

(दोनो जाते है)

दृश्य दूसरा।

(सेठ धनदास बैठे है)

म०—सेठजी, जैगोपाल।

ध०—जयगोपाल शाब, कैसी कृपा की जो इथे पधारे छो।

म०—भला लक्ष्मी-पुत्रो के पास मनुष्य अपने मतलब को छोड़ और काहे को आता है ?

से०—अच्छा, और कल्लू महाराज भी आये है। आवो मराज,

पधारो, ऐशे वैठो गादी से टिक के। आप तो हमारे पुरोहित ठहरे। (कल्लू को तकिया से टिकाकर बैठालता है) (मटल्लू की ओर इशारा करके) मराज तो वड़ी चोखी चोखी कहनेवाले दिखे हैं।

क०—वाह वाह! क्या आप इन्हे नही जानते ? ये भूषण कवि के कुटुम्ब-वाले है। इन लोगो की प्रकृति ही, सेठजी, खरी कहने की है। इन्हींके वंश-वालो ने हिन्दुओ को अभी तक जीवित रक्खा है।

से०—मै मराज को पिछाना नहीं। (मटल्लू की ओर) आपके पिता का नाम ?

म०—मनबोध पाँड़े।

से०—मनबोध पाँड़े जो अमरावती मे अबीरचन्दजी की दूकान में नौकर रहवा थे। वेही ना ?

म०—हाँ हाँ, वही सेठजी।

से०—तो कहिए काम क्या छे ?

म०—सेठजी, नौकरी छोड़छाड़ बैठा हूँ और अब व्यापार की इच्छा है; पर उसके लिए पूँजी कहाँ से आवे ? इससे आपसे विनय है कि यदि दो चार सौ रुपये लागत लगाकर कोई सिलसिला जमा देते, तो ठीक था। आगे आपकी मर्ज़ी।

से०—अरे मराज, दो चार सौ या समयमे कांई धरो छै। पर हाँ, जो कुछ मो गरीब से आप लोगो की शेवा में बणहै सो देखो जायगो।

क०—आप किसी प्रकार से चिन्ता न कीजिए। आपका पैसा नही डूब सकता। इन्हे मै अच्छी तरह जानता हूँ। आप अपना व्याज ठीक कर लीजिए। उसमे संकोच की बात नहीं है।

से०—सो तो हो ही जायगा पण बात जा छै कि . .
म०—हाॅं हाॅं कहिए क्या है ?
से०—ब्याज या समय थोड़ा कड़ा है।
म०—कितना है ?
से०—अपण तो आपणा जाने छै, सरकारी निरख कछू क्यो न रहे।
म०—हाँ तो सुने तो।
से०—कोई मकान बगैर धरै जेको तो १२) सैकड़ा, नहीं तो वाको दूनो जब केवल टीप लिखवा पड़त है।
क०—उसकी फ़िकर न करो। मै गवाह और चाहो तो ज़मानत देता हूॅं। पर रुपया मेरे दोस्त को ज़रूर दीजिए, क्योंकि ज़रूरत बड़ी है।

[सेठजी टीप लिखवाकर रुपया देते है]

(दोनो लेकर जै-गोपाल करते और जाते हैं)

दृश्य तीसरा।

कल्लू—लो भाई, तुम्हारा काम तो सिद्ध हुआ। अब रहा मेरा, सो अब उसका उपाय करो।
म०—अरे उसका तो बहुत सहज उपाय है। लो, तुम्हारे भाग्य भी अच्छे हैं। देखो, वे साम्हने से लखमीचन्द आ रहे है। वे बड़े दयालु है और हम तुम दोनो को जानते भी है। साथ के पढ़नेवाले है। तुम तो उनके साम्हने ख़ूब रोने-पीटने लगना।

(लखमीचन्द का प्रवेश)

क०—(रोता हुआ) बड़ी आफत है। कैसा करूँ ? मेरा कोई भी नहीं है।

म०—भाई जै गोपाल।

ल०—जैगोपाल। कहो, ये कल्लू क्यो रो-पीट रहे हैं ? क्या है ?

म०—महाराज, इनके ऊपर धनदासजी ने नालिश कर दी है; इसीसे फिक्र मे पड़े है।

ल०—कितने की नालिश है ?

म०—शायद दो सौ की है।

ल०—सिर्फ दो सौ।

क०—(रोते हुए) जी हाँ।

ल०—अच्छा, ये लो। मेरे पास ये नोट है। अभी मै किसी काम से जा रहा था, पर अब मै अपना काम फिर कर लूँगा। यदि मेरे पास रुपया है तो उचित है कि मित्र की मदद करूँ। (रुपये देकर जाता है) जब हो सके तब लौटा देना, कोई जल्दी नहीं है।

म०—अच्छा लाव, मैं सब रुपये रखे लेता हूँ। (कल्लू और मटल्लू दोनो रुपयों को सामने रखकर खूब हँसते है)

म०—भैया, आज तो मै बीबी के कान खीचूँगा।

क०—जरूर, आज तुम सब दिन की कसर निकाल लेना। पर भाभी को एक धोती और कुछ जेवर जरूर लेते जाना।

म०—हाँ, पर जब यह ख्याल आता है कि धनदास को रुपये देना पड़ेंगे, तो प्राण न जाने क्यो घबड़ाते हैं।

क०—पागल तो नही हो गये हो ? अब क्या रुपये देना ? मैं एक सरल हिकमत बताऊँगा जिससे सब रुपये अपने हो जाँयगे, पर शर्त यह है कि आधा रुपया मेरा होगा, दो सौ।

म०—भैया, जल्दी कहो कि वह कौन उपाय है।

क०—अरे भाई, पागल बन जाना। पर, पहले यह गप्प उड़ा दो कि रुपया चोरी चला गया है।

म०—ऐसे मे लोग शक न करें ?

क०—शक की कौन बात है ? तुम यह कहना कि तुम्हारे घर से मेरे दो सौ भी चोरी चले गये है जिसकी तुम्हे सबसे बड़ी फिकर है।

म०—अच्छा है भैया ! पर पागल कैसे बनूँगा ?

क०—जो तुम्हारे रुपया चोरी होने का धनदास सुनेगा तो वह तुरन्त ही दौड़ेगा। मैं उससे सब कह दूँगा। जो वह तुम्हारे पास आवे उसके पास "वै वै वै" करके दौड़ना और उसके नाक, कान, मुँह के पास "वै वै" करके चिल्लाते रहना।

म०—अच्छा है। तो ये रुपये तो यही रख दो और जाकर रपोट कर दो।

(कल्लू रपोट करने जाता है। मटल्लू हँसता हुआ रुपया उठाकर घर ले जाता है)

दृश्य चौथा।

(धनदास और कल्लू का प्रवेश)

धनदास—अरे मटाल्लू मराज, मटाल्लू मराज कांई कहो।

(मटल्लू वै वै वै करता निकलता है)

ध०—मारे रुपये धर दो। माको व्याज व्याज कछू नहीं चाहिए।

(मटल्लू वै वै वै चिल्लाता है)

क०—सेठ, इसको रुपयों के चोरी जाने से बड़ा रंज हो गया है। सिर में गरमी समा गई है। चलो, अभी कहीं पागलपन मे एक आधी लात जूता जमा देगा, तो आपकी १ लाख की इज्ज़त पर पानी फिर जायगा।

(मटल्लू वै वै वै करता जाता है और कल्लू को मारता है)

[सेठ डरके भागते है और कहते है, "रुपया छोड़े बाबा, कहीं हाथ-पैर न तोड़ दे"]

(सेठ जान लेकर भागते हैं)

[कल्लू-मल्टल्लू हँसते हैं]

कल्लू—अच्छा भाई मटल्लू, अब मेरे रुपये लाओ और दो सौ और मेरे हिस्से के भी चुप से निकाल दो।

(मटल्लू वै वै वै कहके चिल्लाता है और कुछ जवाब नहीं देता, यहाँ तक कि चपत-घूँसे भी जमाता है]

क०—अबे मैं हूँ कल्लू जिसने तुझे रास्ता बताई थी।

म०—वै वै वै। कल्लू के दादा मटल्लू भी होवे, तो क्या ?

(वै वै कहके मारकर निकालता है)

क०—ठीक है जो दूसरों को कुआ खोदता है वह ख़ुद ही उसमें गिरता है। (जाता है)

[मटल्लू हँसता है]

(परदा गिरता है)



बाह्याडम्बर

पात्र—

1—सूत्रधार
२—बनवारीलाल—रिफ़ार्मर
३—मदारीलाल—पुराने ढंग का आदमी
४—घुरहू—मदारीलाल का मित्र
५—मुसलमान-युवक
६—आठ-दस सभासद
७—दो-तीन लड़के



नान्दी-पाठ ।

छप्पय ।

प्रथम आर्य को गोद खिलाकर शिखर चढ़ाया ।
फिर आपस की द्वेष-अग्नि में ख़ूब जलाया ।।
फिर उदार हो यवन आदि को हृदय लगाया ।
उनसे भी हो दुखित तकी अंग्रेज़ी छाया ।।
सजला सुफला सुखप्रदा माता ! अब तू थक रही ।
नन्हे बच्चों की तरफ़ आशान्वित हा ! हो रही ।।

(सूत्रधार का प्रवेश)

अहा, अवस्था बीत गई। बुढ़ापे ने अपना अधिकार जमा लिया। इस छोटी-सी अवस्था मे ससार के कितने उलट-फेर देखे, पर अब दुर्बलता ने आ दबाया। अब मैं अपनी सन्तानो का सहारा चाहता हुआ उसी प्रकार विश्राम चाहता हूँ जिस प्रकार भारत-माता अपनी नन्ही नन्ही होनहार सन्ततियो की ओर भविष्य-आशा से आशान्वित हो देख रही है। हा ! राम, रघु, हरिश्चन्द्र, शिव, युधिष्ठिर, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी इत्यादि कितने सुपूत उसकी गोद में लालित हो, अपनो कर्त्तव्य-क्रीड़ा से इसे सुखी बना विलीन हो गये। उनके शोक से रोते रोते इसकी आँखें धुँधली हो गईं, शक्ति जाती रही, पर तो भी दुष्काल-पीड़ित ललनाओ के समान अस्थि-चर्म्मावशिष्ट शरीर धारण किये हमे अपने हृदय से लगाये केवल भविष्य-आशा से जी रहा है और हम . . . (कुछ क्षण चुप रहने के बाद) बस, और नही, मुँह से बात ही नही निकलती (कुछ चौंककर) अरे ! बुद्धि सठिया जाने से मै यह क्या बक रहा हूँ ? (इधर-उधर देखकर) अहा ! आज मुझ बुड्ढे के घर जवानो का जमघट हुआ है, तो इनके मनोरजन का कुछ उपाय करूँ। अच्छा, चलूँ अपनी सन्तानो को तैयार करूँ। (छड़ी टेकता हुआ निकल जाता है)

(कोट, पैंट, बूट, फ़ैल्ट कैप और हाथ मे एक मोटी छड़ी लिये एक युवक का प्रवेश)

(आप ही आप) सुना है, आज बाबू हरप्रसादजी के लड़के शिवप्रसाद सिविल-सर्विस पास करके आ रहे हैं। इसी मेल ट्रेन से आने की बात है। चलूँ, टहलते-टहलते स्टेशन ही की ओर हो निकल चलूँ।

(चलने की तैयारी, और मदारीलाल का प्रवेश)

मदारीलाल—कहाँ की तैयारी है बनवारीलाल ?

बनवारीलाल—अहा, आप हैं ? आदाब साहब, आदाब। ज़रा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ।

मदा०—क्यों क्यों ? कुशल तो है ?

बन०—जी हाँ, कुशल ही है। आपने सुना होगा, आज शिवप्रसाद बाबू सिविल-सर्विस पास करके आ रहे हैं। उन्हीं से मिलने जाता हूँ।

मदा०—कौन शिवप्रसाद ? हरप्रसाद के सपूत क्या ?

बन०—जी हाँ, क्यों ?

मदा०—हाँ हाँ, जाओ। तुम लोग तो मिलोगे ही, आफ़त तो आवेगी हम बेचारों पर।

बन०—ऐं ! इसमें आफत आने की कौन सी बात है ?

मदा०—अरे भाई, तुम क्या समझोगे ? कल ही से जात-पाँत के झगड़े निकलेंगे, पञ्चायतें बैठेंगी, जो न हो सब थोड़ा।

बन०—झगड़े और पञ्चायत की क्या आवश्यकता है ?

मदा०—तब क्या शिवप्रसाद योंही ज़ात में मिल जायेंगे ?

बन०—वे ज़ात से बाहर कब हुए जो ज़ात में मिलेंगे ? आप भी तो बे-सिर-पैर की हाँकते हैं।

मदा०—(रुखाई से) हाँ हाँ, हम तो अब बे-सिर-पैर की हाँकेंगे ही। तुम लोगों की अब चली है। जो जी में आवे सो करो। विलायत जाओ, अंग्रेज़ों के साथ खाओ-पीओ और ज़ात-पाँत के वक्त चुपचाप मिल जाओ।

बन०—(हँसकर) ओहो ये बात ! तो क्यों जनाब, जो घर बैठे ही सब कुछ भक्ष्याभक्ष्य खाते और न करने योग्य कामों को करते रहते हैं उनको कैसे ज़ात में रखे हुए हैं ?

मदा०—(चिढ़कर) बस बस, बातें बनाने से काम नहीं बनेगा। यहाँ की और वहाँ की क्या एक बात है ?

बन०—(कुछ गर्म होकर) क्यों नहीं एक है ? वहाँ-वाले क्या मनुष्य नहीं हैं या आप ही लोग देवता हैं ? आश्चर्य है कि जो लोग कलारियों से लेकर होटलों तक में जा जाकर जाति और धर्म का श्राद्ध करते, किलनर कम्पनी का चुपचाप बिल चुकाते, रंडी-भड़ुओं के साले-बहनोई बनते, उनके जूठे तक को महा-प्रसाद मानते हैं वे तो जाति में रहें और जो विद्या प्राप्त करने या कलाकौशल सीखने के लिए परदेश जायँ वे ज़ात-बाहर हो जायँ ?

मदा०—(चिढ़कर) बस बस, अपना लेक्चर रहने दो। देखेंगे, तुम्हीं उनको ज़ात में मिला दोगे। शास्त्र, पुराण, पंच, पंचा-यत की बात ही नहीं। इनकी बात कौन मानेगा ?

बन०—(वैसे ही कड़े सुर में हाँ हाँ, जब कुछ न बन पड़ा, तो लगे शास्त्र की दुहाई देने। मानेगा कौन नहीं ? जो समझदार होगा वह अवश्य मानेगा, लेकिन जिसको किसीकी उन्नति देखकर डाह हो, जिसको पुराना बैर भँजाना हो, जिसके पेट में अकारण ही वायु-गोला होता है उसकी बात और है। वे लोग तो आपका ही साथ देंगे।

मदा०—हुँ, तुमही तो एक समझदार हो और सब तो .....

(अचकन, पायजामा, टर्किश कैप, छड़ी और चश्मा धारण किये एक मुसलमान युवक का प्रवेश)

मुसलमान—आदाबअर्ज है दोनों साहबों को। क्या बात है भाई ?

मदा०—बात यह है कि ये बाबू साहब समझदार हैं और सब लोग नासमझ हैं।

बन०—नही साहब, ये ज़ात में है और बेचारा शिवप्रसाद जो वापिस आ रहा है ज़ात-वाहर है।

मुस०—नानसेंस। ख़ैर, मै दूसरे मज़हव का आदमी हूॅ। आप लोगो की ज़ात-पॉत के बारे मे दख़ल नही दे सकता, लेकिन इन इंगलेड-रिटर्नरो से मेरा भी मेल नही खाता।

बन०—वहुत खासे। हॉ साहव, आप इन लोगो से क्यो झगड़ते है?

मुस०—मैं नही झगड़ता, वे ही झगड़ते है। हमको देखकर नाक सिकोड़ते और अलग ही अलग फड़कते रहते है।

बन०—वह क्यो?

मुस०—देखते नहीं कि वे लोग कोट-पेंट, हैट-फैट, टाई-कालर, छड़ी-घड़ी, बूट-सूट से सज पूरे जैन्टलमैन बनकर आते है और हमसे न मिलकर एक जुदा गिरोह कायम कर समझते है कि हम पूरे वही हो गये जिनकी हमने नक़ल की है गोया गधे ने शेर की खाल ओढ़कर समझा कि मैं भी हाथियो का शिकार करूँगा।

बन०—(हॅसकर) अच्छा, आपने दूसरा पचड़ा छेड़ा। ख़ैर, इसके उत्तर में मैं यह कहूँगा कि इसमे दोष जितना उनका नहीं, उतना हमारा ही है।

मदा०—हॉ तो हमारा दोष भी वता दो।

मुस०—हाँ मिस्टर, जरा मै भी तो सुनॅू।

बन०—अच्छा तो देखिए, जो आपका भाई था, अपना था, वही जब विलायत से लौटकर आया, तव आप उससे घृणा करने लगे, उससे वचकर चलने लगे, उससे मिलने मे हिचकने लगे, तब वह बेचारा क्या करे? अलग हो जाता है और आपसे चिढ़ने लगता है। इसमे उसका दोष ही क्या है?

मुस०—लेकिन यह बात तो दोस्त! एकदम ठीक नहीं। भला आप

लोग हिन्दुओ में तो बहुत बखेड़ा होता है, लेकिन हम लोगों मे तो न खान-पान, और न ज़ात-पॉत की ही झंझट है, पर तो भी देखता हूँ कि कितने तो आते है तो गले मे बिल्ले के समान मेमो को लटकाये आते हैं और न पूरे साहब ही बन सकते है और न हमसे ही मिल सकते है। धोबी का कुत्ता न घर का, न घाट का। और कितने जो खुदा के फ़ज़ल से इन कंजी ऑख वाली जादूगरनियो से बच जाते है वे भी किसी शैतानी धुन मे मस्त नकेल-टूटे शुतुरो की सी दौड़ लगाया करते है।

बन०—खॉ साहब, आप बारम्बार हिन्दुओ और मुसलमानो को अलग क्यो समझते है? मै तो जनरल बाते कहता हूॅ। मुझको ऐसी तरफ़दारी की बातों से बहुत दुःख होता है।

मुस०—माफ़ कीजिए। आप दोनो आदमियो मे ज़ात-पॉत का ही झमेला लगा हुआ था, इसी वजह से मैंने कहा था।

बन०—सो बात नही है। क्या हममे और क्या आपमे? अधिक दोष हमही लोगो का है।

मदा०—आप लाख कहिए, पर ये नही मानेंगे। (बनवारी से) अरे भाई, तुम उनकी बातो का जवाब क्यो नही देते?

बन०—अच्छा खॉ साहब, कुछ देर के लिए मान लीजिए कि वे ही दोषी है, पर मै एक बात पूॅछता हूॅ कि यदि आपके किसी अङ्ग मे घाव हो जाय, तो आप उसमे मरहम लगावेंगे या चाकू से चीरकर उसमे नमक भरेंगे?

मुस०—नहीं भाई, उस हालत मे तो मरहम ही लगाना वाजिब है।

बन०—अच्छा तो समझ लीजिए कि समाज-रूपी शरीर के ये एक अङ्ग है, तो इनके बुरे (या ज़ख़मी) हो जाने पर आपको सहानुभूति-रूपी दवा लगानी चाहिए या घृणा-रूपी नमक?

मुस०—ठीक है। लेकिन इतने पर भी जो न सँभले ?

बन०—तो समझ लीजिए कि वे दया के पात्र है, न कि घृणा के। पागलो पर लोग तरस खाते है, न कि उनसे नफ़रत करते है।

मुस०—ठीक है, भाई ठीक, मै समझ गया।

मदा०—लेकिन ज़ात-वाली बात तो रह गई।

मुस०—वह सब नानसेंस है बाबू साहब! उसमे क्या धरा है ?

मदा०—आप मुसलमान है। आप लोगो मे भले ही कुछ न हो; पर हम लोगो मे तो यह ज़रूरी बात है।

मुस०—बनवारी बाबू, इसका जवाब आप ही दे सकते है।

बन०—इसका जवाब मै दे चुका हूँ और समय पड़ने पर और भी दे सकता हूँ। रह गई हिन्दू-मुसलमान की बात, सो "ऐज़ इंडियन्स" (as Indians) मै इनको अलग नही समझता।

मुस०—बनवारी बाबू, आपही के समान अगर सबका ख़याल हो, तो हिन्दू-मुसलमान की तफ़ावत मिट जाय।

बन०—समय आ रहा है जब ये ओछे विचार हवा हो जॉयगे। जब तक वह दिन नही आता, तब तक हमको ईश्वर से विनय करना चाहिए कि वह दिन शीघ्र आवे।



दृश्य दूसरा।

[मदारीलाल अपनी बैठक मे बैठे हुक्का सुड़सुड़ा रहे है। पास ही दो-तीन बोतले, प्याली इत्यादि रक्खी है]

मदा०—आज घुरहू के आने मे बहुत देर हो गई। न जाने मर्द आदमी किस धुन मे पड़ा है। अगर अकेले पीने मे लुत्फ़ आता, तो मै उसकी पर्वाह न करता। क्या जाने, घर ही में

पड़ा है या उसी पासिन रॉड़ के तलुओ को चाट रहा है। अच्छा आवे तो बचा, वह झिड़की दूँ कि उसकी नानी ही मर जाय।

(आप ही आप हँसना)

घु०— [नशे की हालत मे घुरहू का प्रवेश] यार मदारी, माफ़ करो भाई, आज तो बहुत राह ताकनी पड़ी।

म०—अच्छा यार, यह तो बतलाओ कि तुम थे कहाँ ?

घु०—वाह यार, तुम भी पूरे घोंघाबसन्त ही निकले। इतना भी न समझो तो यारबासी क्या की ?

म०—बस बस, बहुत दुलत्ती मत झाड़ो। ठीक ठीक उगल दो।

घु०—ऊँह। जाने भी दो, निकालो, कुछ रंग जमे।

म०—(हँसकर) अच्छा चलने दो। अगर तुम्हारे पेट से एक एक बात न निकाल ली, तो मेरा नाम नहीं।

(घुरहू बोतल खोलकर पहले आप पीता है। फिर उसी प्याली मे भरकर मदारी को देता है)

म०—हाँ हाँ, यह क्या किया ? तुम्हारा जूठा पिएँ ?

घु०—वाह ! अमृत जूठा आज ही सुना !

म०—वाह वाह, तुम कौन ज़ात, और हम कौन ज़ात ?

घु०—अजब घुच्चू हो। इस लाल-गङ्गा मे ज़ात-पतङ्गा क्या अड़ङ्गा लगा सकता है ? लेकिन तुम्हारे-ऐसा बेढङ्गा हो तो अलबत्ता दङ्गा कर सकता है।

म०—बस बस, बहुत नङ्गा मत बनो। ज़ात के बारे में मैं हमेशा एक-रङ्गा रहता हूँ।

घु०—अरे ! आज तो तुम पूरे भलेमानस बन गये। अभी उस दिन तो तुमने भट्टी मे बैठे बैठे दिलमहमदा के यहाँ से कबाब

मँगाकर खाया था और आज बेचारी रमजनियाँ कहती थी, उसने तुमको अपनी जूठी ताड़ी पिलाई है।

म०—वह मारा, कहो कैसा उल्लू बनाया! कैसा झट से उगल दिया। कहो उससे क्या क्या बातें हुई?

घु०—(मुँह फेर तथा दाँतों से जीभ दबाकर) अ र र र यह क्या किया? (अपने आप चपत लगाकर) कमबख्त मुँह है या उल्लू की दुम? मदारी से) अच्छा लो, इसको (कबाब बताकर) तो पहले निगलो।

म०—(पीकर) अच्छा बताओ, वह क्या कहती थी? साली पासिन ऐसी बदमाश!

घु०—बस बस, अब दून की मत हाँको। जो तुमको न जानता हो उससे उड़ो। यहाँ तो तुम्हारे भी उस्ताद ही ठहरे।

म०—भाई जो हो। यहाँ तो यह बात है कि ऊपर से तो ज़ात-पाँत, पंच-पंचायतों की दुहाई दो और भीतर मनमाने मौज करो। कौन पूछता है कि तुम्हारे मुँह में कै दाँत हैं।

घु०—हाँ जी, यह ढोंग की बात है। यहाँ तो अपने राम को शराब-कबाब, जात-पाँत और नाज़नीनों की कदमबोसी बहिश्त है।

म०—वाह! ख़ूब कहा, है तो यार बहिश्त ही!

घु०—लेकिन दोस्त, सिर्फ पीने में मजा नहीं आता।

म०—तो यहाँ किस भकुए को अच्छा लगता है, इसीलिए तो मैंने पहले ही मँगा रक्खा है। देखो गरमागर्म है।

(मांस निकालता है)

घु०—अब देखते हैं, तुम भी आदमी हुए जाते हो। अब देखो, कैसी बहार आती है। (खाना-पीना)

[बाहर से किसीका किवाड़ खटखटाना]

घु०—कौन है ?

बाहर से—हम है बनवारीलाल

[मदारी घबराकर बडा-सा मांस का टुकड़ा मुँह मे डालता है और वह कंठ मे अटक जाता है]

घु०—खोल दूँ क्या ?

म०—ऊँ ऊँ। (हाथ से मना करता है और मांस के टुकडे को निगलने की कोशिश करता है। आँखें खिच जाती है और बेहोश होकर गिर जाता है)

घु०—अरे बाप ! यह तो मजे मे मर जायगा, लेकिन बचा घुरहू ! तुम सैत मे चले जाओगे। (घबड़ाकर किवाड़ खोल देता है)

(बनवारीलाल का प्रवेश)

ब०—(चारों ओर देखकर) अरे यह क्या ? ये बेहोश पड़े है। पानी लाओ, पानी।

घु०—पानी कहाँ है ? यहाँ तो यही है (मुँह तथा नाक मे शराब डालता है। मदारी को छीक आती है और मांस का टुकड़ा उचटकर घुरहू पर जा पड़ता है)

म०—हरामजादा, किवाड़ क्यो खोल दिया ?

घु०—अरे यार, मैंने तो समझा कि तुम मर गये। अब अरथी-वरथी के लिए आदमी बुलाऊँ।

(मदारी सिर झुका लेता है)

ब०—क्षमा कीजिएगा। ऐसे समय मे आपको कष्ट दिया। अस्तु, मैं यह कहने के लिए आया था कि आज ही सन्ध्या को जातीय सभा बैठेगी। उसमें शिवप्रसाद बाबू के विषय में विचार किया जायगा। कृपाकर आप भी आइएगा। (प्रस्थान)

म०—(घुरहू से) तुमने आज मेरी नाक कटा दी।

घु०—(हँसकर) चलो जी। हम लोगो की नाक थी ही कहाँ जो

कंठी ? वह तो रमजनियाँ के पैरो पर रगड़ते रगड़ते कब की घिस गई !

म०—(झुँझलाकर) जहन्नुम मे जाओ तुम और वह ।

बु०—अच्छा यार, इस वक्त तो मै जहन्नुम ही जाता हूँ, लेकिन फिर भी याद करोगे । (प्रस्थान)

म०—(आप ही आप) ओह ! क्या करूँ ? खैर, बनवारी सुशील लड़का है, किसीसे नहीं कहेगा । चलूँ, अब कपड़ा-लत्ता पहनूँ । (प्रस्थान)

दृश्य तीसरा ।

[स्थान :—जातीय सभा मे लोग बैठे है । कुछ लोगो के साथ शिवप्रसाद का प्रवेश]

लडको का गाना—जय जय भारत की सन्तानो ।

धीर वीर आदर्श हुए हैं यही जगत के मानो ॥
उनके गुण को छोड़ छोड़ तुम सेवा मेवा जानो ।
मोह-नींद को छोड़ उठो अब निज पौरुप पहचानो ।
मातृभूमि-दुख दूर भगाकर, आशिष लो मनमानो ॥
जय जय भारत की सन्तानो ।

(सबका यथास्थान बैठना)

बन०—(उठकर) महाशय-गण ! अनेकानेक धन्यवाद उस परम पिता परमेश्वर को जिसकी कृपा से आज यह आनन्द का समय उपस्थित हुआ है देने के बाद मैं आप लोगो को भी आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ जो आप लोगो ने कृपाकर इस जातीय सभा को सुशोभित किया । अब मेरी प्रार्थना यह है कि किसी

योग्य पुरुष को सभापति बनाकर सभा का कार्य्यारम्भ किया जाय।

(प्रस्ताव तथा अनुमोदन के बाद सभापति का आसन पर बैठना)

सभापति—मेरे प्यारे भाइयो! इसमे तो सन्देह नहीं कि अपने एक भाई के इस प्रकार सिविल सर्विस पास कर कुशल-पूर्वक लौट आने पर हम लोगो को आन्तरिक आनन्द हुआ है और मेरी इच्छा होती है कि और युवक लोग भी विद्या, कला-कौशल आदि सीख सीखकर अपनी जाति तथा देश का मुख उज्ज्वल करे। पर, मैंने सुना है कि कुछ लोग इसमे जाति का भेद लगाना चाहते है। इसीलिए आप लोगो को कष्ट दिया गया है। अब आप लोग अपनी अपनी सम्मति प्रगट करे।

शिवप्रसाद—मेरे पूज्य सभापति तथा भ्रातृ-वृन्द! कोटिशः धन्यवाद है उस कारुणिक ईश्वर को जिसकी असीम कृपा से मैं पुनः अपनी जन्मभूमि की गोद मे उपस्थित हुआ हूँ। मैं सच कहता हूँ कि प्रवास मे रहने के समय यद्यपि मैं विद्योपार्जन में लगा था, तथापि वहाँ के समाज को देख देखकर मुझे बारम्बार अपने देश तथा आप लोगो का स्मरण होता था और इच्छा होती थी कि कब लौटकर जाऊँ और कब अपने भाइयो का आश्रय पाऊँ। ईश्वर की कृपा से अब वह इच्छा पूर्ण हुई और मै आप लोगो की सेवा मे उपस्थित हुआ हूँ। मै नही समझता कि क्यो आप मुझे आश्रय न देकर दूर कर देंगे। अस्तु, इस विषय पर मेरा कुछ कहना इस समय अनुचित-सा मालूम होता है। इसीलिए मै आप लोगो का सादर सम्मान करता हुआ बैठता हूँ।

एक युवक—साधु साधु! हम लोग नहीं समझते कि इसमें सम्मति की क्या आवश्यकता है। धार्म्मिक ग्रन्थों से यह बात साफ

मालूम होती है कि हम लोगों का विदेशियों से वाणिज्य-व्यापार, खान-पान, व्याह-शादी आदि अनेक प्रकार का सम्बन्ध बहुत प्राचीन काल में भी प्रचलित था, और कहीं भी जाति जाने का उल्लेख नहीं पाया जाता, तो अब हमारे समय में हमारी जाति तथा धर्म में क्या ख़ूबी आ गई जो अब विदेश जाने से ही, नहीं नहीं जहाज़ पर चढ़ते ही जाति चली जाती है ?

एक बुड्ढे सज्जन—हम लोगों की राय होती है कि धार्म्मिक प्रायश्चित्त तथा शुद्धि के बाद शिवप्रसाद बाबू जाति में ले लिये जायँ।

मदारीलाल—(अपने मत के लोगों से) चलिए साहब, अब यहाँ हम लोगों का गुज़ारा नहीं हो सकता।

(उठकर बाहर की ओर चलता है और सामने ही राह पर भागते हुए घुरहू से टकराकर भदभदा कर गिरता है। लड़के ताली पीटते हैं)

कुछ लोग—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

घुरहू—(उठकर देह झाड़ता हुआ) हुआ क्या ? मेरा श्राद्ध हुआ। अब इन बाबू साहब की पितरमिलौनी होगी।

म०—(घुरहू से) अरे कमबख़्त, तुम यहाँ कहाँ ?

घु०—अजी जनाब, सिर्फ मैं ही नहीं हूँ। वह देखिए, वह भी है।

म०—वह कौन ?

घु०—वही रमजनियाँ।

म०—(गिड़गिड़ाकर) अरे यार ! उससे अब तो पीछा छुड़ा। तेरे पैर पड़ता हूँ।

(भागता है और जल्दी जल्दी चलने के कारण गिरता है। लड़के ताली पीटते हैं)

[पटाक्षेप]

ट्रेण्ड टीचर

पात्रः—

१—सन्तदास शिक्षक

२—छगनमल और नाथया नाम के दो लड़के

३—सेठ छोकमल—छगनमल के पिता

४—बडकुलप्रसाद

५—छकौड़ी

दृश्य पहला।

(स्थान—छोकमल सेठ का मकान)

(छगनमल और नाथया को सन्तदास टीचर पढ़ा रहे है)

छगनमल—(स्वगत) आज तो पढ़ने मे दिल नहीं लगता। मास्टर साहब को गप्पो मे लगाना चाहिए। (नाथया को इशारा करता है और मास्टर साहब से कहता है) (प्रगट) आज तो मास्टर साहब अरे, (सम्हलकर) आज तो गुरूजी ! बड़ी गर्मी है।

टीचर—हॉ, अब गर्मी के दिन आये। अब तो दिन प्रति दिन गर्मी अधिक ही होगी। क्या इस साल भी तुम्हारे काका साहब पचमढ़ी जावेंगे ?

छगनमल—जी हॉ, उनकी तैयारी तो हो चुकी है। बस, एक

सप्ताह के भीतर चले जावेंगे। मै भी तो उनके साथ जानेवाला हूँ। वे कहते है, तुम्हारा इम्तहान हो जावे और फिर चलेंगे।

टीचर—इम्तहान तो, दो दिन मे हो जावेगा। परसो से होगा। छोटी क्लासो के इम्तहानो मे लगता ही क्या है? क्यो रे नाथया, तू भी जावेगा क्या?

नाथया—(तुतलाकर) जो जी जी जी हां, गु गु गु ˙ गुरूजी। छगन भइया क क क ˙ ˙˙ कहते है कि तु तु तुम्हे भी ले लि लिल्ल ले चलेंगे। आ आ आपने तो पच पचमढ़ी दे देखी होगी।

टीचर—अरे! हमारी क्या पूँछता है। ऐसा कौन सा शहर है जो हमने नहीं देखा? हम तो वहाँ दो तीन बार हो आये है।

छगनमल—गुरूजी! आप वहाँ कहाँ ठहरे होगे?

टीचर—तुम वहाँ के तहसीलदार साहब को जानते हो? (छगन मुँह की तरफ देखकर रह जाता है) तुम नहीं जानते। तुमने कदाचित् उन्हे देखा भी न होगा। वे तुम्हारे बाप के साथ के पढ़नेवालों मे से है। वे हमारे शिष्य है। हमने उनको पढ़ाया, उनके काका को पढ़ाया और उनके मामा को भी पढ़ाया है जो आजकल कहीं ई० ए० सी० है और आजकल उनका लड़का रामदीन हाई स्कूल मे हमारे पास पढ़ रहा है।

छगन०—गुरूजी! आप ही के सबब तो दूर दूर से बहुत से लड़के पढ़ने आते है।

टीचर—अरे! यहाँ के स्कूल के मैनेजर को जानता ही कौन है? हमको २६ साल इसी स्कूल की नौकरी करते हो गये। हमारे पढ़ाये आजकल बड़े बड़े ओहदो पर काम कर रहे है। आज-

कल किसीकी तीसरी और किसीकी चौथी पीढ़ी हमारे पास पढ़ रही है। तुम उस छकौड़ी को जानते हो ?

छगन०—जी हाँ, वही नहीं, धिनई पाँडे के पास जिसका मकान है ?

टीचर—हाँ हाँ, वही। तो. (कुछ विचारकर) उसका आजा मक्खनलाल चौबा, जो बूढ़ा है, उसे घर के सामने बैठा तुमने कभी देखा होगा, हमारा शिष्य है। अच्छा तो देखो, उसकी ये तीसरी पीढ़ी हुई। और उसका मामा धन्नूलाल खरया भी हमारे पास पढ़ा है। तो उसके हिसाब से चौथी पीढ़ी हुई न ? ऐसे कई लड़के मिलेंगे जिनके बाप को हमने पढ़ाया है और जिनके आजा को हमने पढ़ाया है। यहीं न देखो। तुम्हारे बाप हमारे शिष्य हैं और उनके मामा भी। अब कहो, वे तुम्हारे नाना हुए, जो आजा के बराबर है।

छगन०—जी हाँ गुरूजी ! यही हाल है।

टीचर—हाँ तो, कौन सी बात कह रहे थे ? ये बातें निकली कहाँ से ?

(टीचर और छगन दोनों सोचते हैं)

नाथया—गु . गु गु गुरूजी ! प .प . पचमढ़ी जाने का इनने कहा था।

टीचर—हाँ हाँ, ठीक। वहाँ हमारे केवल एक तहसीलदार ही नहीं, और भी कई शिष्य हैं।

छगन—तो फिर आपको तकलीफ़ कुछ न हुई होगी।

टीचर—नहीं जी, तकलीफ़ वहाँ काहे की। तहसीलदार साहब .खुद तो हमको यहाँ से ले गये थे। अभी पारसाल की तो बात है। स्टेशन से ही उनके साथ मोटर पर गये थे। जब वहाँ पहुँचे, तो सब लोगों ने उनकी अपेक्षा हमारा आदर-सत्कार अधिक किया।

छगन—क्यों नहीं। उनने देखा होगा, गुरूजी ! कि तहसीलदार साहब जिनका आदर कर रहे हैं, तो अपनेको भी करना चाहिए।

टीचर—यह समझो कि हमको कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी। रुख देखकर उनके नौकर-चाकर हमारा सब काम कर दिया करते थे। आश्चर्य नहीं, तहसीलदार साहब ने कह दिया होगा कि ये हमारे गुरू हैं, इनका सत्कार अच्छी तरह करना।

छगन—बड़ों के नौकर बड़े बुद्धिमान भी तो होते हैं।

टीचर—हाँ, क्यों नहीं। सब काम हाथ पर देखो। हम तो वहाँ अपना आदर-सत्कार राजा-महाराजाओं के समान देखकर हैरान हो गये थे। कुछ भी काम न कर सकते थे। कोई हाथ धुला रहा है, कोई पाँव धो रहा है, कोई कपड़े से पाँव साफ़ कर रहा है। एक धोती लिये खड़ा है, दूसरा धोती धो रहा है। और, खाने के मारे तो नाक में दम थी। सुबह हुआ, मुँह-हाथ धोया कि चा, दूध, जलेबी आदि सैकड़ों चीज़ें तैयार हैं। जो चाहे सो खाओ-पीओ। थोड़ी ही देर हुई कि फिर कुछ और दूसरी चीज़ें आ गईं। १०-११ बजे कि भोजन की तैयारी हुई। वहाँ देखो, तो १०-२० तरह की खट्टी-मीठी चीज़ें और कोई २५ तरह की तरकारी। हमने सोचा कि कहीं ऐसा न हो कि अजीर्ण हो जावे। रात तक योंही चलता रहता था। दो-दो, तीन-तीन घण्टे के बाद कुछ न कुछ खाने के लिए तैयार रहता था। हमने उनसे कहा कि हमारे लिए इतना करने की क्या ज़रूरत है पर वे काहे को सुनते हैं। वे कहते थे कि आप हमारे यहाँ कब कब आते हैं, हम तो कुछ भी नहीं कर सकते। आपके ही आशीर्वाद से यह सब हमने पाया है, फिर आपका ही सत्कार न करें, तो किसका करेंगे।

छगन—जी हाँ, शिष्य का तो यह काम ही है कि गुरू की सेवा-शुश्रुषा करे।

टीचर—हमारे एक नहीं, सभी शिष्य ऐसे हैं। इसलिए तो हम कहीं बाहर जाते नहीं। एक कहता है, हमारे यहाँ चलो, दूसरा कहता है, हमारे यहाँ। किस किसकी सुने ?

छगन—सभी आपका सत्कार करना चाहते हैं। आपको भी तो उनकी बात मानना ही पड़ती होगी।

टीचर—फिर, नाहीं करते बनता है ? एक-एक, दो-दो दिन सभी का मान रखना पड़ता है। वहीं का न सुनो। एक दिन उनके यहाँ कुछ अँग्रेज बैठने आये। हम अपने सीधे बैठे रहे। हमको क्या करना किसीसे बात-चीत करके। यहाँ-वहाँ की बातचीत होते होते उनमें से एक ने पूँछा कि ये कौन है ? तहसीलदार साहब ने हमारा परिचय दिया। हमारा नाम सुनते ही वह कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया और उसने बड़ी अदब से सलाम की और "O my dear Pandit" कहकर हमसे हाथ मिलाया। मुझे भी फिर स्मरण आया कि मैंने उसे हिन्दी पढ़ाई थी। मैं उसी दिन आनेवाला था; पर उसने नहीं आने दिया। फिर दो दिन तक उनके यहाँ दावत हुई।

छगन—गुरूजी ! उनके यहाँ आपने क्या खाया होगा ?

टीचर—साहिब लोगों के यहाँ अपने खाने का क्या होता है ? बस, तरह तरह के फल, मेवा आदि सैकड़ों चीजें वहाँ थीं। फिर जब मैं आया, तो सब लोग मुझे पिपरिया स्टेशन तक पहुँचाने आये।

नाथया—गु.. गु . गुरूजी ! प.. प पंडित तो बा . ब . ब्राह्मणों से कहते हैं, उ ..उस अ . अँग्रेज़ ने आपसे प .. . प .. ..पंडित क्यों कहा ?

टीचर—तुझे मालूम ही क्या है रे ! अरे, हम ब्राह्मण नहीं हैं, तो क्या पंडित नहीं कहे जा सकते ? पंडित का अर्थ है विद्वान्। कोई भी जाति का क्यों न हो, यदि वह विद्वान है तो उसे पंडित कहना ही चाहिए। अंग्रेज़ लोग पंडित का ठीक अर्थ जानते है, इसलिए वे लोग उसीसे पंडित कहते है जो पडित कहलाने के योग्य होता है। वे अज्ञान मनुष्यों के समान आँख बंद कर काम थोड़े ही करते है।

छ०—आपने तो कई अंग्रेज़ो को पढ़ाया होगा। आपको सभी पंडित कहते होंगे।

टी०—और नहीं तो क्या, हमको सभी पंडित कहते है। पर इसलिए नहीं कि एक कहता है तो उसीको देखकर दूसरा भी कहता होगा, वे लोग बुद्धिमान् है, बुद्धि का उपयोग करना जानते है। मैंने सैकड़ो अंग्रेज़ो को पढ़ाया और उन्होंने जो सर्टीफिकेट दिये है उनको तुम किसी वक्त देखना। प्रत्येक ने उत्तम शिक्षक और धुरन्धर विद्वान् के सिवाय और कुछ नहीं लिखा है।

छ०—जी हाँ, इसमे क्या शक। आपको तो चीफ कमिश्नर और डाइरेक्टर तक ने उत्तम शिक्षक कहा है।

टी०—हाँ, और इनसे भी बढ़कर बड़े बड़े पादरी और अँग्रेज़ो के सर्टीफिकेट दिये हुए है जिन लोगो की गणना आजकल पृथ्वी भर के अच्छे अच्छे विद्वानो मे है। हिसाब लगाया जाय तो हमारे पढ़ाये हुए सैकड़ो बैरिस्टर, सैकड़ो मजिस्ट्रेट, और सैकड़ों प्रोफेसर निकलेंगे। वकील, मास्टर आदि की संख्या तो अगणित होगी। कई अच्छे अच्छे जमींदार और साहूकार है। सभी हमको एक-सा मान देते है। हम तो अपने को

इसीमे सुखी समझते हैं कि हमारे सब शिष्य आनन्द मे हैं और एक समान गुरु-भक्त है।

छ०—गुरूजी ! आश्चर्य नही कि आपके एक-दो शिष्य पृथ्वी के सब देशो मे होगे।

टी०—हॉ हॉ, सम्भव है, बहुत सम्भव है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका मे मेरे कई शिष्य है। जापान में भी पॉच-सात से कम न होगे। यदि खोजकर देखा जावे तो सभी कही मिलेगे।

नाथया—गु गु गु गुरूजी ! छ ..छि छि छविपुर के वै . वै बैरिस्ट ट ट . टर भी तो आपके शि . शि शिष्य है।

टी०—हॉ, वे भी है। वे तो हमारे सबब, जब कभी हम जाते हैं सैकड़ो रुपयों का काम छोड़ देते है।

छ०—गुरुजी ! एक वार आपने उनका हाल सुनाया था। फिर से तो कहिए।

नाथया—हॉ हॉ, गु गु गुरूजी ! क.. क . कहिए।

टी०—नही नहीं, अब वहुत समय हुआ। कहॉ से कहॉ बात निकल आई। अभी हमको और भी कई काम करना है।

छ०—आपको सदैव काम लगा रहता है। यह और सुना दीजिए।

टी०—अरे, इन एक का क्या, सैकड़ो ऐसे हाल हुए है। कभी पूँछना हमसे, सुनावेगे। कई का हाल तो हमने तुम लोगों को क्लास मे भी सुनाया है।

छ०—जी हॉ। तो, छबिपुर आप कब गये थे ? कहते हैं, रास्ते में कोई एक इन्सपेक्टर मिल गये थे।

टी०—हॉ, यही चिरागअली जो तुम्हारे साथ पढ़ता है, इसीका काका था वह। जब हम छबिपुर की स्टेशन पर उतरे, तो उसने

हमको देख लिया। वह कहीं सर्कारी काम के लिए दौड़े पर जा रहा था। उसने अपने बदले दूसरे को भेज दिया और हमारे पास आ गया। हमने पूँछा, तुम यहाँ कहाँ? उसने कहा, अभी थोड़े दिन से यहीं आ गया हूँ। वहीं हमारे दो-तीन शिष्य और भी थे। वे भी पुलिस-इन्सपेक्टर थे। सबने हमको घेर लिया। देखनेवालों ने समझा कि इस मनुष्य को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। इतने में वे वैरिस्टर भी आ पहुँचे। वे हमको पुलिस-वालों के बीच में देखकर बड़े हैरान हुए। उन्होंने एक पुलिस-इन्सपेक्टर से पूँछा कि मामला क्या है, गुरूजी को क्यों घेर रक्खा है। सबने कहा कि ये हमारे भी गुरू हैं। तब वे ख़ूब हँसे और अपने घर ले गये। हमारा सामान उन्हीं लोगों ने ख़ुद अपने हाथ से उठाया। रास्ते में एक ई० ए० सी० मिले। वैरिस्टर साहब ने उनको देखकर मुझसे कहा कि ये इस नगर के आदर्श पुरुष हैं। आप इनको पहिचानते हैं? मैंने कहा, भाई! मैं तो नहीं पहिचानता, होंगे कोई। पर ज्यों हीं वे मेरे पास आये, उनने मुझसे साष्टाङ्ग दण्डवत् की। पास से उनका चेहरा देखने पर मुझे स्मरण आया कि ये तो मेरे पुराने शिष्य हैं। मैंने उनको पैरों से उठाया। वैरिस्टर साहब ने पूँछा कि आप तो कहते थे कि इनको पहिचानते ही नहीं हैं। मैंने कहा, पहिले ये बिलकुल दुर्बल थे, अब तो मोटे-ताजे हो गये हैं और दाढ़ी वगैरः रखवा ली है। इसपर उन्हीं ई० ए० सी० ने कहा कि मैं आपका वही परम आज्ञाकारी शिष्य लक्ष्मनप्रसाद हूँ जिसे आप लच्छू लच्छू कहा करते थे। यह सुनकर सब ख़ूब हँसे। भाई, वहाँ भी आदर-सत्कार के मारे हम बड़े तंग आ गये थे। मुहम्मद शफ़ीउल्ला ने सिर्फ़ हमारे ही लिए

एक ब्राह्मण नौकर रक्खा और अलग मकान मे भोजन बनवाया। फिर उसका भी कहना मानना ही पड़ा। इस बार तो हमे दो-चार निमन्त्रण अस्वीकार करना पड़ा। वहाँ से हम बड़ी मुश्किल से आ सके थे। दिन भर सब लोग घेरे रहते थे। एक दिन, रात को बहुत कुछ कहने-सुनने पर बैरिस्टर साहब ने आने दिया।

छ०—तो गुरूजी ! आप छिपकर आये होगे ?

टी०—दूसरा उपाय ही क्या था ? इसीसे अब हमने यहाँ-वहाँ जाना छोड़ दिया है। दूसरे अब हमको समय भी तो नहीं मिलता। पचास काम लगे है। सब हमी को करना पड़ते है। स्कूल का काम ही तो न मालूम कितना हमको करना पड़ता है। ये नये नये मास्टर रख लिये जाते है। न तो ये पढ़ाना जानते और न काम करना।

छ०—हेड-मास्टर भी तो आपही से पूँछकर कोई काम करते है।

टी०—हेड मास्टर जानते ही क्या है ? वे तो सिफ़ारिश से बना दिये गये है।

छ०—कल हमारे क्लास-टीचर भूगोल के घण्टे मे नही आये थे, तो वह घण्टा हेड मास्टर ने लिया था। उनने घर से यह सोच लाने को कहा है कि पृथ्वी के भीतर गर्मी है या नहीं। तो आप बतला दीजिए कि गर्मी है या नही ?

टी०—हेड मास्टर तो बेवकूफ है। उनसे तुम कहना कि साहब, पृथ्वी के भीतर न तो हम गये और न आप गये, और न आपके पूर्वज गये, फिर हम क्या जाने कि पृथ्वी के भीतर गर्मी है अथवा नहीं।

छ०—पर, पुस्तको में तो लिखा है कि गर्मी है।

टी०—क्या जो कुछ पुस्तको में लिखा है सो सब ठीक है ? यही

तो बात है कि मास्टर लोग लड़कों को ऊटपटाँग बाते बतलाया करते हैं और इसीसे वे पहिले के समान विद्वान् नही निकलते।

ाथया—इस . स . इसीलिए तो गु . . . गु. . .गुरूजी ! मुझे ये ब .ब बाते याद नही र . र रहती।

०—ठीक है, याद रहे तो रहे कैसे ? कोई बुद्धि की बाते हो तो याद भी रहे। आजकल के ये नये मास्टर लोग व्यर्थ की बातो से लड़को के मग़ज़ को बिल्कुल नष्ट कर डालते है।

गन—जी हाँ। पहिले के मास्टर लोग बड़ी अच्छी तरह पढ़ाते थे।

०—गुरू की ओर भक्ति हो, तो कैसे हो ? पहिले अच्छी अच्छी काम की बाते पढ़ाई जाती थी, आजकल के समान बिना सिर-पैर की नही। नगी आँख से इतने तारे दिखते है, तो यह पत्थर इस इस तरह से बना है, कही नेचर-स्टडी पढ़ो, तो कहीं अमुक बात सीखो। सैकड़ो बाते बालको के सिर मे कैसे समा सकती है ?

गन—(स्वगत) बस, ज़रा ही बात मे लगाया कि फिर नाही का नाम नहीं। (प्रगट) जी हाँ। (बात काटकर) नाथया ! भीतर घड़ी मे देख आना, क्या बजा है। (नाथया जाने पर होता है और मास्टर साहब अपनी घड़ी देखते है) अच्छा, रहने दो, गुरूजी के पास तो है घड़ी।

०—ओफ, ओ ! ठीक चार घण्टे व्यतीत हो गये। कहाँ की बाते निकाली जी। हमको बिल्कुल ख्याल ही न रहा। अच्छा, अब चलते है।

ान—बहुत अच्छा। (छगन और नाथया उठकर हाथ जोड़ते है और मास्टर जाने पर होते है। इतने मे ही बाहर से छोकमल सेठ आते है। छगन और नाथया पुस्तकें उठाकर भीतर चले जाते है)

दृश्य दूसरा ।

(छोकमल को जो स, ग, ष का उच्चारण हमेशा श करते थे और 'नाना प्रकार से' जिनका तकिया कलाम था, आते देखकर मास्टर साहब आगे जाने से रुक जाते है)

छोकमल—कहिये गुरूजी ! नाना प्रकार से अपने शिष्यो का सबक हो गया क्या ?

टीचर—जी हॉ। अभी तो खतम हुआ है। आज तो यहॉ-वहॉ की बाते बताने मे चार घण्टे व्यतीत हो गये।

छोक०—कहिए, नाना प्रकार से यह छगना कैसा पढ़ता है ? इस साल तो यह नाना प्रकार से पास हो जावेगा या नहीं ?

टी०—मेरे पढ़ाये लड़के कभी भी फेल होते है ?

छोक०—हॉ, सो तो (ना०) मुझको विश्वास है और हमारे मुनीम का लड़का नाथया भी (ना०) पास हो जावेगा ?

टी०—हॉ हॉ, वह भी हो जावेगा।

छोक०—मै तो सदैव (ना०) सबसे आपके विषय मे सिफारिश किया करता हूॅ कि (ना०) सब लोग आपही के पास (ना०) लड़कों को पढ़ाने के लिए भेजा करे।

टी०—सो ठीक है, आप हमारे शिष्य हैं, आप न कहेगे तो कौन कहेगा; पर अब मुझे समय भी तो नही मिलता। सैकड़ो आदमियो ने मुझसे पढ़ने के लिए कहा, पर मैं नाहीं कर देता हूँ।

छोक०—हॉ, सो सत्य है। आपके पढ़ाये लड़के (ना०) सबके सब

जहाँ कोष्ठक के भीतर 'ना०' लिखा है वहॉ सेठजी का तकिया कलाम 'नाना प्रकार शे' समझना चाहिए।

सहज ही मे पास हो जाते है ; इसीलिए तो (ना०) सब आपसे विन्ती करते है।

टी०—अब वृद्धावस्था भी आई, इससे मैने अधिक काम करना छोड़ दिया है।

छोक०—सो ठीक ही किया। अब आपको (ना०) कुछ दिन आराम करना चाहिए। आपके बराबर नौकरी (ना०) किसी ने भी नही की। चाहे कोई माने या न माने, मै तो नाना प्रकार से सत्य ही कहता हूँ कि आपके बराबर (ना०) विद्वान् कोई भी नहीं है।

टी०—किसी दिन ,मैं आपको अंग्रेजो के दिये हुए सर्टीफिकेट बताऊँगा। उनमे आप देखिए, उन लोगो ने मेरे विषय मे क्या लिखा है।

छोक०—नही साहब, मै विना देखे (ना०) कह सकता हूँ कि आपके बराबर विद्वान् कम से कम अपने शहर मे तो (ना०) नही है। आज इस बात पर मुझसे और सरूपसिंह साहब से (ना०) बड़ी बहस हुई। वे कहते थे कि असल विद्वान (ना०) वही है जो चाहे एक ही विद्या या भाषा जाने , पर (ना०) उस एक ही मे पूरी रीति से पारंगत हो। मैने कहा, मै ऐसा विद्वान् बतला सकता हूँ , पर (ना०) वे मेरा कहना मानते ही न थे। उनने (ना०) एक दृष्टान्त दिया कि ऐसे विद्वान (ना०) अभी तक एक दो ही हुए है, जो एक शब्द के अर्थ के लिए पचास शब्द बतला सके। मैने (ना०) कहा कि हमारे गुरू सन्तदास ऐसे ही है। उनसे (ना०) तुम चलकर पूँछो। वे बतलावेगे।

टी०—अच्छा फिर ?

छोक०—फिर, उनने पूँछा कि वे किस भाषा मे (ना०) पारगत

है। मैंने कहा, हिन्दी का तो (ना०) मुझे मालूम है, और भाषाओं का उनसे पूछकर बतलाऊँगा।

टी०—फिर क्या कहा ?

छोक०—कहने लगे कि (ना०) हिन्दी है ही कौन सी भाषा ?

टी०—फिर तुमने क्या कहा ?

छोक०—मैंने कहा, अरे ! चलो, वे तुमको (ना०) हिन्दी दस साल पढ़ा सकते है।

टी०—दस ही क्यों, सौ साल। मैंने सैकड़ों अंग्रेजों को हिन्दी पढ़ाई है। हिन्दी का साहित्य उसने देखा भी है। हमारा मुक़ाबिला कराना एकाध दिन। मैं फिर देखूँगा। हिन्दी, संस्कृत और अँग्रेजी मे वह कर ले बातचीत मुझसे। और

छोक०—हाँ फिर, सुनिए तो नाना प्रकार शे।

टी०—अच्छा कहो।

छोक०—जब मैंने उससे 'चलो' कहा तो (ना०) उसने मेरा यही शब्द पकड़ लिया और (ना०) कहा कि अच्छा, तुम्हारी हिन्दी मे इसी शब्द के अर्थ के दूसरे पचास शब्द निकल आवें तब जाने कि हाँ (ना०) हिन्दी भी कोई भाषा है।

टी०—तुमने नहीं कहा, यदि कोई बतला दे, तो ?

छोक०—सो तो मैंने नाना प्रकार शे कहा।

टी०—फिर क्या बोला ?

छोक०—कहा कि (ना०) जितने शब्द बतलाओगे, उसके पाँचगुने रुपये (ना०) दूँगा ?

टी०—फिर तुमने वचन नहीं ले लिया ?

छोक०—फिर, मुझे भी तो (ना०) वचन देना पड़ता कि यदि कोई न बतला सका तो मैं (ना०) २५०) रु० दूँगा।

टी०—अरे, तुम बनिया ही रहे। उसी समय हमको क्यो नही बुलवा लिया ?

छोक०— अभी क्या गया है ? अभी (ना०) बतला दीजिए।

टी०—उसने पचास शब्द पूछे है ?

छोक०—हाँ।

टी०—तुम्हे पचास के बदले ६० और ६५ लिखवाये देता हूँ। जाकर उसको बतलाना और उसकी साहिबी भुलवा देना। हो सके तो मुझे भी साथ ले चलना।

छोक०—बहुत अच्छा, लिखवा दीजिए। (कागज़-पेन्सिल निकालता है। मास्टर बोलते है। छोकमल लिखता जाता है)

टी०—अच्छा, लिखो ।

छोक०—बोलिए ।

टी०—नम्बर डालते जाना।

छोक०—बहुत अच्छा।

टी०—जब ६५ नम्बर आ जावे, तब हमसे कह देना। फिर हम बस करेंगे। शायद वह और भी ज्यादा पूछेगा तो फिर बतलावेगे।

छोक०—जो आज्ञा।

टी०—अच्छा 'चलो' से ही शुरू करो। लिखो नम्बर एक। (एक किताब पाकट से निकालकर देखते है और बोलते जाते है)

छोक०—जी हाँ, बोलते चलिए।

टी०—(१) चलो, (२) बढ़ो, (३) टिसको, (४) टीनपाट कसो, (५) टीन होओ, (६) रास्ता जोतो, (७) रास्ता लो, (८) रास्ता पकड़ो, (९) आगे देखो, (१०) आगे बढ़ो, (११) टरो, (१२) करिया मुँह करो, (१३) निकलो, (१४) रफूचक्कर

होओ, (१५) हटो, (१६) बस, दया करो, (१७) कृपा करो, (१८) मेहर्बानी करो, (१९) पधारो, (२०) लम्बे होओ, (२१) छू होओ, (२२) डेरा कूच करो, (२३) परावर्तित होओ, (२४) प्रस्थान करो, (२५) बिदा होओ, (२६) उठ जाओ, (२७) कृष्ण मुख करो, (२८) भगो, (२९) टरकिये, (३०) गच्छ, (३१) डगरो, (३२) उड़ दो, (३३) हुड़को, (३४) टिसकन्ताम, (३५) जाओ. (३६) तन दो, (३७) मार्ग गहो, (३८) स्थानान्तर करो, (३९) राह लो, (४०) सिधारो, (४१) भगो न, (४२) डेरा-बसला बाँधो, (४३) डंडे-कुण्डे उठाओ, (४४) टटिया-पुँजिया उठाओ, (४५) रास्ता नापो, (४६) टिसक लगो, (४७ चलते बनो, (४८) रास्ता देखो, (४९) पच्छे फिरो, (५०) पीठ दिखाओ, (५१) (इशारे से) हूँ (५२) तशरीफ ले जाओ, (५३) सटको, (५४) आँख की ओट होओ, (५५) तशरीफ का टोकना ले जाओ, (५६) चल, चल, (५७) फरार होओ, (५८) अच्छा तो बढ़ो, (५९) पैर उठाओ, (६०) यात्रा करो, (६१) महायात्रा करो, (६२) रिङ्ग दो, (६३) काला मुँह करो, (६४) (इशारे से) बस करो, (६५) अब क्षमा करो, महाराज।

छोक०—बस कीजिए, हो गये।

टी०—कितने हुए ?

छोक०—पूरे पैंसठ हुए नाना प्रकार शे।

टी०—कहो, बात की बात मे लिखा दिये कि नही ?

छोक०—जी हाँ, क्यो नहीं ? अब देखिए (ना०) सरूपसिंह का सरूप बिगाड़ूँगा।

टी०—अरे, अभी क्या हुआ है ? मै इसी एक के नही, किसी भी शब्द के सैकड़ो समानार्थी शब्द बतला सकता हूँ।

छोक०—मुझे तो पूरा विश्वास था कि आप (ना०) अवश्य ही

टी०—क्या तुम जानते हो छकौड़ीलाल, ये फाक्स कौन है ?

छ०—जी नहीं। आप अवश्य जानते होंगे। सुना है कि ये बीस साल पहिले यहाँ कुछ दिन रह गये है।

टी०—अच्छा, मालूम हुआ। स्मरण आया। ये तो हमारा शिष्य है। इसको, एक माह मे, हमने हिन्दी सिखा दी थी। आज हमारा छोटा लड़का कहता था कि आपसे मिलने एक साहिब आये थे, आप घर थे नहीं, सो लौट गये। हो न हो, यही आये होगे।

बड़०—पर, ये तो बहुत बड़े आदमी है, और अँग्रेज़ है। वे काहे को दूसरे के यहाँ जाने चले है।

छ०—हाँ, तो क्या हुआ। गुरू भी तो कोई चीज़ है। अँग्रेज़ लोग अपने गुरू को हद से ज़्यादा चाहते है।

टी०—हाँ, तुम्हारा कहना ठीक है। हम तो इन्हे बहुत छुटपन से जानते है। इनके बाप को भी तो हमने हिन्दी पढ़ाई थी। इनकी माँ ने भी कुछ दिन हमसे हिन्दी सीखी थी।

छ०—लीजिए, तब अवश्य ही ये आप के घर आज गये होगे।

टी०—बहुत दिन की बात भूल जाते है। इन्ही के मामा थे डाइरेक्टर जिनने हमको ट्रेण्ड टीचर का सर्टीफिकेट दिया था।

बड़०—तो क्या आपको आजकल के समान ट्रेनिङ्ग मे नहीं जाना पड़ा ?

छ०—अरे भाई! ट्रेनिङ्ग की जरूरत तो उनको होती है जो कुछ नही जानते और मास्टर बन जाते है। जो स्वयं ही सब बातें जानते हैं, पद्धति जानते है और जिनमें दूसरो को ट्रेण्ड बना देने की हिम्मत है उनको ट्रेनिङ्ग मे जाने से क्या लाभ ?

बड़०—पर सुनते है, अब तो यह नियम हो गया है कि सबको ट्रेनिङ्ग मे जाना ही चाहिए।

टी०—यह नियम तो पहिले से ही है। वह तो खास हमारे लिए तोड़ा गया था। अब देखो न, ट्रेण्ड करने वाले कौन है ? सब हमारे शिष्य। फिर पढ़ जाने से थोड़े ही कुछ होता है। असल मे तो अनुभव चाहिए।

छकौ०—जी हाँ, अनुभव पूछा जाय तो आपके बराबर किसीको न होगा। सच मानना यह बात, बड़कुल !

बड़०—नही तो आप एक काम कीजिए। कोई पुस्तक लिख जाइए जिसमे अपने अनुभव की सब बाते लिखी रहे।

टी०—हमको इतना समय कहाँ है, भाई ! हाँ, तुम लोग कुछ करो, तो हो भी सकता है।

छकौ०—आप एक मासिक पत्र निकालनेवाले थे न ?

टी०—हाँ, वह विचार तो मेरा पक्का है। मैने कई लोगो से कहा कि वे लोग यह काम अपने हाथ मे ले, पर वे कुछ भी नही करते। अब मै ही इस काम को शुरू करूँगा। तुम लोग सब हो ही। काम शुरू भर हो जाना चाहिए, फिर चल निकलने मे देरी नहीं है।

बड़०—ग्राहक-संख्या बढ़ जाय, फिर चल निकलने का कुछ भी डर नहीं।

छकौ०—ग्राहको का क्या डर ? अरे भाई ! आपके इतने शिष्य है कि अगर सब लोग एक एक प्रति लेगे, तो हजार और लाख पर नम्बर पहुँचेगा।

टी०—हाँ, यह तो हमको विश्वास है। उसका नाम हम 'पूर्व-प्रकाश' रखनेवाले है।

छकौ०—जी नही। आपके नाम से, यदि उसका नाम चलेगा तो बहुत जल्दी ग्राहक बढ़ेगे, क्योंकि आपका नाम सब जानते है।

टी०—अच्छा, एक दिन सब बैठकर विचार करेगे।

छकौ०—(बड़कुल का हाथ दबाकर इशारा करता है कि चलो, चलें) (प्रगट) बहुत अच्छा, चलते हैं हम लोग।

टी०—(दोनो हाथ जोड़ते हुए) अच्छा।

(सन्तदास एक ओर निकल जाते हैं)

छ०—अरे, भाई! इनसे कोई पेश थोड़े ही पा सकता है। अभी तुम अगर खड़े रहते, तो रात चाहे व्यतीत हो जाती, पर इनकी बातें व्यतीत न होती।

बड़०—जब मन बहलाना हो, तो कोई इनके पास आ जावे।

छ०—अरे ये बड़े टेढ़े भी है। बात-चीत के समय इनसे अगर कोई मास्टर साहब कह दे तो बहुत चिढ़ते है। लड़के इनको 'सन्डास' कहकर चिढ़ाते है।

बड़०—क्यो? सन्डास कहने से ये क्यो चिढ़ते है?

छ०—तुमको नहीं मालूम, सुनो। एक बार ये एक अँग्रेज़ को पढ़ाने गये थे। उसने इनका नाम पूछा। तो इनने उसे अपना नाम 'सन्तदास' बतलाया। तुम जानते ही हो कि अंग्रेज़ लोगो से हिन्दी नामो या हिन्दी शब्दो का ठीक ठीक उच्चारण करते नही बनता। इनका नाम सुनकर उसने कहा 'क्या मि० सन्डास'? इनने उत्तर दिया 'हॉ'। अब एक दिन वही अंग्रेज़ इनके पास स्कूल मे आया। इनको देखकर उसने कहा, "गुडमार्निंग मि० सन्डास"। फिर क्या या। ये बड़े झेंपे। सब लड़के हॅसने लगे। तभी से कभी कभी लड़के इनको खूब चिढ़ाते है।

बड़०—ये आत्म-प्रशसी भी तो खूब है।

छ०—अरे खूब क्या? ये उसके अवतार ही है। इसीलिए तो, मैने कहा था क आप उस पत्र या पत्रिका का नाम अपने नाम से रखिए। मेरे ऐसे कहने मे दो बातें थीं। एक तो

यही कि वे अपना नाम ख़ूब चाहते है, और दूसरे, 'सन्तदास मैगज़ीन' को इनके अंग्रेज़ शिष्य 'सन्डास मैगज़ीन' पढ़ेंगे।

बड़०—क्यो जी! इसे इतनी भी बुद्धि नहीं है कि दूसरे लोग इसकी बातो को सुनकर मन मे क्या सोचते होवेंगे।

छ०—अरे इतना होता तो ये एक ही बात को पचास बार क्यों बतलाते? मुझसे इनके एक पुराने शिष्य ने जो लगभग १२ साल पहिले इनके पास चढ़ा था, कहा कि तुमको वे पचमढ़ी और छविपुर का हाल कभी बतलाते है या नही? मुझे सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि सन्डासजी तो कहते थे कि हम पारसाल गर्मी की छुट्टी मे गये थे, पर वही हाल इनको १२ साल पहिले बतला चुके है। यह बात क्या है? मालूम हुआ कि यह सब गप्प है। लड़को को कभी कभी आप झूठमूठ ईरानी, तुरानी सुनाया कहते है।

बड़०—पर क्यो जी! अंग्रेज़ लोग तो अब भी इनको सन्डास कहते होगे?

छ०—नही नही। उसी समय से इनने अपना नाम बदल दिया। औरो के जैसे उपनाम होते है वैसेही इनने भी अपना उपनाम 'पंडित' रख लिया, यद्यपि वे इस नाम को सिवाय अंग्रेज़ के और दूसरो के सामने नही कहते।

बड़०—सो ठीक ही करते है, नहीं तो पोल न खोल दी जाय।

छ०—किसी दिन तुम हमारे साथ चलना, फिर हम उनकी लन्तरानी सुनवावेंगे। अभी उन्होने व्याख्यान का हाल नहीं बतलाया। व्याख्यान मे ये अपनी ही जोतते है। तुमने दूसरो के व्याख्यान सुने होंगे। अक्सर व्याख्यानदाता प्रशंसा के सम्बन्ध मे दूसरे का दृष्टान्त देता है, अपना कभी नही, पर इनके यहाँ सदैव अपना राग और अपनी ढफली काम मे लाई जाती है।

बड़०—ठीक है, दृष्टान्त ढूँढ़ने कहाँ जाय बेचारा। समय तो मिलता नहीं। इसलिए सदैव अपना ही दृष्टान्त देता है।

छ०—नहीं, फिर कहते क्या है कि हम अनुभव की बातें बतलाते हैं।

बड़०—सो बिलकुल सत्य समझो, मित्र! टीचर का काम ही यह है कि लड़कों को जो बात बतलाना हो उसे सामने पेश करे। यदि वे और किसीका उदाहरण दें, तो शायद लड़के उसे असत्य समझें, इसीलिए वे अपना ही उदाहरण देना ठीक समझते है कि जिस किसीको देखना हो तो साथ रहकर देख ले।

छ०—क्षमा करना, भूल गया। इसीलिए वे ट्रेण्ड टीचर कहाते हैं। हम तुम भी तो ट्रेण्ड हैं, पर नहीं। जैसे 'विद्यासागर' कहने से एक ही सुप्रसिद्ध विद्यासागर का बोध होता है, वैसे ही ट्रेण्ड टीचर से इन्हीं सन्डास स्वामी का बोध होता है।

बड़०—बस करो, बहुत हुआ। चलो यहीं से अन्दर चलें, शायद लेक्चर शुरू हो गया। (दोनो एक तरफ़ से निकल जाते हैं)





बिना मरे स्वर्ग नहीं दिखता

पात्रः—

१—एक वृद्ध साधु

२—गरीबदास और सेवादास नाम के उनके दो शिष्य



[स्थानः—एक संताश्रम में एक साधु और दो शिष्य बातचीत करते हैं]

साधु—(शिष्य से) गरीबदास ! जा, पूजन के लिए एक लोटा जल और आसनी ले आ।

गरीबदास—जो आज्ञा महाराज ! (जाता है)

साधु—(दूसरे शिष्य से) सेवादास ! तू भी जा, शीघ्र फूल-मूल, बेल-पत्रादि ला।

सेवादास—जो आज्ञा। (जाता है। गरीबदास आता और लोटा और आसनी रख देता है। साधु आसनी को धूल-भरा देखकर)

साधु—क्यों रे, तूने आसनी फटकारी तक नहीं ? देखो तो भला, उसमें कितनी धूल लगी है ?

(गरीबदास शीघ्रता से लोटा के ऊपर ही आसनी फटकारता है)

साधु—(ज़ोर से) अरे मूर्ख, यह क्या किया ?

गरीब०—(अचम्भे से) कहाँ गुरुजी ? क्या ?

साधु—अरे तमाम पानी मे धूल भर दी और पूॅछता है कि क्या गुरूजी ?

गरीबदास—(डरकर) अ र र र र !

साधु—अरे मूर्ख, अर्राता क्या है ? क्या लोटे से दूर नही फटकार सकता था ? अब वह पानी किस काम का रहा ? जा, फेक उसे। (गरीबदास आसनी दूर फेक देता है)

साधु—(क्रोध से) मैंने आसनी फेकने को कहा था कि जो जल भरा रक्खा है उसे ?

गरीब०—(लोटा-समेत पानी फेककर) यह लीजिए। अब तो हुआ ?

साधु—अरे दुष्ट, मूर्ख ! यह क्या किया ? तू मनुष्य है या जानवर ?

गरीब—(डरता-सा) गुरूजी, जो आप है सो मै हूॅ। आपके सिर पर तो रीछ-कैसे लम्बे लम्बे बाल है। मैंने तो आपकी आज्ञानुसार ही काम किया है।

साधु—ठीक है रे गरीबा ! तू मुझे रीछ क्यो न कहेगा ? इसीसे तो कहा है कि मूर्खो से बोलना ठीक नही। अरे, मैंने जल फेकने को कहा था कि लोटा ?

गरीब—गुरूजी, लोटे ही मे तो जल था, इसोलिए लोटा-समेत फेक दिया। यदि इसमे मेरा कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा-प्रार्थी हूॅ।

साधु—क्षमा क्या ? एकाध दिन ऐसे चमीटे लगाऊॅगा कि तू भी याद रखेगा। जा, और दूसरा लोटा भर ला।

गरीब—गुरूजी, दूसरा लोटा तो है ही नही।

साधु—(स्वगत) बड़े मूर्ख से काम पड़ा है। (प्रगट) गरीबा, क्यो तंग करता है ? इस लोटे मे दूसरा जल शीघ्र भर ला। (यह सुन गरीबदास थोड़ी देर फिर ठहर जाता है) क्यो रे ? क्यो खड़ा है ? जाता नही ?

गरीब०—गुरूजी, आप तो कहते है, दूसरा पानी शीघ्र भर ला। दूसरा पानी लाने मे तो देर लगेगी।

साधु—क्यो ? किस कारण देर लगेगी ? क्या वहाँ तुझे कोई पकड़ लेगा ?

गरीब०—नहीं, पकड तो न लेगा; परन्तु जब मै दूसरा कुआँ खोदूँगा, तब दूसरा पानी ला सकूँगा।

साधु—गरीवा, तू क्या बकता है ? अरे मूर्ख, इसी लोटे में वही जल भरके ले आ।

(गरीबदास फिर कुछ सोचता-सा खड़ा रहता है)

साधु—अरे ! तू फिर गूँगा बनकर खड़ा है। जाता क्यो नही ?

गरीब०—(डरता-सा) गुरूजी, आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई। आप कहते है कि वही जल भर लाओ। वह जल तो ज़मीन सोख गई। अब वह जल कहाँ से लाऊँ ?

साधु—ठीक है रे मूर्ख ! इस वृद्धावस्था मे तूने मुझे इतना कष्ट दिया है कि जिसका हिसाब नही। अरे, जिस जगह से पहिले जल भर लाया था वहीं से फिर भर ला।

गरीब०—गुरूजी, अब समझ गया। अभी लाता हूँ।

(जाता है। सेवादास फूलादि लेकर आता, और झोली साम्हने रख देता है)

सेवादास—लीजिए गुरूजी !

साधु—क्यो रे ! तूने इतनी देर कहाँ और क्यो लगाई ?

सेवा०—गुरूजी, फूल, बेलपत्रादि तो शीघ्र मिल गये; पर मूल खोदने मे देर हो गई।

(साधु झोली खोलकर देखते है। जड़ें देखकर) क्यो रे, ये जड़े सी क्या और किस लिए लाया है ?

सेवा०—गुरूजी, जड़ें ही तो है। पूजन के लिए लाया हूँ।

साधु—क्या पूजन में जड़े भी चाहना पड़ती है ?

सेवा०—यह तो मुझे विदित नहीं। मैंने तो आपकी आज्ञा का पालन किया है।

साधु—क्यों रे, झूठ कैसा बोलता है? क्या मैंने जड़ लाने को भी कहा था?

सेवा०—हाँ, आपही ने तो कहा था कि फूल-मूल, बेलपत्रादि लाओ।

साधु—अरे मूर्ख, यद्यपि मैंने शीघ्रता मे फूल के साथ मूल शब्द कह भी दिया था तो तुझे विचार के साथ तो काम करना था। तू भला इतना तो सोचता कि इन जड़ो का क्या होगा?

सेवा०—(स्वगत) वाह! आपका तो शीघ्र कहने मे गया, पर यहाँ खोदते खोदते हाथो मे छाले आ गये। (प्रगट) गुरूजी! मैंने समझा कि आपको चाहना होगी, तभी तो आपने कहा। इसीलिए बड़े परिश्रम से समय खोकर लाया, नहीं तो काहे को लाता?

सेवा०—उठा, इनको फेक यहाँ से।

(सेवादास झोली-समेत फेंक देता है)

साधु—(क्रोध से) क्या सब फेक दिये?

सेवा०—(डरकर) क्यो? क्या आप आधे फिंकवाना चाहते थे?

साधु—अरे मूर्ख! ये फूल मैंने किस वास्ते मँगाये थे?

सेवा०—पूजन के लिए।

साधु—फिर फेंक क्यो दिये?

सेवा०—आपकी आज्ञा पालने के लिए जो मेरा परम धर्म है।

साधु—तो क्या मैंने फूल फेक देने को कहा था?

सेवा०—और क्या? आपने यह न कहा था कि इनको फेक दो?

साधु—अरे मूर्ख! मैंने जड़ें फेकने को कहा था, न कि फूल-पत्रादि सब।

सेवा०—(हाथ जोड़कर) गुरूजी, क्षमा कीजिए। मै समझ नह पाया, और आपके डर से पूँछ भी न सका।

साधु—क्यो ? डरने के लिए क्या मै शेर हूँ ?

सेवा०—(स्वगत) आपके सिर के वाल तो शेर की दुम के बालो से भी वड़े है। (प्रगट) नहीं, आप तो मनुष्य है, परन्तु गुरूजी तो ठहरे। आपसे डरना ही चाहिए। (गरीबदास लोटा लेकर आता है)

साधु— (गरीबदास से) क्यो रे ! क्या लोटे को विल्कुल नही धोया ? देख तो उसमे कितनी धूल लगी है ?

गरीब०—गुरूजी, मैंने आपके डर के मारे नही धोया।

साधु—अरे मूर्खो ! तुम दोनो तो मेरे प्राण लिये लेते हो। अब मुझे विश्वास हो गया कि तुमसे मुझे कुछ भी आराम नही मिल सकता, इसलिए अब मै कुटी मे जाता हूँ। जो कुछ चाहना होगा स्वयं ले लूँगा। आज मुझे भरोसा हो गया कि विना अपने किये कुछ नही हो सकता। कहा भी है:—"विना मरे स्वर्ग नही दिखता"। (जाता है। पीछे पीछे चेले भी जाते है)



लड़कधोंधों

पात्रः—

१—धोकल		
२—गबरू		खिलाड़ी लड़के
३—गटरू		
४—मटरू		
५—छन्नू		धोकल और गबरू के बड़े भाई
६—मन्नू		

७—धन्नू—छन्नू और मन्नू का दोस्त

८—दो देहाती लड़के

पहला दृश्य।

धोकल—(स्वगत, पाकेट मे से लड्डू निकालकर खाते खाते) कब तक बैठतो, थक गओ। माने कहत कहत बड़ी देर कर दई। तो फिर धगगड़ का करते ? का धीर धरे बैठे रहते ? ऊँहूँ। जो माँ गई नहाने तो हम भी छापा मार लड्डू चुरा घर से बाहर भये पेशाव के बहाने। (लड्डू खाता हुआ) क्या मजा है ? जी चाहता है दिन भर लड्डू ही लड्डू खाऊँ, पै मिलै कहाँ से ? मा को

कहो करतो, तो लड्डू खवाके बड़े भैया के साथ पढ़न भेजती एसे हम पहिले ही भग आए। आज खूब मजा जमी। अब का है, (कूदकर) है हम हमी।

खेलेंगे, कूदेंगे, नाचेंगे गायेंगे।
लड्डू खायेंगे, मौज उड़ाएँगे।
न शाला को जायेंगे। खेले० ॥

(गबरू नामक एक दूसरे शैतान लड़के का प्रवेश)

गबरू—(स्वगत) अरे यह टो मेरे पहले भग आओ। नाच रहो है (देखकर) और कछु खा भी रहो है। (ललचाकर) अरे हाय हाय ! अब का करूँ ? पहिले अपनी गुजिया खा लूँ कि इसका लड्डू छुरा लूँ ? (गुजिया खीसे मे रखकर पास जाता है) कहो डोप, हमे न बुलाओ। टू घर से चुपचाप चलो आओ। कहो, क्या खबर है ? कुछ खिलाटे नहीं हो ?

धो०—जाव भाई, इस वखत हमारा दोपवोप कोई नहीं।

ग०—क्यो क्यो ? कहो टो सही। मूँ क्यों चलाटे हो ? क्या कुछ खाटे हो ?

धों०—(लड्डू का एक कौर खाकर) तुम्हे क्या करना है ? पहले खा लूँ फिर बात।

ग०—क्यो उस रोज की बाट भूल गये जब हमने टुमको काजू किसमिस सेठ की डुकान से लाकर खिलाए हटे।

धो०—तो कुछ लड्डू थोड़े ही खिलाया था। जब काजू-किसमिस खाऊँगा, तो मै तुम्हे भी खवाऊँगा, पर आज तो (लड्डू दिखाकर) लड्डू उड़ रहे है, लड्डू।

ग०—(स्वगत) साला ऐसा क्या मानटा है ? (झपटकर लड्डू छीनना। दोनो का गुत्थमगुत्था। फिर अलग होकर)

धों—चल, एक छुड़ा लिया, तो क्या हुआ ? ये देख। (दूसरा बताकर खाना)

ग०—अच्छा चलो टो, टुम भी खाओ और हम भी। यार डोष, (पास जा और गले मे हाथ डालकर) टुम मेरे भाई हो, फिर क्यो लड्डू नहीं डेटे हो ?

(धोकल गबरू का खीसा टटोलकर गुजिया निकाल लेता है)

धों—इसलिए कि (दूर होकर) तू मुझे गुजिया नही देता।

(चुराई हुई गुजिया बताता है)

ग०—हट्टेरे की, साले को अभी डेखटा हूँ। (दोनो का लड़ना)

ग०—(खड़ा होकर) चलो बराबर हो गया। हमारी गुजिया और टुम्हारा लड्डू बरावर। टुम्हारा लड्डू हमने खा लिया और हमारी गुजिया टुमने।

धों०—और हमारी मार तुमने।

ग०—और टुम्हारी मार हमने। अररर नहीं, हमारी मार टुमने। (पास जाता है)

धों०—दूर दूर, अब दूर रहो, पास मत आओ। मुझे डर है, कहीं तुम मेरा दूसरा लड्डू न उड़ा जाओ।

ग०—(स्वगत) अ र र र ! खूब लड्डू चुरा लाया है !! पर अब मै कब खाये बिना मानटा हूँ ? (प्रगट) देखो भाई, टुम बरे बेईमान हो। हम खिलाटे है टुम्हे; पर टुम नही खिलाटे हो हमें। अच्छा, अब डेखेंगे, जब सामने-वाली गली से राट मे निकलोगे, टो देखूँगा बच्चा !

धों०—चलो बड़े देखनेवाले।

ग०—अच्छा अच्छा, ये बाट। टो अभी डेखटा हूँ साले !

(लड्डू फिर छुड़ा लेता है)

[नेपथ्य से आवाज आना—"पकडो पकड़ो, ये लड़ रहे है, चुरा चुराकर लड्डू खा रहे है]

(आवाज सुनकर दोनो का भाग जाना)

दूसरा दृश्य ।

छन्नू—(मन्नू से) देखो, दोनो के दोनो कैसे शैतान है। घर से माल चुरा चुराकर लाते है और यहाँ-वहाँ खाते फिरते है। पढ़ने का नाम तक नही लेते।

मन्नू—मेरे भाई का वही हाल है। कल से भाग गया है। अभी तक घर भी नही आया है।

छन्नू—क्यो ?

मन्नू—क्यो क्या, सवक नही याद किया था। इसपर से मास्टर ने कैद कर दिया था। जब छुट्टी हुई तो घर भी न आया। कही बाला बाला भाग गया। न जाने, रात को कुछ खाया या नहीं।

छन्नू—अब क्या करे ? कैसे इन्हे पकड़े ?

मन्नू—मै भी तो यही सोच रहा हूँ।

छन्नू—भाई देखो, जिन्हे पढ़ने का सब सुभीता है, खाने को पेट भर रोटी और पहनने को कपड़े है वे तो लंगूरो की तरह फिरते है और जिन्हे न खाने को रोटी और न पहनने को कपड़े है वे पढ़ने को ललचाते है।

मन्नू—ठहरो, ज़रा यहीं छिप रहो। (अँगुली से दिखाकर) वह देखो, कुछ शैतान खिलाड़ी आते है। शायद उन्हींके साथी है। कुछ बाते करेंगे, तो पता लग जायगा।

(दोनो का छिपना। दूसरे दो, अर्थात्, गटरू और मटरू का आना।

एक के हाथ मे गिल्ली-डंडा और दूसरे के हाथ मे ताश और बगल में डंडा)

मटरू—(गटरू से) कहो दोस गटरू, कहाँ जा रहे हो ?

गटरू—कहो दोस, मटरू कहाँ जा रहे हो ?

मट०—क्यो बे, जो मै बोलत हो वही तू बोलत है।

गट०—क्यो बे, जो मै बोलत हो वही तू बोलत है।

मट०—मार दूँगा एक लपाड़ा।

गट०—मार दूँगा एक लपाड़ा।

मट०—वा भैया, क्या जोई दोस्ती को मजा है ?

गट०—वा भैया, क्या जोई दोस्ती को मजा है ?

मट०—बस तो तुम हमारे गुईयाँ।

गट०—बस तो तुम हमारे गुईयाँ।

मट०—अब जा तो बताओ, आज कौन तरफ खेल को चलहौ ?

गट०—अरे आज तो धोकल को सपड़ाओ तो ठीक।

मट०—काहे ? ईसे का हुइये ?

गट०—वा तुमने नहीं सुनी ? हाँ हाँ, तुम दूर हते। अरे आज वो घर से बहुत लड्डू चुरा लायो है, ईसे आज वोको पीछो करो चहिये।

(छन्नू और मन्नू का आपुस में इशारा करना)

मटरू—हाँ कहो तो, तुमसे कौन ने कही हती ?

गटरू—अरे वो जो दो लंगूरे चले जात थे ना, दोनो मालुम होत है धोकल के कोई हते। बाते करत जात थे। उन्हीं से सुनी थी।

मटरू—तो का वे ढूँढ़वे गये है ?

गटरू—हाँ, पर उन ससरो को का खबर कि हम लोगो के अखारे-अड्डे कहाँ है ?

छन्नू—(मन्नू से) चलो, दोनो को पकड़ ले और धोंकल के अडडे का पता पूँछ लें।

मन्नू—चलो। (दोनों का लपककर पकड़ना)

छन्नू—बताओ बच्चाराम, धोकल का अड्डा कहाँ है ?

मटरू—मुझे क्या मालुम।

मन्नू—बताओ बच्चा, तुम दोनो अभी क्या बक रहे थे ? किसको गालियाँ दे रहे थे ?

छन्नू—बोलो, बताते हो या नही ?

(दोनो को दोनो चपते जमाते है)

दोनों—(रोकर) बताते है, बताते है।

छन्नू और मन्नू—बताओ तो फिर।

मटरू—बता दे, बता दे। क्यो मार खाता है ?

गटरू—साले, तू न बता दे। क्यो मार खवाता है ?

मटरू—अच्छा सुनो, सुनो, आज धोकल हनुमान चौपड़ा पै गओ है। वही उसका अड्डा है ?

गटरू—वहाँ तो वह अवै हुइये। वही लड़के के साथ खेलत हुइये।

छन्नू—अब यह बोलो, तुम उसका साथ छोड़ोगे या नही ?

दोनो—हमे का करने है ऊको साथ करके ?

छन्नू और मन्नू—(दोनों को छोड़कर) अच्छा तो अब खबरदार। इसका साथ न करना, नहीं तो वह पटू मार मारूँगा कि जन्म भर याद रक्खोगे बच्चा !

दोनो—न करेंगे, न करेंगे।

(छन्नू और मन्नू का जाना)

मटरू—(गटरू से) हॅ.. . हॅ कहो कैसा चकमा दओ। साले उते जाके भटक है और अपन अब धोकल की गर्दन दवाकर बावली मे चैन से लड्डू गटक हैं।

तीसरा दृश्य ।

धोंकल—(गबरू से) कहो गबरू यार, तुमने उस रोज हमसे कही थी कि अपन एक रोज बावरी की सैर करेंगे। सो आज देखो, मैं स्कूल न जाकर तुम्हारे संग यहाँ चला आया।

गबरू—टुम्हारी क्या बाट है ? टुम बरे बहादुर हो।

धोंकल—अच्छा चलो, अब थक गये हैं। थोड़ा सुस्ता लो।

गबरू—अच्छा बैठो। मैं जब टक पानी पी आऊँ।

(गटरू और मटरू का प्रवेश)

[दोनों पीछे से आते हैं और मटरू धोकल की आँखें मींचता है]

धोंकल—अरे यह कौन ? क्योंरे गबरुआ, पानी पियन गौ तो, सो पीछे से आ आँख मीचन लगो।

मटरू—ऊँ हूँ ऊँ हूँ। (गटरू हँसता है) ऊँ हूँ ऊँ हूँ।

धोंकल—तो ननकुआ हुइये। क्यों वे ननकुआ, बच्चा पहिचान लओ। अब तो छोड़ दे।

मटरू—ऊँ हूँ ऊँ हूँ ऊँ हूँ। (दोनों हँसते है। गटरू लड्डू चुराता है। धोकल आँखें छुड़ाने की कोशिश करता है। गटरू दो लड्डू खुद खाता और एक मटरू को खिलाता है। मटरू गुस्सा होता है)

गटरू—अच्छा अच्छा।

धोकल—हत्तेरे की, जान लओ, पहिचान लओ। चल छोड़ गटरुआ, नहीं तो मारता हूँ साले को एक लपौआ।

(गबरू का आना)

गबरू—अरे कौन ? मटरू ?

धोंकल—बस बस छोड़ रे, मटरुआ है मटरुआ। (आँखें छोड़कर)

गटरू—अच्छा चलो, अब जम जाओ। (ताश फेंटकर) बोलो रंगकाट कि मीनहप्प ?

मटरू—मोनहप्प, मीनहप्प ।

धो०—हूँ ! मीनहप्प तो हमे खेलई नहीं आउत, न दाँव भी लगात आउत ।

गब०—और डाँव लगै है तो काहे को ?

गबरू—बस, जो जौन के पास होय उसीको दाँव लगाओ ।

धो०—तो मेरे पास तो बस पैसा-वैसा कुछ नहीं है ।

गब०—और मेरे पास भी टो कुछ नहीं है ।

मट०—अब कहो, का करे ? अच्छा रंगमार खेले ।

गट०—पर मजा का आहै ? हार-जीत बिना मजा कुछ न आहै।

गब०—अच्छा रँगमार खेलो । जो हम हारेंगे टो कुछ न कुछ खवाँयगे ।

धो०—हे ये बात ! अच्छा खेलो जी । अगर हम हारेंगे, तो हम भी कुछ न कुछ खिलाँयगे ।

गट०—बस बस बस । जमने दो, जमने दो ।

मट०—बस अब क्या है ? उड़ने दो ।

(चारों का बैठना और ताश फेटकर बाँटना)

गट०—लो ये हुकुम का इक्का ।

धों०—ये लो दुक्की ।

गब०—टो ये लो मेरा अट्ठा ।

मट०—ये लो काट । चलो एक हाथ तो बनो ।

(थोड़ी देर खेलने के बाद)

गट०—चलो रहने दो । कोट हो गओ, कोट हो गओ ।

गब०—क्यों, क्यों, क्या ?

मट०—चलो बड़े कोट-वाले । याद रखना ।

ग०—वाह भाई वाह, अभी तो तुमने हुकुम काटो हतो, फिर वाच्छाह कहाँ से आ गओ ।

तीनों—(हँसकर) वा भाई, जोई खेलत हौ ? हारत हो तो रोउत हौ ।

मट०—कुछ खबर दवर है बसन्तो की । हुकुम काटा था, हुकुम मियाँ । जाता चिरी है, चिरी ।

गब०—अच्छा, चलो चलो, आगे बढ़ो, आगे बढ़ो । किसका हाथ है ? अभी सबकी फुकली भराये देत हो ।

(थोड़ी देर फिर खेल होना और अन्त मे गटरू का जीतना)

चलो चलो भइया रे, अब खवाओ । कौन खवाता है ? फिर दूसरी बाजू हो ।

गब०—अच्छा लो । (थोड़ी थोड़ी गुजिया देता है)

धो०—अच्छा लो । (थोड़ा थोड़ा लड्डू देता है)

गबरू और गटरू—हमारी बाजू जीती है । हमें दो दफे खबाओ ।

मट०—बस, एक एक दे दो, एक एक ।

धो०—है ! जैसे बापई को माल होय । बच्चा जी, हमारे दोष हो या इनके ?

मट०—अरे ये कहो जो हमने चार हाथ बनवा दये, नहीं तो कोट लगता, कोट ।

धों०—अच्छा लो, इतना और सही । (और देता है । सब खाते है)

मटरू और गबरू—बस अब हम न लैहै । हम तो एक एक लैहैं तब खिलाहैं, नही तो न खिलाहैं ।

मट०—खिला दे ना ?

धो०—(चिढ़ाकर) खिला दे ना ? बाप का माल तो ठहरा, सो गपर गपर । कभी खाये भी थे लड्डू ? हमारी माँ के घर से हम चुराकर न लाते, तो बच्चा जी कहाँ से खाते ? साले बड़े आये खानेवाले ।

मट०—(चपत मारकर) बड़ी देर हो गई, गारी वकत है। न खेलत है, न खेलन देत है।

धो०—(रोकर) भाड़ में जाय तुम्हारा खेल। हमें नहीं खेलना है। (ताश फेंक देता है)

मटरू—क्यों रे बदमाश, हारत है तो रोउत है और हमारे ताश खराब करत है। ठहर साले, अभी कुन्नस बनाता हूँ, टीनपाट बँधाता हूँ। (ताश बीनता है)

(धोकल भागना चाहता है। सब पकड़ने दौड़ते हैं, और पकड़कर लाते हैं)

गट०—मार साले को, छुड़ा लो सारे के सबरे लड्डू।

(छुड़ाकर चपत जमाना और सबका चिढ़ाना और खाना। धोकल का रोना-पीटना)

ले ले लड्डू, ले ले लड्डू, ले ले लड्डू। ऐं ऐं ऐं॥
ले ले कुतका, तीन तपड़ करे दो चार धप्पा। ऐं ऐं ऐं॥
ले ले लड्डू, ले ले कुदका, ले ले लड्डू।

(सबका जाना)

चौथा दृश्य।

(चारों का आना)

ले ले लड्डू, ले ले लड्डू, ले ले लड्डू ले ले लड्डू। ऐं ऐं ऐं॥
ले ले कुतका, तीन तपड़ करे तो दो चार धप्पा। ऐं ऐं ऐं॥
ले ले लड्डू, ले ले कुदका॥

(छन्नू और मन्नू एक एक ओर)

छन्नू—देखो, इन लोगों ने, मालूम होता है, धोकल के सारे लड्डू छुड़ा लिये हैं और अब उसे चिढ़ा रहे हैं।

मन्नू—हाँ, दिखता तो ऐसा ही है, पर अब यह तो बताओ कि इनको पकड़ना कैसे चाहिए ?

गब०—भाई, अबटो इसे चिढ़ाना बंद करो।

मट०—बस, अच्छा अच्छा गटरू बस, अब रहने दो।

गट०—अच्छा दोस्त बस, नाराजी बन्द करो। चलो, आओ।

धो०—(रोकर) चलो हटो बड़े दोप ! साले ने हमारे सब लड्डू खा लिये और अब दोप दोष कहता है।

मट०—(फुसलाकर) चलो, अब रहने दो। (गले मे हाथ डालना)

धो०—(सिसकता हुआ) बड़े मनानेवाले। हमारे लड्डू खाये और हमीको चिढ़ाया। अब हम कभी न खिलायँगे। एँ एँ (रोकर) हम तुम्हारे दद्दा से कह देंगे और पिटवायँगे।

मट०—चलो भाई, जो हुआ सो हुआ।

गट०—और हम न कह देंगे तुम्हारे दद्दा से कि पढ़ने नहीं जाता है, हमारे साथ खेला करता है !

गब०—और हम भी कह देंगे कि घर से लड्डू चुराकर भागटा है, हमें जबरदस्दी खिलाटा है, न पढ़टा है न लिखटा है।

मट०—चलो, अब सब चुप रहो। बैठो बैठो दोस्तो, बैठो।

(सब बैठते है)

धो०—(सिसक सिसककर रोता है)

गट०—(धोकल से) अब क्यो रोटे हो ? सास की धोटी क्यों धोटे हो ? (धोंकल चिढ़ता है)

लट०—चलो मौंग रहो, काल बिदा कर देह।

(इतने में एक देहाती लड़के का आना)

गट०—(उस लड़के को चिढ़ाकर) लोलै लेलै लोलै लेलै।

(लड़के का रोकर भागना और सबका हँसना)

धो०—पर हम कहे बिना न रहेंगे।

(इतने मे पतंग लिये हुए दूसरे लड़के का आना)

मटरू—देखो, लो लै ले लै, फिर आया।

गबरू—अरे पटंग लाया है, पटंग। लूट लो बेटे की पटग।

गटरू—ठहरो ठहरो, हल्ला न करो, पास आने दो।

(लडके का पास आना आर गटरू का पीछे टॉग अड़ाकर गिराना, पतंग छुड़ाना, मार भगाना और सबका हॅसना)

गबरू—अब इसके चार हिस्से करो और एक एक भर्रा बनाओ।

सब—हॉ हाँ हॉ। बस, अच्छी जुगत बताई।

(पतंग की कमची निकालकर हिस्से करना और बॉटना)

धोंकल—पर लेई कहॉ से लाओगे जो भर्रा बनाओगे ?

गबरू—हॉ यार, अब टो खेल बिगड़ गया। अब भाई, कैसे बनेगा ?

मटरू—अरे हम अभी बक्कल की गाद निकाले लाते है। (जाता है। रास्ते मे लेई पाकर लौटता है) लो, दूर न जाना पड़ा। उस लड़के की लेई की पुड़िया मिल गई। अब चिपकने दो भर्रा, और होने दो (सब मिलकर) फर्रा फर्रा सन् सन भर् भर। (सबका भर्रा बनाकर घुमाना)

गबरू—डेखो डेखो, सब एक साठ घुमाओ।

धोंकल—हॉ हॉ, कुछ गाते भी जाओ।

गटरू—अच्छा, सब टहर जाओ।

मटरू—अच्छा हॉ, बोलो। (घुमाना)

गटरू—एक, दो, ठहरो ठहरो, सब एक साथ। हॉ, एक। दो। तीन। (गाना)

भर्रा बोले भर्र भर्र एक दो तीन।
भर्रा बोले भर्र भर्र एक दो तीन॥

घूमता है सर्र सर्र, घूमता है सर्र सर्र, बाज रही है बीन।
होता है फर्र फर्र ॥

धोकल—आगे कहो, आगे कहो, आगे।

मटरू—जैसे उड़ती हो चमगीदड़—जैसे उड़ती हो चमगीदड़, एक दो तीन।

गबरू—हाँ हाँ और कहो और कहो। होने दो, होने दो।

गटरू—चार पाँच छै, चार पाँच छै।

(इतने में एरू का भर्रा टूट जाना)

गटरू—ठहरो ठहरो, हम सुधारे देते हैं।

(छन्नू और मन्नू का प्रवेश)

मन्नू—भाई, अब तो चलते चलते थक गये। थोड़ा सुस्ता लो।

छन्नू—ठीक, दोनो बदमाशो ने कैसा धोखा दिया ?

मन्नू—क्या बतलावे कि क्या करे ?

छन्नू—देखो आज का पढ़ना भी मारा गया और वे बदमाश भी हाथ न आये।

मन्नू—ये कौन बोल रहे है ? कही वे ही शैतान तो नहीं खेल रहे है ?

छन्नू—हाँ हाँ, वही हैं, वही है। चलो चलो, पकड़ो मारो।

(दौड़कर चुपचाप पास जाना और मारना शुरू करना)

सब—(चिल्लाकर) अरे बाप रे, मर गये, मर गये रे, मर गये।

धोंकल—ऐ भैया, तुम्हारे पाँव परो, तुम्हारे पाँव परो।

गबरू—बस बस, मर गये, मर गये।

गटरू—बेईमान लुच्चे कहीं के ! क्या खाया है तुम्हारे बाप का जो हमे मारते हो ?

मटरू—साले लुच्चे पाजी ! मारो मारो।

(हाथापाई करके दोनो का भाग जाना)

(छन्नू और मन्नू का धोंकल और गबरू को पकड़ रखना और मारना)

छन्नू—लो और लड्डू खाओ ऐ ? लो, ऐ लो ?

मन्नू—और भागो, और भागो, भागो भागो ।

धोंकल—ओ भैया, तुम्हारी गऊ है भैया । अब न चुराहे, अब न चुराहे ।

गबरू—अरे अब न भगहै, कछू न करहै, कहूँ न जैहै ।

दोनो—चलो, ले चलो शैतानो को घर । वहीं और दुरुस्त किये जावेगे, तब ठीक रास्ते पर आवेगे । (ले जाना)

पाँचवा दृश्य ।

धन्नू—अरे छन्नू मुन्नू, ए छन्नू मुन्नू ! (ठहरकर, स्वगत) आज तो बाहर कुछ मार-कुटाई सी हो रही है । मालूम होता है, कुछ तड़ी लग रही है । (प्रगट) ए अरे छन्नू मन्नू, छन्नू मन्नू !

(छन्नू और मन्नू का प्रवेश)

छन्नू—कहो दोस्त धन्नू, कहाँ से आ रहे हो ?

धन्नू—बस, घर से रोटी खा-पीकर आ रहा हूँ । चलो नदी की तरफ घूम आवे । हाँ, पर यह तो कहो, तुम तो भाई को ढूँढ़ने गये थे, सो मिले या नही ?

मन्नू—मिल गया भाई, मिल गया, बड़ी भटकवाय कराई ।

धन्नू—कहाँ मिला ?

छन्नू—गुप्तेश्वर की बड़ी पहाड़ी पै मिला ।

धन्नू—अरे, तब तो खूब चक्कर लगा । अच्छा, अब तुम न जा सकोगे । मै जाता हूँ ।

छन्नू और मन्नू—अच्छा अच्छा । (धन्नू का वापिस जाना)

मन्नू—चलो, अब आराम करे । (जाना)

(धोकल और गबरू का दोनों तरफ़ से अपना अपना हाथ और डील देखते हुए और सिसकते हुए आना)

गबरू—अब कभू न जैहें।

धोकल—(गबरू से) तुमने ही तो हमें भटकाया और पिटाया।

गबरू—टो हम का करें? टुमको किसने बुलाया था?

धोकल—तुमने ही तो सलाह दी थी। मेरी किताब भी छुपा दी थी। (मटरू और गटरू का चुपचाप प्रवेश)

(धोकल और गबरू के साम्हने जाकर झुक झुककर बंदगी करना और उनका चिढ़ना)

धोकल—चलो जाओ, अब तो पीछा छोड़ो।

गबरू—टुमारा सट्यानास हो, खूब टो पिटाया। अब टो पीछा छोड़ो।

गटरू—तो क्या मैं तुन्हें फिराने ले गया था? तुम तो आप ही साथ गये थे।

मटरू—तो क्या मैं तुम्हें फिराने ले गया था?

गटरू—हमारे साथ गये थे कि हम फुसलाकर ले गये थे?

धोकल—जाओ, अब मत आओ आज से। अब हम कभी तुम्हारे साथ न जायँगे, न लड्डू चुरायेंगें।

गब०—और हम भी न कभी टुम्हारा साथ करेंगे, न टुम्हारे साथ खेलेंगे, न कूदेंगे।

मट०—तो अब हमें खेल ही न मिलेगा। हम और गटरू खेला करेंगे और तुम्हें अपने खेल में आने भी न देंगे।

धोकल—न आने देना। हटो। न खेलने देना। जाओ, नहीं तो मैं बुलाता हूँ बड़े भइया को।

गट०—अरे न बुलाओ। हम तो तुम्हारी खबर लेने आये थे।

धोकल और गबरू—(रोकर) भैया, ऐ भइया!

दोनों—(चिढ़ाकर) भया, ऐ भैया !

(धोंकल का ज़ोर से पुकारना। दोनों का भागना और भैया का आना)

भाई—क्या है रे ? अब और मार खाना है क्या ? जब मैं तुम दोनों को समझाता था, तब तुम मेरा कहा भी नहीं मानते थे। अब जैसा किया वैसा फल पाया।

दोनों—अब न भगेंगे, अब न भगेंगे।

भाई—तो फिर अब न पिटोगे। हाँ, अभी क्यों बुला रहे थे ?

धोंकल—म म म मटरू ग ग ग गटरू अभी फिर आये थे। मुझे चिढ़ाते थे।

गबरू—बुलाया, टो डोनों भाग गये।

भाई—देखो, मैं तुम लोगों को जताता हूँ कि कभी उन शैतानों का साथ मत करो। न साथ रहो, न साथ चलो, न साथ फिरो, न साथ खेलो। यदि अपना भला चाहते हो, तो रोज़ शाला जाओ, और मन लगाकर पढ़ो। अगर पढ़ लोगे, तो राजा-कैसे आराम करोगे, नहीं तो मारे मारे फिरोगे। यहाँ-वहाँ भीख माँगोगे। बोलो, तुम्हें अच्छे लड़के बनना है या बुरे ?

दोनों—अच्छे।

भाई—तो सदा माता-पिता का कहना मानो। घर से बाहर बिना काम के न जाओ। पढ़ो और चैन से रहो। न पढ़ोगे तो घर से निकाल दिये जाओगे, भूखे-प्यासे रहोगे, दुख सहोगे। बोलो, अब तो न भगोगे ?

दोनों—न भगेंगे, न भगेंगे।

भाई—चोरी तो न करोगे ?

दोनों—न करेंगे।

भाई—पढ़ने जाओगे ?

दोनो—जायँगे ।

भाई—बड़ो का कहना मानोगे ?

दोनो—हाँ, मानेंगे ।

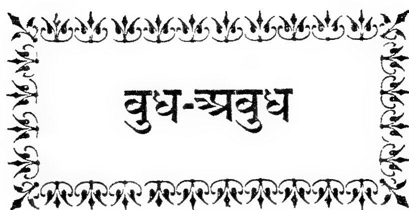
भाई—अच्छा तो, सब तुमसे प्यार करेंगे, रोज़ खाने को देंगे और नये नये कपड़े बनवा देंगे। अच्छा, आओ और भगवान् से प्रार्थना करो कि वे कृपाकर तुम्हारी बुद्धि अच्छी करें।

(सब मिलकर)

हिलमिल सब ईश्वर का गुण गाओ ।
बुद्धि विमल हो यह वर पाओ ॥
भागो मत न कभी हठ ठानो ।
प्रतिदिन शाला को जाओ ॥१॥
जी न चुराना पढना लिखना ।
घर मे रहना नहीं झगड़ना ॥
खा खा लड्डू मौज उड़ाओ ॥२॥

(पर्दा गिरता है)





बुध-अबुध

पात्रः—

शिक्षक और ५-६ लड़कों की कक्षा



प्रथम दृश्य ।

[स्थानः—विद्यालय]

(कई विद्यार्थी बैठे है । उन्ही मे बुध और अबुध नाम के दो विद्यार्थी है । बुध अपनी कक्षा मे सबसे प्रथम है । शिक्षक का प्रवेश । सब विद्यार्थी खड़े होते है । पश्चात् अबुध भी खडा होता है । शिक्षक को सब अभिवादन करते है)

शिक्षक—(आशीर्वाद देकर, बैठते हुए) प्रिय शिष्यो, बैठ जाओ । (सब बैठते है । अबुध असावधान रहने के कारण कुछ देर मे बैठता है । इसपर सब मुस्कुराते है) तुम लोग यह क्या करते हो ? अपने साथ-वाले पर इस तरह कभी न हँसना चाहिए । (सब विद्यार्थी शान्त हो जाते है और शिक्षक अबुध से कहते है) अबुध, तुम सचमुच अबुध हो । यथा नाम तथा गुणः । यदि तुम सावधान रहते, तो तुम्हे इस तरह लज्जित न होना पड़ता । अब आगे के लिए सावधान । (विद्यार्थियो से) इमला

लिखने के लिए स्लेट निकालो। (सब विद्यार्थी स्लेट निकालते है। जल्दी के कारण अबुध की स्लेट गिर पड़ती है और वह शिक्षक की दृष्टि बचाकर उठाता है, परन्तु शिक्षक देख लेते है और अबुध से कहते है) हम देखते है कि तुम सब ही कामो मे मूर्खता करते हो। (सबसे) लिखोः—"दो जमीदार अपने गॉव से कही को चले जाते थे। बाट मे एक पचास साठ बीघे अच्छी भूमि का खंड देखकर उनमे से एक ने कहा कि भाई, यह ठौर हमारे तुम्हारे हाथ लगे तो क्या करो ?" बस, स्लेट रखो। (सब अपनी अपनी स्लेट रख देते है) स्लेट दिखाओ। (बुध स्लेट दिखाता है और शिक्षक जॉचकर पास का चिन्ह कर देते है, और दूसरे की देखते है। किसीकी दो और किसी की चार गलतियाँ होती है। अबुध की स्लेट लेकर देखते हुए) क्यों, जिस समय तुम लिखने बैठे थे गॉजे की तरग मे थे ? हम समझते है, शायद अभी तक तुम्हारी लत नही गई है ? इतने बड़े होने पर भी तुम्हे अभी तक होश नही हुआ। न जाने कब कुछ सीखोगे ? पढ़ो, तुमने क्या लिखा है ? (स्लेट अबुध को दे देते है)

अबुध—(डरते हुए स्लेट हाथ लेकर) दो जमीड़ाल ..

शिक्षक—हमने जमीदार लिखाया था या जमीड़ाल ?

अबुध—गुरुजी, मै भूल गया।

शिक्षक—आगे पढ़ो।

अबुध—अपने गॉव से क (कहकर चुप होकर शिक्षक की ओर देखता है)

शि०—खेद है कि तुम अपना लिखा भी नही पढ़ सकते। बुध, तुम पढ़ो, इसने क्या लिखा है ?

बुध—(अबुध की स्लेट लेकर) दो जमींदार अपने गाँव सेक को चले जाते थे। काट मे ए पचास सीधे भूमेका देख कर उनमें से एक ने कहा कि थे ठोरह मारे तो कैसे करकें। (सब विद्यार्थी कठिनाई से हँसी रोकते है और अबुध अपना सिर नीचे कर लेता है। शिक्षक सबकी स्लेट जाँचकर कहते हैं)

शि०—सब यथायोग्य नम्बर लेओ। (सब क्रमानुसार अपनी अपनी गलतियों के मुताबिक बैठते है। अबुध सबसे नीचे पहुँचता है) और अपनी भूले दस दस बार लिखो (जो भूल गये वे दस दस बार लिखकर शिक्षक को दिखाते है। शेष अपना पाठ याद करते है। अबुध को देर हो जाती है। शिक्षक अबुध से) अब समय बहुत हो गया। कल तुम यही पाठ घर से दस बार शुद्ध शुद्ध लिखकर लाना, नहीं तो सजा दी जायगी।

अबुध—बहुत अच्छा, गुरूजी !

[पटाक्षेप]



द्वितीय दृश्य।

[अबुध और मौजी नामक उसके मित्र बैठे है]

अबुध—भैया मौजी, कहो कैसी बीती ? कल तो गाँजे ने मुझ पर अपना खूब ही रंग जमाया मानो मै ज़मीन आसमान के बीच हिंडोला झूलता था।

मौजी—भाई, का कहना ? गाँजे का जानो सरग निसानी है। तनी सा पी लेव तो चैन, नहीं तो मुर्दा सा परे रहौ।

अबुध—तभी तो महादेवजी गाँजा, भाँग और आजकल के कुछ लोग शराब पीते है। गाँजे की तरंग मे जान पड़ता है कि

स्वर्ग निकट ही है। सारी चिन्ताएँ दूर हो जाती है। हमीं बादशाह और हमीं शाहज़ादे है ऐसा दिखता है।

मौजी—सुना है गाँजे से शराब तनी जादा नीक लागत है।

अबुध—वाह! कहाँ गाँजा और कहाँ शराब! इनकी बराबरी कैसी? गाँजे की बराबरी शराब कैसे कर सकती है? जिस वक्त चेले ने चिलम तैयार की कि "ब शंकर काँटा लगे न कंकर" बोल अपन जैसे गुरुओ ने उसका मज़ा चक्खा। भाई, शराब पीने से मुँह मे से बुरी बास आने लगती है जिससे सब जान जाते है कि वह नशैल आदमी है। गाँजा अमीरी ठाठ है।

मौजी—सो नहीं। शराब की बराबरी गाँजे से नहीं हो सकती। शराब पीनेवाले इतने आनन्द-मस्त या बेसुध हो जाते है कि उन्हे कलयुग के बैरागी कहो तो बेजा न होगा। गाँजे मे ऐसा गुण कहाँ है? उसमे तो कुछ न कुछ सुध बनी ही रहती है।

अबुध—ठीक है, तभी तो किसी ने कहा है, "खुदा गर दे तो घर में छिपके पी ले।"

मौजी—भैया अबुध, तुम्मार संगी बुध का न जाने का सूझा है कि रात दिन कौआ की नाँईं काँव काँव करत रहत है।

अबुध—वह बेवकूफ है, भोदू है, तेली के बैल की नाँईं आँखों में पूड़ा बाँधे किताबो के पीछे फिरता है। घानी के चारो तरफ फिरने से क्या बैल मे कोई गुण आ जाता है? "बाप न मारी पेड़की, बेटा तीरंदाज।"

मौजी—ससुर निरा काठ का उल्लू है। मज़े से गाँजे का दम मारता और हमारे साथ मज़े से घूमता। बड़े बड़े पढ़कर मर गये, भीख भी न जुरी।

"पढ़ें फारसी बेचें तेल, यह देखो किस्मत का खेल।"
क्या पढ़कर डिप्टी-कलक्टर होना है ? बस, अब इन बातन को चूल्हे में जान दें। चिलम गरम करें। [दोनों चिलम चढ़ाने लगते हैं]

तृतीय दृश्य।

(बुध बैठे हुए पुस्तकावलोकन कर रहे हैं। माधोप्रसाद का प्रवेश)

बुध—"स्वागत स्वागत आइए, मित्र हमारे पास।
मिलन-हेतु बैठे हुए, बहुत लगाये आस।"

माधो—कहो प्रसन्न तो हो न (बैठकर) भाई, क्या कहें ? अवकाश ही नहीं मिलता। परीक्षा का समय समीप है। आज तक मध्यमा परीक्षा में भी उत्तीर्ण न हो सके। भला इस वर्ष तो .

बुध—अवश्य, हमारा कर्त्तव्य ही यही है कि ज्ञानोपार्जन द्वारा सृष्टि-क्रम का निरीक्षण कर, अपना जीवन तदनुकूल सानन्द बितावें। जिस प्रकार इस वर्ष आप अपरिमित परिश्रम कर रहे हैं, उसी तरह गत वर्ष मुझे भी प्रवेशिका परीक्षा में उत्तीर्णार्थ करना पड़ा था। ईश्वर को धन्यवाद है कि आज मैं इस स्थिति को पहुँचा हूँ। भला यह तो कहो, पठन-पाठन से कुछ आनन्द भी प्राप्त होता है या यों ही कालक्षेप ?

माधो—कुछ न पूँछो। 'बिहारी-सतसई" के दोहे जो हमारी पाठ्य-पुस्तकों में हैं पढ़ते ही ऐसा आनन्द उमड़ता है मानो मैं आनन्द-सिन्धु के मध्य तरंगों में निमग्न हो हिलोरें ले रहा हूँ। जिस समय "आवत जात न जानियत तजि तेजहिं सियरान। घरहि जमाई लों घँस्यो खस्यो पूस दिनमान" के भाव पर दृष्टि डालता हूँ, उस समय भान नहीं रहता। देखो तो, कैसी अनूठी उपमा और कहाँ से खोजकर लाई गई है ! पौष मास के दिनमान

की मर्यादा स्वल्प और उसकी तेज-हीनता दर्शाने के लिए कविजी ने उस पुरुष की उपमा दी है जो पिता का घर छोड़कर ससुर के घर मे निवास करता है। कहो भला, इससे अधिक आनन्द कहाँ मिलेगा ?

बुध—बात तो ऐसी ही है। जब मै गुसाईंजी की रामायण पढ़ता हूँ और उसके पद-लालित्य एवं भाव-गाम्भीर्य पर दृष्टि डालता हूँ, तब मुझे असीम आनन्द होता है। देखिये, "पुरइनि सघन ओट जल वेगि न पाइय मर्म। मायाच्छन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म" ॥ इस दोहे में गुसाईंजी ने स्वल्प ही मे माया-ब्रह्म मे भेद और ब्रह्म की सर्वव्यापकता तथा ब्रह्म से ही माया की उत्पत्ति, स्थिति और लय का निरूपण किया है। जल ही से पुरइनि की उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। संसारी जीव माया से आवृत्त होकर ब्रह्म को सरलता से नहीं जानते है। पर माया के दूर होते ही ब्रह्म दृष्टि-पथ मे आता है। (घड़ी देखकर) अरे, अब तो समय हो गया। चलो, घूमने चलें। (दोनो जाते है)

[पर्दा गिरता है]

चतुर्थ दृश्य।

(दो सज्जन बैठे आपुस मे बातें कर रहे हैं)

प्रथम—भाई निरंजन, न्यायालय मे जो न्यायाधीश थे उनके स्थान पर अब एक दूसरे न्यायाधीश हुए हैं। इनकी बहुत प्रशंसा सुनी जाती है। इन्होने कई अभियोगो का बहुत ही अच्छा न्याय किया है और अपराधियो को उचित दण्ड दिया है।

निरंजन—अजी ये न्यायाधीश और कोई नही, वही बुध महाशय हैं जो कुछ समय पहिले यहीं विद्यालय में पढ़ते थे और अपनी श्रेणी में सर्वश्रेष्ठ रहते थे।

प्रथम—भाई, विद्या की महिमा अपार है! भर्तृहरिजी कहते हैं,

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्त धनम् ।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ॥
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं ।
विद्या राजसुपूजितो नहि धन विद्या-विहीन पशु ॥

निरंजन—हाल मे एक अभियोग का न्याय इनके न्यायालय मे ऐसा अच्छा हुआ कि उससे इनकी कीर्ति-कौमुदी और भी प्रस्फुटित हुई है। अबुध, जो इन्हीं बुध महाशय का सहपाठी था, कुछ दिन हुए, जुआँरियो के साथ जुआ खेलते पकड़ा गया। वह सोचता था कि सहपाठी होने के कारण बुध मेरा पक्ष लेकर छोड़ देंगे। इस विषय पर बहुत-कुछ उनके घर पर भी कहा-सुनी हुई, पर उन्होंने साफ़ कह दिया कि आपकी दशा पर मुझे बहुत खेद है; पर क्या करूँ? कर्त्तव्य की साँकल से बँधा हुआ मै अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित होने में असमर्थ हूँ। आप मेरे सहपाठी थे, इससे मै यही कहता हूँ कि—

दुष्ट कर्मों से बचो गुण ईश का गाया करो।
मित्र! निज कर्तव्य-रत हो कीर्ति फैलाया करो॥

ऐसा कह और न्यायालय मे जा सबपर पचास पचास रुपये अर्थ-दण्ड किया। ठीक है, "जो जस करै सो तस फल चाखा।"

प्रथम—किसीने ठीक भी कहा है कि मनुष्य अपने कर्मों द्वारा ही ऊँचे और नीचे जाता है, जैसे कुआ खोदनेवाला नीचे और दीवाल उठानेवाला ऊपर जाता है। अस्तु, हमारी तो ईश्वर से यही प्रार्थना है कि—

"आर्य भारत के निवासी दुर्गुणो को छोड़कर।
ईश! होवें शान्तियुत शालीनता को ओढ़कर॥"

(पटाक्षेप)

आजकल के लड़के

पात्रः—

१—हरेश्वर भट्ट—एक वृद्ध मनुष्य

२—बोधराम—उनके पुत्र

३—केशवानन्द—बोधराम के पुत्र

४—मुकुट—केशवानन्द के पुत्र

५—वसन्तकुमार—मुकुट के पुत्र

पहला दृश्य।

कालः—सन् १८५५ ईस्वी।

[एक तख्ती टँगी है जिसपर सन् १८५५ ईस्वी लिखा है]

[**स्थलः—**एक आँगन। एक टूटा-सा तख्त पड़ा हुआ है और उसपर लाल खारुए का एक तकिया पड़ा है। उस तकिये पर अपने हाथ टेके और एक पुरानी धोती पहने श्रीयुत हरेश्वर भट्ट बैठे हैं और थैली मे की तमाखू निगलकर पास ही रखी हुई पीकदानी मे थूँक रहे है। पास ही बोधराम बैठा है]

हरेश्वर भट्ट—बुद्धू! क्या कहता है? तू रंगरेजी पढ़ेगा? अरे मूर्ख, तनिक विचार कर। तेरे बापदादो ने साफ साफ़ कह दिया है कि "न वदेत् यावनीं भाषां प्राणैः कंठगतैरपि।"

अरे, हमें उस भ्रष्ट भाषा को सीखकर क्या करना है ? हमें वेद पढ़ना चाहिए—संहिता कहनी चाहिए। कहीं भी जाकर चार मंत्रों का उच्चारण किया कि फिर क्या इस पेट के लिए कुछ कमी है ? जान पड़ता है कि रंगरेजी पढ़कर तू भ्रष्ट होना चाहता है ? अरे, हमारी जाति, हमारा धर्म तुझे किसीकी भी परवाह नहीं। यदि कहीं तू यह यावनी भाषा पढ़ गया, तो समझ लेना कि मैंने तेरा और तूने मेरा त्याग कर दिया। समझा ?

नेपथ्य में से—सीख लिया यस् फ्यास् तो क्या होगा ? विनायक भट्ट का रामू पढ़ता है कि नहीं उस पादरी के पास ?

हरे०—(गुस्से से) अरी, इस कलयुग में तू भी मुझे ज्ञान बतलाने लगी ? ऍ, कहती है कि रामू पढ़ता है ? खा गधे, वह पाद्री मास-मच्छी खाता है, इसलिए जा, तू भी वहीं खाद्य भक्षण कर। समझा ? और, सुन री, जिस तरह पाद्री साहिब की स्त्री लहँगा पहिनती है उस तरह तू क्यों नहीं पहिनती ?

बोधराम—(धीरे से) मुझे अच्छी नौकरी मिलेगी।

हरे०—नौकरी ? अरे, तुझे नौकरी की क्या पड़ी है ? जहाँ चार घरों में फेरी दी कि बस, रुपये ही रुपये आ गये। सेवा करना शूद्रों का धर्म है, अपना नहीं। समझा ? नौकरी मिलने से कुछ तुझे स्वर्ग के दर्शन तो हो न जायँगे। मेरी ओर देख, मैंने कहीं नौकरी की है ? फिर बता, मेरा कहाँ क्या अड़ गया ? संसार चलाया, बाल-बच्चे उत्पन्न किये, चार पैसे इकट्ठे कर लिये और तेरा विवाह भी कर दिया। नौकरी न करने पर भी मैंने ये सब काम कर डाले। (बोधराम रोने लगता है) बुद्धू, बाप की मृत्यु के लिए रोने का अभी समय नहीं आया है। (ठंडी साँस लेता हुआ) यदि तुम्हारे मन में सीखना ही

है, तो सीखो। तुम एक दफे अपना पोंगा बजा लो। तुम हो आजकल के लड़के! फिर तुम क्या हमारी सुनोगे?

दूसरा दृश्य।

कालः—सन १८७५ ईस्वी।

(एक तख्ती टँगी है जिसपर सन् १८७५ ईस्वी लिखा है)

[**स्थलः**—घर के एक चौतरे पर दरी और तकिया डाले श्रीयुक्त बोधरामजी बदन मे फ़लालैन की बंडी पहने हुए बैठे है। उनके सामने पान का डब्बा, तमाखू की डिबिया और पास ही एक सन्दूक पर सरकारी काम के कुछ काग़जात पड़े हुए है। सामने ही उनका लड़का केशवानन्द खडा है]

बोधराम—तेरे कर्म तुझी को शोभा देते हैं। आज कितने दिनो से मै उन्हे देख रहा हूँ। मैं कहता था कि तेरे आचरण आज सुधरेंगे, कल सुधरेंगे, परन्तु कुछ नहीं हुआ। मेरी सारी आशा निराशा हो गई। अरे हम क्या अँग्रेज़ी नही पढ़े है? क्या पढ़ते समय यह सिखलाया जाता है कि चोटी मे गठान नही लगाना चाहिए या पगड़ो के बदले टोपी पहनो? यह है भी क्या? आज छः महीने हो गये। मै सब देख रहा हूँ। दिनोदिन तेरे आचरण भ्रष्ट हो हो रहे हैं। वह कोट बनाने की तुझे किसने बुद्धि दी? और बदन मे घुंडियो के कुर्ते क्या अच्छे मालूम होते है? जान पड़ता है कि बाराबंडियाँ और अँगरखे तुझे काटते है और पगड़ियो से सिर पर बोझ होता है? यही न? हम तो जैसे आदमी ही नहीं है? फिर यह इतनी बड़ी धोती भी क्यो पहनता है? साहब लोगो की तरह पतलून-बूट पहनकर फिर। वाह! अच्छा सपूत निकला।

हो जा। तुम हो आजकल के लड़के ! फिर तुम क्या हमारी सुनोगे ?



तीसरा दृश्य।

काल—सन् १८६५ ईस्वी।

(एक तख्ती टँगी है। उसपर सन् १८९५ ईस्वी लिखा है)

[स्थल—अट्टालिका की एक कोठरी। उससे दरी, गद्दी आदि की एक बैठक है और पास ही एक कुर्सी और एक मेज़ रक्खी है। कुर्सी पर बैठे हुए श्रीयुत केशवानंदजी टेबल पर रक्खे हुए कुछ सरकारी कागज़ों का अवलोकन कर रहे है। उनके बदन पर एक घुंडीदार कुर्ता है और एक हाथ मे जलती हुई बिड़ी। पास ही उनका बेटा 'मुकुट' खड़ा है]

केशवानंद—मुकुट, तेरे विचार मुझे बड़े विचित्र मालूम होते है। तू कहता है कि अभी विवाह करने से तेरे पढ़ने मे बाधा उत्पन्न होगी। अरे क्या इस संसार में तू ही एक पढ़नेवाला है ? विवाह से पढ़ने मे किस प्रकार बाधा उत्पन्न हो सकती है ? (किवाड़ की ओर देखकर अपनी स्त्री को सुनाते हुए) आपके चिरंजीव कहते है कि "मै विवाह नही करता, क्योकि उससे पढ़ने मे बाधा उत्पन्न होगी।" क्या यह अब छोटा है ? बीस साल का ऊँट के समान लम्बा हो गया है। मैं तो भाई हार खा गया। अब तू ही इसे समझा। जब मेरा विवाह हुआ था, तब तेरी उम्र क्या थी ?

नेपथ्य मे से—यह क्या, कुछ तो भी कहते हो, होऊँगी नौ-दस बरस की।

केशवानंद—मेरी भी उम्र उस समय कितनी थी ? मै तो केवल सोलह बरस का था। क्यो रे मुकुट, फिर मेरे पढ़ने मे तो कुछ भी बाधा नही पहुँची। सचमुच तुझे इतनी स्वतन्त्रता देकर मैंने अपने ही हाथो से अपने पैरो पर कुल्हाड़ी मारी। यह मेरी भयङ्कर भूल हुई है। शर्ट मॉगे, शर्ट बनवा दिये; साइकल मॉगी, साइकल खरीद दी, कोट सिलाने के लिए कहा, तो भैया! वह भी सिला दिया। मैंने आज तक तेरे लिए कोई भी कसर नहीं की। मेरे बिना पूॅछे भी तूने आज तक न जाने कितनी बातें कर डालीं, परन्तु मैंने उस ओर कुछ भी ध्यान नही दिया। तूने कालर्स लिये, नेकटाय खरीदे और ऐसी—न एक न दो—बरन कई चीज़े मोल ले डालीं, परतु मै यही कहा करता था कि लड़का अभी छोटा है, उसे उसीके मन का करने दूॅ, बड़ा होने पर फिर वह स्वयं समझने लगेगा और अपने आचरण सुधार लेगा, परन्तु तू दिनोदिन बिगड़ता ही जा रहा है। कल रास्ते में मुझे दामोदरप्रसाद का लड़का मिला था। वह कहता था कि तूने कालेज के 'डिबेटिंग क्लब' मे कहा था कि पुनर्विवाह करना उत्तम है। साहब लोगों की स्त्रियॉ पुनर्विवाह करती है, इसलिए वह उत्तम है। यदि साहब लोगो का ही तुझे इतना अनुकरण करना है, तो तुझे हमारा रक्खा हुआ 'मुकुट' नाम भी पसन्द न होगा। फिर हेन्री, जान इत्यादि मे से एकाध नाम क्यो नही रख लेता ? (अपनी स्त्री से) सुना ? आपके पुत्र के कैसे प्रताप है ? इनको विधवा ही से शादी करना है। आजकल यह एक नया मत ही निकल गया है ना ?

नेपथ्य में से—यह तो कुछ भी है। बेटा मुकुट, विवाह कर ले। विधवा भला सधवा किस प्रकार हो सकती है ? आप तो कुछ भी अंडबंड बक रहे है। मुकुट, तू अपने पढ़ने की तनिक भी

चिन्ता न कर। हम तेरे लिए एक छोटी सी कन्या खोजेंगे। (थोड़ी देर तक सब चुपचाप रहते हैं)

केशवानन्द—(अपनी स्त्री को सुनाकर) देख, तू ही देख, क्या वह कुछ बोलता है ? कैसी चुप्पी साध ली है ? वह समझता है कि अब मैं सठया गया हूँ और इसलिए मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। क्यों मुकुट, ठीक है ना ?

मुकुट—जब मैं स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो सकूँगा, तभी विवाह करूँगा।

केशवानन्द—यह तो केवल आडम्बर है। तुझे अपने खर्च की कुछ भी फिक्र है ? अपने कालेज का खर्च क्या तू ही चला रहा है ?

नेपथ्य में से—मुकुट, ईश्वर की कृपा से हमें क्या कमी है ? तू तो विवाह करने के लिए राज़ी हो जा। मुझे कितनी यातनाएँ सहन करनी पड़ती हैं ? तू मुझपर प्यार करता है ना ? तो बस, विवाह के लिए अपनी सम्मति दे दे। क्या मेरे कहने से भी तू विवाह करने के लिए राज़ी न होगा ? बेटा, इतना निष्ठुर न हो जा।

केशवानन्द—वह क्या जाने तुम्हारी माया या ममता ? उसके जो सिद्धान्त हैं उन्हींके अनुसार वह काम कर रहा है।

मुकुट—(धीरे से) माताजी, तुम्हारे कहने से मैं विवाह किये लेता हूँ, परन्तु मैं अपनी भावी पत्नी को स्वयं पसन्द करूँगा। वह देखने में सुन्दर और पढ़ी-लिखी होनी चाहिए।

केशवानन्द—वाह ! हम जो देखेंगे सो तुम्हारे बुरे के लिए देखेंगे ? क्या हम तुम्हारे शत्रु हैं ? तू खुद अपनी पसन्द की हुई लड़की से शादी करेगा ? मैं तो कहीं अपनी स्त्री को पसन्द करने नहीं गया। फिर भी मैं देखता हूँ कि कुछ भी त्रुटि नहीं रही। अरे

क्या माता-पिता को तुम्हारी तनिक भी चिन्ता नहीं रहती? वे जो कुछ करेंगे सो क्या तुम्हारे अहित का करेंगे?

मुकुट—(धीमी आवाज से) मुझे उसीके साथ अपना सारा जीवन व्यतीत करना है··· ··

केशवा०—वाह रे मूर्ख! तू क्या यह समझता है कि मैं किसी चुड़ैलिन से तेरा विवाह करा दूँगा? क्यो यही न? जब हमारे पिताजी ने हमारा विवाह निश्चित किया, उस समय मैंने तो तनिक भी आनाकानी नहीं की, कुछ पूँछपाँछ भी नही की। चुपचाप उठा और भाँवरें फेर लीं।

नेपथ्य में से—(केशवानन्द से) परन्तु मै यह कहती हूँ कि उसका कौन ऐसा अधिक कहना है? यदि वह चाहता है तो उसे लड़की बतला दी जाय। आप भी क्यो व्यर्थ हठ पकड़ते हैं? (मुकुट से) देख मुकुट, तू ही अपने मन की लड़की खोज ला। यही अच्छा है। अब तो मेरे ही दिल की हो गई? पर, याद रख कि हम जो करेंगे सो तेरे ही भले का करेंगे। समझा?

केशवा०—(मुकुट से) होने दो, तुम्हारा ही कहना हो जाने दो। तुम हो आजकल के लड़के! फिर क्या तुम हमारी सुनोगे?



चौथा दृश्य।

कालः—सन् १९३० ई०।

[एक तख़्ती टँगी है जिसपर सन् १९३० ई० लिखा है]

[एक अत्यन्त सुसज्जित दीवानख़ाने मे श्रीयुत मुकुटधर आरामकुर्सी पर पड़े हुए चुरुट पी रहे है। बदन में एक शर्ट पहिने हुए है। उनके सिर पर सघन बाल है और उनमें से कुछ बाल चोटी-रूप से लम्बे है।

उनके पास ही एक आरामकुर्सी पर उनके पुत्र मिस्टर वसन्तकुमार नया "टाइम्स" पढ़ते हुए बैठे है। वे एक रेशमी शर्ट पहिने हुए है। उसपर एक सुन्दर नेकटाई शोभित हो रही है। पैरो में केनवास के स्लीपर और चक्षुओं पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा चढ़ा हुआ है। पोमेड लगाकर उन्होंने अपने बालों की रचना अत्यंत उत्तम रीति से की है]

मुकुट—वसंत, इंग्लेण्ड जाने की यह हठ छोड़ दे। यहाँ रहने से क्या विद्या का अध्ययन नहीं हो सकता ? यहाँ पर एम. ए, एल-एल बी इत्यादि कई प्रकार की परीक्षाएँ है। इन परीक्षाओं मे उत्तीर्ण होने से तू यही अपनी उन्नति कर सकता है। क्या जस्टिस रानडे और तैलंग इंग्लेण्ड गये थे ? तेरी यह हठ व्यर्थ है।

वसन्त—परन्तु पिताजी, मै अभी कहाँ एफ़ ए पास हुआ हूँ ? फिर यदि वकील बनने का विचार किया जाय, तो कम से कम ४ साल चाहिए और आजकल वकील को पूछता ही कौन है ? इसके सिवा, यह भी निश्चय-पूर्वक नही कहा जा सकता कि प्रत्येक वर्ष मे मै यूनीवर्सिटी की परीक्षाओ में उत्तीर्ण हो ही जाऊँगा। फिर देखिए, यदि मैं आज ही इंग्लेण्ड गया, तो ३ साल के भीतर मै एक बैरिस्टर-एट-ला बनकर आ जाऊँगा। बैरिस्टर को जैसा आदर प्राप्त होता है उसकी आशा बेचारे वकील स्वप्न में भी नही कर सकते, इसलिए आप मुझे आज्ञा दे ही दीजिए।

मुकुट—वसंत, तुझे दूसरे देश भेजने से मुझे जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा उनकी तुझे कल्पना भी नहीं है। अरे! धर्म का बिलकुल ही त्याग कर देना ठीक नही है। वहाँ जाने से तेरे भोजन का हिसाब-किताब बिलकुल बिगड़ जायगा। वहाँ तुझे अभक्ष्य भक्षण करना पड़ेगा। जो हो;

हमें अपनी धर्म-मर्यादा का बिल्कुल ही त्याग कर देना ठीक नहीं।

वसन्त—पिताजी, आपकी ये कल्पनाएँ कितनी क्यूरियस (curious) हैं? यह सब धर्म का केवल ढकोसला है। क्या आजकल के ज़माने में यहाँ रहकर भी लोग अनाचार नहीं करते? अवश्य करते हैं। और हम यह भी देख रहे हैं कि समाज उनका कुछ भी नहीं करता। फिर ऐसी अवस्था में यदि मैं इँग्लेण्ड गया, तो कोई भी ऐसा कार्य नहीं कर रहा हूँ जो जग-विरुद्ध कहा जा सके। क्या आपकी यह इच्छा नहीं है कि आपका पुत्र बैरिस्टर हो, संसार में कीर्ति सम्पादन करे? धर्म के इस ढोंग में रखा ही क्या है? Damn this old rotten religion

मुकुट—शाबास! आपके मुख से विद्वत्ता के ये मुक्ताफल बाहर निकलने लगे! मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि तू इतना धर्म-भ्रष्ट हो जायगा। हाँ, कालेज में प्रवेश करते ही जब तूने अपनी शिखा को साफ छुट्टी दे दी, तभी से मुझे कुछ सन्देह होने लगा था। एकाध समय तो तेरा जनेऊ भी साफ़ उड़ा हुआ दिखता है। मैं अभी तक सुन रहा था कि तू आजकल सिग्रेट का शौक़ करता है। सो अब मुझे सच मालूम होता है। वाह! तू हमारे कुल की कीर्ति ख़ूब उज्ज्वल करेगा! बस, यदि तुझे पढ़ना है तो हिन्दुस्थान कुछ छोटा-सा देश नहीं है। तुझे विलायत भेजकर वहाँ तुझे स्वच्छन्द विहार करने देने को मेरे पास धन नहीं है। अब तू मुझसे इस विषय की चर्चा न कर।

(नेपथ्य में से) मैं कहती हूँ कि जब उसे विलायत जाने की ही इच्छा होती है तो भला आप न जाने क्यों उसे

रोक रहे हैं ? आपकी इच्छा तो यह रहती है कि समाज आप को 'सुधारक' कहे। फिर ऐसे ऊपरी सुधार के ढोंग से क्या होता है ? आप हमेशा कहा करते है कि स्त्रियाँ मूर्ख हैं। परन्तु क्या आपके इस कार्य से, वसन्त को इंग्लैण्ड जाने की आज्ञा न देने से, आपकी मूर्खता नही प्रकट हो रही है ? जो हो, वसन्त को विलायत भेजना ही चाहिए। प्यारे ! मेरी बड़ी इच्छा है कि लोग मुझे बैरिस्टर की माता कहकर मेरा ख़ूब आदर-सत्कार करें।

मुकुट [अपनी स्त्री से] ख़ैर ! तुम्हारा ही कहना हो जाने दो, परंतु यह तो बताओ कि तुम कैसे कह सकती हो कि वहाँ लड़का बिगड़ेगा नही ? कही वहाँ से आते समय एकाध गोरी मेम साथ ले आया, तो सारा काम चौपट ! वह गनपतलाल का लड़का लाया है कि नही एक मेम ?

[नेपथ्य मे से] मेरा वसन्त उस तरह का नही है। क्यो वसन्त, तू तो नही ऐसे फन्द करेगा ?

वसंत—हः हः ! भला विलायत को बैरिस्टरी के लिए जाने से इसका क्या संबंध ? विवाह याने अपने लिए जन्म भर की सगिनी खोजने का एक कठिन प्रश्न है। फिर मै पूछता हूँ कि उसे हल करने के समय जात-पाँत की पूँछपाँछ करनी चाहिए ? यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक मनुष्य अपने ध्येय के अनुसार यह सब काम करेगा। हाँ पिताजी, फिर आपकी आज्ञा है न ? मै इसी स्टीमर से चल दूँगा।

मुकुट—जाओ। तुम्हारे ही मन का हो। हमारी आज्ञा मे क्या रखा है ? तुम हो आजकल के लड़के ! फिर क्या तुम हमारी सुनोगे ?

[पटाक्षेप]



पृथ्वीराज

पहिला दृश्य ।

[स्थान—दिल्ली का राज-दरबार]

(महाराजा पृथ्वीराज और कई एक सामन्त बैठे हैं)

पृथ्वीराज—(सामन्तों से) सुना है कि मुहम्मद गोरी फिर दिल्ली पर चढ़ाई करनेवाला है ।

पहिला सामन्त—महाराज, वह तीन बार तो चढ़ाई कर चुका और तीनों बार आपने उसे हराकर भगा दिया । अब की बार भी हम लोग उसी उत्साह से अपनी जन्मभूमि की रक्षा करेंगे । श्रीमान् इसके लिए कुछ चिन्ता न करें ।

पृथ्वीराज—आप ही लोगों के भरोसे तो हमने तीन बार उसका सामना किया है और आपही ने हमारे राज्य की प्रतिष्ठा रक्खी है । आप लोगों के रहते हुए हमें शत्रु का कोई भय नहीं है, पर खेद इस बात का है कि भरतखण्ड के सब राजाओं ने मिलकर एक बाहिरी शत्रु को परास्त करने में हमें सहायता नहीं दी ।

दूसरा सामन्त—यही तो नाश के चिन्ह हैं ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(महाराज से) महाराज, कन्नौज के मंत्री श्रीमान् से भेंट

करने के लिए आये हैं। आज्ञा हो, तो उन्हे दरबार मे ले आऊँ।

पृथ्वीराज—हाँ, उनको आदर-सहित ले आओ।

(द्वारपाल जाकर मन्त्री को लाता है)

सुमन्त—(हाथ जोड़े हुए आगे बढ़कर) दिल्लीपति की जय हो!

पृथ्वीराज—(कुछ सिर झुकाकर) आइए मन्त्रीजी, बैठिए। (सुमन्त बैठते है) कहिए, आपके राज-कुल मे कुशल तो है?

सुमन्त—महाराज, ईश्वर की कृपा से सब लोग प्रसन्न है।

पृथ्वीराज—कहिए, इस समय आप दिल्ली मे कैसे आये? मेरे योग्य जो काम हो सो बताइए।

सुमन्त—धर्मावतार, हमारे महाराज जयचन्द ने आसपास के सब राजाओं को जीतकर अपने राज्य, कोष और सेना की वृद्धि की है। इसलिए अब उनका विचार राजसूय यज्ञ करने का है और इसके साथ वे अपनी कन्या संयोगिता का स्वयंवर भी रचेंगे। इन दोनो कार्यों के लिए उन्होंने मेरे हाथ आपके पास निमंत्रण भेजा है कि आप यज्ञ के समय कन्नौज पधारने की कृपा करे।

पृथ्वीराज—सुमन्तजी, हमें तो मुसलमानों के मारे घड़ी-भर का अवकाश नही है। सुना है कि मुहम्मद गोरी फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने की घात में है। ऐसी अवस्था में हमारा आपके यहाँ जाना कठिन है।

एक सामन्त—मन्त्रीजी, जब मुसलमानों ने दिल्ली पर चढ़ाई की, तब तो आपके महाराजा ने कुछ भी सहायता न दी, और अब राजसूय यज्ञ करते हैं! यह यज्ञ का समय है अथवा देश-रक्षा का?

सुमन्त—(सामन्त से) आपका उपदेश यथार्थ है; पर वे तो यज्ञ की

सब तैयारी कर चुके हैं। (महाराज से) तो अब मैं जाकर अपने महाराज को क्या उत्तर दूँ ?

पृथ्वीराज—बस, आप जाकर यही उत्तर दीजिए कि पृथ्वीराज को राजसूय यज्ञ की अपेक्षा देश-रक्षा की अधिक आवश्यकता जान पड़ती है।

सुमन्त— जो आज्ञा। (प्रणाम करके जाता है)

पृथ्वीराज—(कुछ सोचकर) हमे जान पड़ता है कि जयचन्द हमारा उत्तर सुनकर अवश्य ही कुपित होगे और आश्चर्य नही कि हमारे साथ युद्ध करने के लिए तैयार हो जावे। हम अभी जाकर उनका यज्ञ विध्वंस कर देते, पर इस समय हमें एक बाहिरी शत्रु का सामना करना है, इसलिए घर में विरोध उत्पन्न करना उचित नही है।

पहिला सामन्त—महाराज, तो भी हमे युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। मुझे तो यहाँ तक शङ्का है कि कहीं जयचन्द मुहम्मद गोरी से न मिल जावे।

पृथ्वीराज—कुछ भी हो, पर युद्ध की तैयारी अवश्य की जावे। आप लोग सेनापति से मिलकर इस विषय मे बातचीत कीजिए, और फिर उन्हें हमारे पास भेज दीजिए। (सब जाते है)

दूसरा दृश्य।

[स्थान—कन्नौज का महल]

(जयचन्द, मन्त्री सुमन्त और दो ठाकुर बैठे है)

जयचन्द—मन्त्रीजी, हम पृथ्वीराज का पीछा करते हुए दिल्ली तक पहुँच गये थे, और चाहते तो उनको कैद कर लेते; पर जब हमने देखा कि सयोगिता उनके पीछे घोड़े पर बैठी हुई है, तब

हमारा मन प्रेम और दया से भर गया। अब हम अपनी बेटी के हरण के कारण पृथ्वीराज से युद्ध न करेंगे।

सुमन्त—महाराज, पृथ्वीराज यथार्थ मे वीर पुरुष है, और हम समझते हैं कि यदि आप द्वारपाल के स्थान पर उनकी मूर्ति रखकर उनका अपमान न करते, तो वे आपसे कभी युद्ध न ठानते, और न सयोगिता का हरण करते।

जयचन्द—हमने उनका अपमान उनके अभिमान के कारण किया था। एक तो उन्होंने हमारे यज्ञ का निमंत्रण अस्वीकृत किया, और दूसरे, जब से नाना अनङ्गपाल ने हमको छोड़कर उनको दिल्ली का राज्य दे दिया है, तब से उन्हे बड़ा अहङ्कार हो गया है। कुछ भी हो, अब हमें, भाट को भेजकर, पृथ्वीराज और संयोगिता का विवाह करा देना चाहिए।

एक ठाकुर—महाराज का विचार बहुत ठीक है; क्योंकि संयोगिता अपनी इच्छा से पृथ्वीराज के साथ गई है। युद्ध के समय मैंने पृथ्वीराज के गले में कमान डालकर उनको खीचना चाहा; पर संयोगिता ने अपने दाँतो से उस कमान की डोरी काटकर पृथ्वीराज की रक्षा की।

जयचन्द—(व्याकुल होकर) ठीक है। मेरा भी यह अनुमान है। स्वयंवर के समय भी उसने जानकर पृथ्वीराज की मूर्ति के गले में जयमाला डाली थी। (भाट से) श्रीकण्ठ, तुम अभी दिल्ली जाकर पृथ्वीराज और संयोगिता का विवाह करा दो।

भाट—जो आज्ञा, महाराज! (जाता है)

जयचन्द—अच्छा, अब हमें इस बात का विचार करना है कि मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने के लिए हमसे जो सहायता माँगी है, उसके लिए उसे क्या उत्तर दिया जाय?

सुमन्त—महाराज, जब पृथ्वीराज से आपका घनिष्ठ सम्बन्ध हो

गया है, तब आपको उनके शत्रु से मेल करना उचित नहीं है। इस समय यवन लोग दिल्ली पर चढ़ाई करनेवाले है, और यदि वे जीत जॉयगे, तो उन्हे कन्नौज पर भी चढ़ाई करने का साहस हो जायगा। उस समय क्या आप अकेले अपने प्रदेश की रक्षा कर लेगे ? आपको चाहिए कि आप इस समय पृथ्वीराज की सहायता करें और बाहिरी शत्रु को देश में घुसने मे रोके।

जयचन्द—मन्त्रीजी, पृथ्वीराज ने हमारा जो अपमान किया है उससे यह नहीं हो सकता कि हम उनकी सहायता करें। पर यदि आप पृथ्वीराज के साथ हमारे सम्बन्ध का विचार करते है, तो हम केवल इतना ही कर सकते है कि हम लोग गोरी को सहायता न दें।

पहिला सामन्त—नहीं महाराज, इतनी दया से काम न चलेगा, क्योंकि मैंने सुना है कि यवनो की सेना कई लाख है और महाराज पृथ्वीराज के पास केवल पन्द्रह हज़ार सिपाही है। उनके सहायक केवल उनके बहनोई, चित्तौर के राना समरसिंह है।

सुमन्त—महाराज, इस विषय में आप एक बार और विचार कर लीजिए। यह अवसर एकता का है, भिन्नता का नहीं। इस समय आपको केवल पृथ्वीराज ही के शत्रु से नहीं, किन्तु देश-भर के शत्रु से लड़ना है। यदि आप पृथ्वीराज की सहायता करेंगे, तो आपके साथ आपके कई अधीन राजा भी रण मे जायँगे।

जयचन्द—मन्त्रीजी, इन्ही राजाओं के सामने तो पृथ्वीराज ने हमारा अपमान किया है। बस, हमने सोच लिया है कि हम मुहम्मद गोरी को सहायता न देंगे, पर पृथ्वीराज की सहायता करना हमे इष्ट नहीं है।

सुमन्त—(आपही आप) जब मनुष्य के बुरे दिन आनेवाले होते है,

तब उसे हितकर उपदेश भी अप्रिय होता है। (प्रकट) महाराज, आप स्वयं बुद्धिमान है, जैसा उचित समझें वैसा करे।

जयचन्द—हम जो उचित समझते है, वही करेंगे। अब सभा विसर्जन हो। [सब जाते है]

तीसरा दृश्य।

[स्थान—ग़ज़नी का कारागार]

[अन्धे पृथ्वीराज हथकडी और बेड़ी पहने बैठे है]

[चन्द कवि का प्रवेश]

चन्द—महाराज के चरणो में मेरा प्रणाम है।

पृथ्वी०—कौन है? वोली से तो मुझे चन्द से प्रतीत होते है। क्या चन्द हैं?

चन्द—जी महाराज!

पृथ्वी०—कहो चन्द, तुम यहाँ कैसे आये?

चन्द—महाराज, आपके दर्शन के लिए।

पृथ्वी०—क्या हमारे पास आने में तुमको किसीने रोका नही?

चन्द—नही महाराज, मैने सुलतान से आज्ञा ले ली है।

पृथ्वी०—अच्छी बात है। कहो भरतखण्ड की क्या दशा है?

चन्द—महाराज, मैं आपको वहाँ की दशा अभी बताता हूँ, पर आप यह तो कहिए कि आपके नेत्रो की यह दशा कैसे हुई?

पृथ्वी०—सखा, यह उसी यवन की दुष्टता है, पर मुझे अब इसकी कुछ चिन्ता नही है। तुम तो मुझे भरतखण्ड का हाल सुनाओ।

चन्द—महाराज, युद्ध मे आपके पकड़े जाने का समाचार पाकर, सब

रानियो ने जौहर कर डाला और राजपूत लोग अन्त तक मुसलमानो से लड़ते रहे।

पृथ्वी०—यह तो तुमने भला समाचार सुनाया! और हमने पहरुए से यह सुना है कि महाराज जयचन्द गोरी से हारकर, भागते समय गङ्गा मे डूबकर मर गये। क्या यह सत्य है?

चन्द—हाँ महाराज, उन्होने अपने किये का फल पाया। दिल्ली की चढ़ाई के थोड़े ही दिनो बाद गोरी ने कन्नौज पर भी अपना अधिकार कर लिया।

पृथ्वी०—(लम्बी साँस लेकर) हाय! अब उत्तर भारत से हिन्दू-राज्य उठ गया। अब तुम शीघ्र देश को लौट जाओ; क्योंकि यहाँ रहने मे तुम्हे प्राणो की जोखिम है।

चन्द—महाराज, जब स्वय दिल्लीश्वर की यह दशा है, तब मुझे अपने प्राणो का क्या सोच हो सकता है? मै तो यहाँ एक विशेष विचार से आया हूँ और उसको पूरा करके मातृ-भूमि के ऋण से मुक्त होऊँगा!

पृथ्वी०—मित्र, वह कौनसा विचार है?

चन्द—(धीरे) महाराज, मै गोरी से आपके शब्द-वेधी बाण चलाने की प्रशसा कर, आपको उसके दरबार में उपस्थित कराऊँगा। वहाँ आप उसका शब्द सुनकर शब्द-वेधी बाण के द्वारा उसका वध कीजिए। फिर हम और आप एक दूसरे को मारकर यवनो के हाथो से छुटकारा पा जायँगे।

पृथ्वी०—मित्र, यह सम्मति तो बहुत अच्छी है। तुम शीघ्र ही इस बात का प्रबन्ध करो। तुम्हीं हमारे सच्चे हितैषी हो।

चन्द—अच्छा, तो मै अब जाता हूँ। आप तैयार रहिए।

चौथा दृश्य ।

[स्थान—ग़ज़नी का राजदरबार]

(मुहम्मद ग़ोरी, वज़ीर और सरदार बैठे हैं। एक ओर महाराज पृथ्वीराज और चन्द खड़े है। दीवाल पर लोहे के सात बड़े बड़े तवे टँगे है)

मुहम्मद ग़ोरी—तो क्या पृथ्वीराज ऐसा तीर चला सकता है ?

चन्द—हमारे महाराज शव्द-वेधी बाण चलाने के लिए तैयार है। आप उन्हे धनुष और वाण दिलाइए, और किसी तवे पर शव्द करने के लिए कहिए।

(मुहम्मद ग़ोरी की आज्ञा से एक सरदार महाराज को धनुष-बाण देकर तवे पर शब्द करता है, और महाराज उस तवे को वेधते हैं)

मु० ग़ो०—शाबास !

चन्द—यह तो कुछ भी नहीं है। हमारे महाराज मे और भी कई गुण है। सुनिए,

चार बाँस चौबीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
ता ऊपर सुलतान है, मत चुकै चहुआन॥

मु० ग़ो०—(दोहे का ठीक अर्थ न समझकर) अच्छा, दूसरे तवे पर आवाज़ करो।

(पृथ्वीराज ग़ोरी का शब्द सुनते ही उसको बाण मारते है और मस्तक मे बाण लगने से मुहम्मद ग़ोरी मरकर गिर पड़ता है)

मुसलमान सरदार—दौड़ो ! दौड़ो ! ! पकड़ो ! भागने न पावे ! !

[सिपाही उन दोनो पर टूटते है; परन्तु वे दोनो खड्ग से एक दूसरे को मारकर मर जाते है।]

देहाती पाठशाला

पात्र—

पाठक तथा रामराव मानीटर, गोविन्द, सदाशिव आदि ६-७ लड़के

[स्थानः—देहाती पाठशाला की एक कक्षा]

[लड़के एक के बाद एक कक्षा मे प्रवेश करते है। कोई धोबी की शक्ल मे, कोई बिहना, कोई बढ़ई, कोई दर्जी आदि बनकर आता है। एक लड़का बिल्कुल सीधा और शांत है। वह पंडितजी के बेत पटकने से ही केवल चौक उठता है। सबसे पहिले जो लड़का क्लास मे आता है वह पंडितजी को बैठा समझकर "पंडितजी प्रणाम" करता है, पर कुर्सी को ख़ाली तथा क्लास में एक भी लड़के को न देखकर अपने गाल मे चपत लगाकर कहता है, "पंडितजी न संडितजी, मै वैसे ही प्रणाम करता हूँ।" फिर एक के बाद एक लड़के आते जाते है। लड़के ख़ूब ज़ोर से बातचीत करते है। कोई जादू का खेल बताता है, इत्यादि। एक लड़का बाहर से आकर कहता है, "पंडितजी आते है।" परन्तु जब पंडितजी नही आते तब सब लड़के उसे पकड़कर चपत लगाते और स्वीकार कराते है कि अब कभी झूठ न बोलेंगे। एक लड़का कहता है, "पंडितजी की नानी मर गई। अब हम सबको १२ दिन की छुट्टी मिलेगी।" इतने मे पंडितजी आते हैं। पंडितजी का क़द बिल्कुल छोटा है, इतना छोटा है कि जब वे तख़्ते के पास कुछ समझाने जाते है, तब उन्हे एक तिपाई पर खड़ा होना पड़ता

है। जिस कुर्सी पर वे बैठते हैं वह इतनी ऊँची रहती है कि उन्हे नसेनी लगाकर बैठना पड़ता है। पंडितजी के आते ही सब लड़के शांत हो जाते है]

सर्व कक्षा—(खड़ी होकर) प्रणाम, पंडितजी।

पाठक—बैठ जाओ, बैठ जाओ। मानीटर! मानीटर! मानीटर कहाँ है?

रामराव—पंडितजी!

पाठक—अरे! बुलाने से जवाब क्यों नहीं देता? बहिरा कहीं का! हाज़िरी की किताब लाओ।

रामराव—(देता हुआ) यह लीजिए।

पाठक—हुं रामराव कृष्णराव।

रामराव—हाज़िर (धीरे से, "पंडितजी, मैं तो यही खड़ा हूँ")

पाठक—सदाशिव विनायक शर्मा।

सदाशिव—हाजिर।

पाठक—गोविन्दराव विट्ठल।

गोविन्दराव—(ख़ूब ज़ोर से) हाज़िर।

पाठक—तुम्हारे इस 'हाज़िर' शब्द से तो मेरा सिर दुखने लगा? अब तुम ठीक हिन्दी सीखने लगे हो, तो 'उपस्थित' क्यो नही बोलते हो? मूर्ख लड़के! हं नारायण जोशी।

रामराव—गैरहाज़िर-च-च-चूक गया, अनुपस्थित पंडितजी।

पाठक—क्यो, नारायण नही आया?

रामराव—नहीं पंडितजी!

पाठक—क्यो नही आया?

रामराव—मालूम नहीं पंडितजी!

पाठक—मूर्ख, मानीटर है, और कहता है कि मालूम नही, ख़बर

रखना था। गधा ही है। खबरदार, आगे ऐसा जवाब दिया तो ठीक नहीं। चलो, पहिले घंटे में क्या पढ़ना है ?

रामराव—जी हाँ, पढ़ना है।

पाठक—अरे, क्या पढ़ना है ?

रामराव—जी हाँ, वही पढ़ना है।

पाठक—अरे, क्या पढ़ना है ?

रामराव—चौथी पुस्तक।

पाठक—क्यों ? मालूम होता है 'भाषा' का कठिन उच्चारण करते नहीं बनता ? तब ही चौथी पुस्तक कहता है। अच्छा, पुस्तक निकालो। सदाशिव, पढ़ो।

सदाशिव—कौनसा पाठ पंडितजी ?

पा०—अरे, हमही से क्या पूछते हो ? कल जो हुआ था उसके आगे। बेशरम! कहो, कल कौनसा पाठ हुआ था ?

सदा०—(प्रखर स्वर से) दशवाँ (मन्द स्वर से) आधा हुआ था।

पा०—तो फिर ग्यारहवाँ पढ़ो।

सदा०—(पढ़ता है बुढ़ापे में इकलौती बेटी के विछोह के सोच में अहल्या बाई के हृदय की दशा अवर्णनीय हो गई।

पा०—हं, आशय कहो। बुढ़ापे याने क्या ?

सदा०—वृद्धावस्था।

पा०—अच्छा गोविन्द, इकलौती याने क्या ?

गोविन्द—अकेली।

पा०—अच्छा, विछोह याने क्या ? रामराव !

राम०—विछोह याने अं अं विछोह याने अं-अं.... .

पा०—अरे, अं अं क्या करता है ? याद है कि नहीं ?

राम०—नहीं पंडितजी !

पा०—नहीं। याद किया था क्या ? मूर्ख !

राम०—(काँपते काँपते) हाँ पंडितजी। (स्वगत) कल का पाठ तो पूरा नहीं हुआ। फिर आगे कैसे करे?

पा०—तो फिर याद क्यों नहीं? (छड़ी लेकर) हं, हाथ आगे करो। यह झूठ बोलने का इनाम? हं उस हाथ में। और झूठ बोलोगे?

राम—(विकल होकर) नहीं पंडितजी, याद किया नहीं पंडितजी, माफ़ करिए अः—अः (रोता है)

पा०—(उसे छोड़कर) लड़कों को बस खेल मे लगा दो; पर याद करने के नाम से तो उनका सिर दुखता है। याद न करें और मार के नाम से रोवें। मार खाना कड़वा लगता है, तो पाठ बराबर याद क्यो नही कर लाते? इनके सामने चिल्लाते चिल्लाते गला दुखने लगा! और इतने सबके बदले मिलता है कितना? केवल पंद्ररा रुपट्टी (इतने मे एक लडका कै करने लगता है और कै करता हुआ पंडितजी की आज्ञा लेकर क्लास के बाहर जाता और थोडी देर मे फिर आ जाता है)

सदा०—(गोविन्द से) पर यह सब यहाँ किसको [illegible]

गोविन्द—चुप! वे सुन लेंगे? ऊं, बोलने [illegible] ना क्या जाता है?

पा०—(तख़्ते पर लिखते है। इतने में लड़के खेल [illegible] है, कोई चपत मारता है, कोई दण्ड-बैठक लगाता [illegible] दि) हं, रामराव, वह बाँचो।

राम०—(बाँचता है) विछोह = अलग होना।

पा०—दस बार बाँचो (दस बार बाँचता है) [illegible] बेटी कौन लिग है गोविद?

गो०—स्त्रीलिंग, पंडितजी।

पा०—ठीक। जिन शब्दों के अन्त में ईक [illegible] है वे सब

स्त्रीलिंग समझना चाहिए; जैसे, रस्सी, रोटी, नदी। (इतने मे एक लड़का दर्शकों की तरफ मुँह करके कहता है, "और पंडितजी") समझे ? देखो सदाशिव, तुम एक उदाहरण दो।

रामराव—हाथी, पानी।

पाठक—मूर्ख ही हो, इतने बड़े हाथी का स्त्रीलिङ्ग कैसे हुआ ? अच्छा, यदि हाथी, पानी स्त्रीलिङ्ग है, तो इनका पुल्लिङ्ग क्या हुआ ?

रामराव—हाथ, पान।

पाठक—(कुर्सी की पीठ पर हाथ धरके) इन गधों को सिखाना कदाचित ब्रह्माजी ही से बन पड़े ! (इतने मे एक लड़का देरी होने के कारण डरता डरता आता है।) (पंडितजी कहते हैं—"देर से क्यों आये ?" लड़का—पानी 'फालिंग' झम्माझम। 'अम्ब्रैला' रखता दो दो हम। फिसला 'लैग' गिर गया हम। इसलिए फ़िदवी "कुड नाट कम"। पंडितजी—"यह क्या बकता है ? साफ़ साफ कह, देरी से क्यों आया ?" लड़का–"पंडितजी, पानी बरसता था ?" पंडितजी–"तो फिर देरी से क्यो आया ?" लड़का–[चलकर बतलाता हुआ] "जब मैं एक क़दम आगे चलता था, तो तीन क़दम पीछे हटता था।" पंडितजी–"अबे मूर्ख ! तो यहाँ कैसे आया ?" लड़का—"तो फिर मैंने घर की ओर मुँह किया और स्कूल की ओर पीठ। बस, फिर यहाँ आ गया।") गोविन्द, आगे पढ़ो।

गोविन्द— (बाँचता है) इसमे कुछ संदेह नही कि ऐसी दशा मे साधारण स्त्री धीरज छोड़ देती, पर अहल्याबाई......

पाठक—बस बस, हं सदेह याने क्या ? सदाशिव !

सदाशिव—धोखा पंडितजी !

पाठक—छिः, ऐसे से काम नही चलता। उदाहरण देकर बतलाओ।

अच्छा सुनो। हम बतलाते हैं। चन्द्र पर के चिन्ह को कोई वृद्ध स्त्री और कोई हिरन बतलाता है, पर चन्द्र पर जाकर कोई देख आया है क्या ?

सर्व कक्षा—नहीं, पंडितजी।

पाठक—तो फिर उस चिन्ह के विषय मे अपने को संशय है कि वह वृद्ध स्त्री का है कि हिरन का। देखें रामराव, तुम एक ऐसा उदाहरण दे सकते हो ?

रामराव—लोग कहते हैं कि अपने सिर में मस्तिष्क है; पर अपने सिर में किसीने प्रवेश किया है क्या ?

पाठक—नहीं।

रामराव—ठीक, तो उसे किसीने देखा है क्या ?

सर्व कक्षा—नही।

रामराव—तो फिर अपने सिर में मस्तिष्क है किम्वा नही, अभी इसमें संशय है।

पाठक—(क्रोध से चिल्लाकर) क्या ? (रामराव का कान जोरसे उमेठकर) क्या बोले ? फिर से कहो ? (प्रत्येक को एक एक छड़ी जमाकर) बेशरम, गधे, निर्लज्ज, बदमाश ! फिर से बोलो मस्तीखोर !

रामराव—पं-पं-पंडितजी, मैंने क्या किया ?

पाठक—(चपत टिकाकर) और अब पूछते हो कि क्या किया ? तुम्हे शरम नही आती ! ठहरो, तुम्हारी मस्ती निकालता हूँ ! मेरा मस्तिष्क है कि नहीं इसमे तुम्हे संशय है। क्यो ! ठहरो, तुम्हारी पीठ अभी इस छड़ी से उधेड़े डालता हूँ।

रामराव—त-तू-तैसा नही पंडितजी !

पाठक—तै-तै-तैसा नहीं तो फिर कैसा ?

रामराव—अपने याने आपके ऐसा अर्थ नही, पर यह मैंने "अपने" शब्द सर्वसाधारण के अर्थ मे कहा है।

पाठक—(कान छोड़कर) ऐसा ? जल्दी बोल दिया सो बच गये। अब कान मलते कितनी देर तक खड़े रहोगे ? गधा, बस आड़े-टेढ़े बोलने को तैयार और मार पड़ी कि चट लड़की-सा रोने को बैठ गये। बेशरम कहीं के। हं, सदाशिव, आगे पढ़ो।

सदाशिव—(पढ़ता है) अहल्या बाई का चित्त शांत होने से ....

पाठक—शांत याने क्या गोविन्द ?

गोविन्द—स्थिर, अचल।

पाठक—स्थिर, अचल, पर इन दो शब्दों का अर्थ क्या ?

सदाशिव—पंडित-पडितजी, जो लड़के जगह से नही उठते वे शांत हैं।

गोविन्द—नही पंडितजी, माँ कहती है, घर मे कुछ भी नुकसान हो, पर पिताजी कुछ नहीं बोलते; इसलिए वे शांत हैं।

पाठक—चुप चुप ! तुम्हारे माँ-बाप का यहाँ क्या सम्बन्ध ? रामराव, रोना पूरा हुआ कि नहीं ? कहो शांत याने क्या ?

रामराव—(आँख पोछते हुए) अ-अ-अचल।

पाठक—फिर से वही अचल। अचल याने क्या ?

रामराव—(रोते हुए) सू-सू-स्थ-स्थिर-अं ....

पाठक—स्थिर ! स्थिर याने क्या ?

रामराव—अ-अच-अचल !

पाठक—बेशर्मो, मेरा खेल मचाया है क्या ?

(इतने मे एक लड़का पंडितजी की आँख बचाकर कहता है—"पंडितजी तो खुद खिलौने है। खेल न मचे तो हो क्या ?") अच्छा, अचल और स्थिर इन दो शब्दों का अर्थ क्या ?

रामराव—श-श-शांत।

पाठक—(नाक-भौं सिकोड़कर) सब बाते तख्ते पर लिखते लिखते त्रास आ गया ? तख्ते पर बिना लिखे गधो के मंद सिर में कुछ घुसता ही नहीं ? इस काम से तो बड़ा त्रास होता है। न जाने

ईश्वर कब इनसे छुटकारा देगा ? मूर्ख ! तख्ते पर लिखता हूँ। देखो, पढ़ो [लिखते है। इतने मे लडके आपुस मे शैतानी करते है; पर पंडितजी के कक्षा की तरफ देखते ही सब शांत हो जाते है] इसे पढ़ो।

रामराव—[पढता है] शांत याने जल्दी से न घबरानेवाला ...

पाठक—दस बार पढ़ो और फिर से चूके तो मै (रामराव पढ़ता है) नही गधे, ऐसा याद रक्खो कि गुस्सा आने पर मुझसे बुरा कोई नही। कल तुम्हे कुछ नियम बतला दूँगा। उनके सार चले तो ठीक है, नही तो ऐसा समझो कि तुम्हारे सौ वर्ष पूरे हो गये। तुम क्या समझते हो ? मै गरीब दिखता हूँ, इसलिए मत चिढ़ाओ। मै जितनी ममता रखता हूँ उतनी ही मुझमे निष्ठुरता भरी है। (इतने मे एक लड़का पेशाब करने के लिए छुट्टी माँगता है। पंडितजी छुट्टी नही देते। लड़का आग्रह करता है, पर लाचार होकर कुड़कुड़ाता हुआ बैठ जाता है) हं (कुछ देर ठहरकर) तुम्हारा ऐसा समझना सम्भव है कि ममता और निष्ठुरता इतने परस्पर भिन्न गुण एक ही व्यक्ति के अंग मे कैसे रह सकते है; पर जो कहता हूँ सो सुनो। मेरे बतलाये हुए नियमो के अनुसार यदि चले, तो मुझ-सरीखा ममता रखनेवाला दूसरा तुम्हे कदाचित् ही मिले, नही तो—

गोविन्द—(धीरे से) पर यह व्याख्यान कब समाप्त होगा ? भाषा का घंटा खतम होने को आया और एक वाक्य भी पूरा नही पढ़ पाया।

सदाशिव—(धीरे से) और दस बार पढ़कर भी कुछ याद रहा हो तो तुम्हारी शपथ—

पाठक—नही तो नही। मै अत्यन्त ...गधा, ढोंगी, पाजी, मूर्ख !

क्योंरे, सदाशिव, बीच में क्यों बोल उठा ? फिर कभी पाठ चलने पर बोलोगे ? खड़े रहो बेंच पर। पाठ समझाने के वक्त इन मूर्खों को ध्यान नहीं रहता। क्या मैं अपने प्राण दे दूँ ? ऐसे त्रास से तो भूखों मरना अच्छा, पर नौकरी काम की नहीं। अरे लड़को, यदि यह वर्ष तुमने ऐसा व्यर्थ खो दिया तो बुढ़ापे में पछताओगे। देखो, चार चीजें वापिस नहीं लौटतीं—बोला हुआ शब्द, छोड़ा हुआ बाण, चूका हुआ अवसर और बीता हुआ काल। समझे ? अरे, उस असावधान लड़के का पाठ कितने बार किताब में पढ़ा है ! मूर्खों, क्या उसे भूल गये ? देखो, ठीक वैसी ही तुम्हारी स्थिति भी होगी। अब मेरे नियम सुनो। एक यह कि पाठ चलते समय ऐसी असावधानी नहीं करना। (इतने में वही लडका हाथ जोड़कर टाँग हिलाता हुआ बहुत ही नम्रता से पेशाब की छुट्टी माँगता है। पंडितजी छुट्टी दे देते है) लड़को, अब वार्षिक परीक्षा की अवधि केवल २०—२५ दिन की रह गई है। तो ऐसी असावधानी करने से कैसे चलेगा ? इसके सिवाय, तुम नापास हुए तो हमारी निन्दा होती है, इसीलिए कहता हूँ, मन लगाकर सीखो, ख़ूब दिल लगाकर अभ्यास करो और ठीक ध्यान दो। अच्छा, क्या बाँच रहे थे ? कौन बाँचता था ?

रामराव—सदाशिव बाँच रहा था, पंडितजी।

पाठक—हूँ, सदाशिव, बेंच से उतरो और आगे पढ़ो।

सदाशिव—(उतरकर, स्वगत) अरे बाप रे, अब क्या करेंगे ? कहाँ बाँचता था सो इस व्याख्यान की गड़बड़ में भूल गया। अब हुए मेरे सौ वर्ष पूरे।

पाठक—क्यों रे, भौंचक्के-सरीखे चुप क्यों खड़े हो ? भूल गये क्या ? (स्वगत) मैं भी तो भूल गया कि यह क्या बाँचता था, पर

इन्हें यह बतलाने से कुछ उपयोग नही। (प्रकट) क्या याद आया ?

सदाशिव—पडितजी मै, मै।

पाठक—मे मे, मे मे क्या करते हो ? याद है कि नहीं ?

सदाशिव—(स्वगत) अरे भगवान; अब क्या करोगे ? चलो कुछ भी हो, तौभी बाँचता हूँ। (प्रकट) उसने भावी विछोह के दुःख का दमन कर बेटी को सती होने की आज्ञा दे दी।

पाठक—आशय कहो, उसने याने ?

सदाशिव—उसने याने बाई ने।

पाठक—ठीक। दूसरा लड़का, भावी याने ?

गोविन्द—पंडितजी भावी नही, भारी होना था। यह तो ग़लती लिखा है।

पाठक—(स्वगत) भावी का अर्थ तो मुझे भी नही मालूम। (प्रकट) मालूम होता है, किताब मे ग़लती छपा है। भारी होना था। समझे ? अच्छा, दमन याने ?

नारायण—दमन याने, याने।

पाठक—गधे, याने याने क्या ? किसी एक ने भी पाठ याद नहीं किया ? अरे तुम मनुष्य हो कि पशु ? दूसरा लड़का, दमन याने ?

रामराव—पडितजी (को) याद नही।

पाठक—(मेज पर हाथ मारकर) सबके सब निर्लज्ज है। पाठ पढ़ते समय असावधानी करने का यह फल। एक को भी याद नही, (स्वगत) यहाँ इस शब्द का क्या भाव है सो मुझे भी ठीक नही मालूम। अब (नाक चढ़ाकर) क्या करें ? ठीक, (प्रकट) कितना तख़्ते पर लिखे ? लिखते लिखते त्रास आ गया। (लिखते हुए) रामराव, बाँचो।

रामराव—(ज़ोर से बाँचता है) देखो, जब बीमारी होती है तो शरीर दुर्बल हो जाता है, अर्थात् बीमारी शरीर का दमन कर डालती है।

पाठक—अरे धीरे से, व्यर्थ ज़ोर से बोलकर कान क्यो फोड़ता है ? अच्छा, समझ गये ?

रामराव—(स्वगत) धीरे से पढ़े तो कहते है कि रोटी खाई कि नहीं। ज़ोर से पढ़ें तो क्रोध करते है। समझ में नही आता है कि किस तरह चले।

पाठक—ऐसे गँवार-सरीखे क्या खड़े हो ? क्षमा माँगना चाहिए। बोलो, चूक हुई, माफ करिए. (रामराव अनुकरण करता है) हँ, ठीक। और एक नियम ध्यान में रक्खो। ज़रा सी चूक हुई कि झट कहो, 'चूक हुई, माफ़ करिए', नही तो ऐसी सज़ा देंगे जैसे किसीने न दी हो! समझे ? अच्छा क्या कह रहे थे ? हँ, दमन याने क्या ? गधे, नारायण !

नारायण—दमन याने दमा होना।

पाठक—अच्छा सदाशिव, पूरे वाक्य का भाव कहो।

सदाशिव—(वाक्य पढ़कर) उसने बेटी को सती होने की आज्ञा दे दी, पर विछोह के दुःख से उसे दमा हो गया।

पाठक—अरे, दमा हो गया ! यह किसका मतलब लगाया ?

सदाशिव—पंडितजी, अभी नारायण ने कहा, 'दमन याने दमा होना' और आप भी कुछ नही बोले।

पाठक—अरे, (स्वगत) यह तो मेरी ही असावधानी बतलाता है। (प्रकट) क्यों रे सदाशिव, नारायण का कहना याद रह गया और तख़्ते पर लिखा है सो ? बेंच पर खड़े रहो। मैं सब कुछ सुन लेता हूँ; इसलिए तुम सिर पर चढ़ रहे हो। क्यो ? पर तुम ख़ूब समझ रक्खो कि गुस्सा आने पर मुझसे बुरा कोई

नहीं। मै शांत दिखता हूँ, तो क्या हुआ। क्रोध आने पर मैं मानो राक्षस हो जाता हूँ, समझे ?

गोविन्द—(एक ओर) हाँ हाँ, ख़ूब समझे। इतने अन्धे थोड़े ही है।

पाठक—हूँ, खड़े रहो बेंच पर। लड़को, यह आज से सीख लो कि गुरु का अपमान करने से क्या होता है ? गुरु एक ईश्वर-रूप है, समझे ? और उसका तुम इस तरह पद पद पर अपमान करते, उसे छलते और त्रास देते हो ? जहाँ तक हो सके ऐसा करो कि मेरा काम और त्रास कम हो। वह करना तो एक ओर रहा—चूल्हे मे गया, पर उलटे ऐसा त्रास देते हो। तुमसे बोलते बोलते गला सूख गया। सच पूछो तो

रामराव—(एक ओर) तो कहा किसने कि इतना बोलिए ?

पाठक—छाती दुखने को पारी आ गई। तुम्हारे लिए मैं अपने देह की ओर न देखकर रातदिन प्रयत्न करता रहता हूँ। मुझे विश्राम के केवल दो घंटे मिलते है, पर उनमे भी मेरी आँखो मे यही प्रश्न झूलता रहता है कि तुम्हारा कल्याण किस तरह होगा। इस विचार मे पड़े पड़े मै बीमार होता जाता हूँ।

सदाशिव—(एक ओर) और हम मूर्ख लड़के उसे नींद लेना कहते है।

पाठक—और इतने सबका बदला क्या ? पर बदला पाने की आशा न रखकर काम करना मेरा कर्तव्य है। अच्छा, मैं क्या समझा रहा था ? रामराव, आगे पढ़ो, (घंटा बजता है) हूँ, घन्टा हो गया क्या ? अच्छा, मानीटर, अब कौनसा घन्टा है ?

रामराव—चित्रकारी पंडितजी !

पाठक—(हड़बड़ उठते हुए) आँ-तो, फिर मेरा विश्राम का घन्टा हुआ। मुझे जाना चाहिए। अरे, गधे रामराव, मेरा (पिछौरा बाँधते है)

गोविन्द—(धीरे से) अब यह सब जल्दी अपने कल्याण की चिन्तना के लिए हो रही है।

सदाशिव—(हँसकर और बेसुध होकर बेंच पर से गिरते हुए)

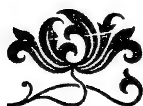
पाठक—(पिछौरा ठीक बाँधकर) हूँ मेरा जूता सदाशिव, वह छड़ी इधर लाओ। गधे-सरीखा खड़ा क्या है? मूर्ख कहीं का, सबके सब मूर्ख हैं। रामराव, मेरा फेटा ठीक बँधा है न? लाओ मेरा पिछौरा। गधे हो, मेरा जो आगे का घन्टा है उसका पाठ ठीक न हुआ तो सबके सिर हैं और मेरी यह छड़ी। मैं छोड़ने का नहीं। (कहते हुए मेज़ पर छड़ी मारने से स्याही ढुलक जाती है) अरे गधे हो! स्याही भरो और साफ़ करो। मेरे फिर से आने पर यदि सब स्वच्छ नहीं हुआ, तो सबकी इसी छड़ी से ख़ूब खबर लूँगा। (जाते है)

सदाशिव—मालूम होता है कि त्रास कम दिया। इसीलिए स्याही लुड़काकर चले गये।

रामराव—यह तो रोज़ का ही क्रम है; पर आज अपना पाठ कितना हुआ? एक वाक्य भी ठीक ठीक समाप्त नहीं हुआ।

गोविन्द—यह तो साधारण बात है। पर चुप रहो। ड्राइंग-मास्टर आ रहे हैं। (सर्वजन अपने अपने स्थान पर बैठते है)

[परदा गिरता है]



कौए, तोते और हंस का सम्वाद

कौआ—भाई तोते, यदि हम दोनो साथ साथ रहें, तो बहुत ही अच्छा हो।

तोता—भाई साहिब, आपके साथ रहने में मुझे कभी सुख न होगा, क्योकि मेरी और आपकी सभी बातें भिन्न भिन्न हैं।

कौआ—हमारी समझ मे तो कोई भी ऐसी बात नहीं जो भिन्न हो।

तोता—नहीं नहीं भाई, सभी बातों मे आकाश-पाताल का सा अन्तर है।

कौआ—अच्छा, यदि अन्तर है, तो वह क्या ?

तोता—तनिक अपने रंग की ही ओर तो दृष्टि दीजिए। मै तो हरा हूँ; पर आप तो कोयले से भी काले है। अब बताइए, मैं आपके साथ रहने में शोभा पाऊँगा ?

कौआ—ज्ञात होता है कि तुम पूर्ण विचार-शील नहीं। देखो, लोहा एवं कोयला काला तो है, पर क्या सारे संसार को कम प्यारा है ? स्याही भी तो इसी रँग की है, पर पढ़े-लिखे लोग उसे क्या कम चाहते हैं ? अंजन इसी कारण से न आँखो पर बैठाला जाता है कि वह काला है ? भाई, सोचो तो सही, यदि प्यारे बालको और युवको के बालो से कालापन निकल भागे, तो इनमे और बूढ़ों में कुछ अन्तर रहे ? किस किसकी

कहे ? आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् भी तो इसी रंग के है जिनमे हमारी तुम्हारी क्या, सबो की श्रद्धा है।

तोता—अच्छा, रंग की बात छोड़िए, पर विचारिए तो, फल-फूल के सिवाय आपका भोजन कितना घृणित है जिसके स्मरण-मात्र से ही वमन को मन होता है।

कौआ—लोग संसार मे बहुधा दूसरो के ही दोष ढूँढ़ा करते है। अरे भाई, तनिक अपनी ओर तो दृष्टि दो। गोभी, गाजर, गन्ने, आलू, मूली आदि की उत्पत्ति कैसे है जिन्हे आप बड़ी रुचि के साथ खाया करते हैं ?

तोता—अच्छा, मैं इस समय खाने की बातों को जाने देता हूँ, पर यह तो आप स्वीकार ही करेंगे कि तुम्हारी बोली कॉव कॉव बड़ी ही कर्कश है जिसको सुन लोग ढेले इनाम में दिया करते हैं।

कौआ—भाई, जान पड़ता है कि तुम जानकर अजान बनते हो। सच सच यह क्यो नहीं कहते कि "आप जिसके घर पर जा बैठते हैं वह अपना शुभ-मंगल ही समझता है, और खाने को दूध-भात ही देता है।" इसके सिवाय, कुआॅर के महीने मे जो आपका आदर होता है वह तो किसीसे छिपा ही नहीं है। इतने पर भी यदि तुम यही कहना चाहते हो कि आप कॉव कॉव बोलने के कारण यथोचित मान नही पा सकते, तो तुम भी तो टें टें बोलने पर अपमानित किये जाते हो।

तोता—भाई साहब, मैंने तो मीठी बोली बोल बोलकर सारे जग को वश मे कर डाला है और इसी एक गुण पर से "मिट्ठू" नाम की उपाधि तक पा ली है जिसे पशु-पक्षियो में आज तक किसीने नही पाया। हॉ, इतना सच है कि जब कभी मेरे मुँह से " टें टे " शब्द निकल पड़ता है; क्योकि बेचारे मुँह मे लगाम तो है ही नही; पर मै आपको विश्वास दिलाता हूॅ कि जहाँ तक

होगा उस कुटेव को दूर ही करूँगा। आप भी कर्कश बोलना छोड़ दीजिए। क्या आपने यह लोकोक्ति नहीं सुनी कि:—
"कौआ काको धन हरै, तोता काको देत। मीठे शब्द सुनाइके जग को वश कर लेत"?

कौआ—भाई, मैं तुम्हे सत्यवादी समझ सत्य सत्य ही कहे देता हूँ कि मैं लोगो के घरो पर इसी कारण से जा बैठता हूँ कि कुछ मीठा बोलते बनने लगे, पर शोक के साथ कहता हूँ कि कागभशुन्डजी के वंश मे उत्पन्न होकर जिन्होंने गरुडजी तक को उपदेश दिया था मुझ अभागे से कुछ भी नही सीखा जाता। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि डील, अवस्था और पराक्रम के विचार से मैं तुमसे कहीं बढ़कर हूँ।

तोता—हाथी कितने बड़े डील का होता है; पर छोटे से शेर के आगे दुम दबाकर ही भागता है। गधा कितनी ही अवस्था का क्यों न हो जाय, पर घोड़े की नाईं बुद्धिमान् नहीं हो सकता। ऐसे ही मात्रा परिमाण मे कितनी ही हलकी क्यो न हो, पर भारी भारी रोगो को बात की बात में भगा ही देती है। ऐसा सोचकर आप यो अभिमान करना छोड़ दे। कहते भी है कि :—

"चींटी छोटी होती है बस इससे शक्कर खाती है।
बड़े बने से कुंजर के पग बेड़ी डाली जाती है॥"

कौआ—भाई, यथार्थ मे अभिमान का घर खाली है, पर ऐसा भी तो कहते है कि आत्म-गौरव न रखनेवाला पुरुष, पुरुष नहीं है।

तोता—आपका कहना ठीक है, पर बिना गुण के कोरी अकड़बेगी तो महा-मूर्खता ही है। सुनिए, रहीम कवि यो कहते है कि :—

"करत निपुणई गुण बिना रहिमन निपुण हजूर।
मानो टेरत विटप चढ़ि, इहि प्रकार हम कूर"।

कौआ—भाई, तुम बड़े अनुभव-शील दिखते हो। क्या तुमने कभी

सुना है कि हम पीढ़ी दर पीढ़ी से राम-भक्त एवं राज-भक्त है ? जिस समय दुष्ट रावण ने श्रीरामचन्द्रजी से विरोध ठाना था उस समय हमारे पूर्वज स्वर्ग-वासी जटायु ने महा-युद्ध कर उसको कैसा मजा चखाया था ? यहाँ तक कि लड़कर प्राण तक होम दिये थे, पर पीछे नहीं हटे थे।

तोता—भाई साहब, हाँ, कुछ कुछ सुना है, और आपके सुनने मे भी आया होगा कि मेरे पूर्वज शुकदेवजी कैसे ईश-भक्त और राज-भक्त थे।

कौआ—हाँ, मैंने सुना है कि वे बड़े राज-भक्त और ईश-भक्त थे, क्योंकि उन्होंने स्वर्गवासी राजा परीक्षित को बड़ी सहायता पहुँचाई थी। इसके सिवाय, जैसे ईश-भक्त थे सो तो सभी जानते है।

तोता—तो अब भेद छोड़ हम तुम दोनो साथ साथ रहे।

कौआ—भाई, यही तो मै भी चाहता हूँ।

हंस—भाई, मै तुम दोनो की बाते बड़ी देर से सुन रहा हूँ। मेल से संसार मे बड़े काम भी बड़ी सरलता से किये जा सकते है। छोटे छोटे तिनको के मेल से जो रस्सा बनता है वह बड़े बड़े हाथियो को बाँध सकता है। अब आप भी मेल से रहे, यही मैं चाहता हूँ।

कौआ—अच्छा, मै तैयार हूँ।

तोता—मै भी तैयार हूँ।

(तीनो अकड़ते हुए जाते है)

[परदा गिरता है]

बच्चे का रोना

समयः—चाँदनी रात का पहला पहर

[स्थानः—घर के सामने का आँगन]

पात्र—

मुँह फाड़कर रोनेवाला आठ-दस महीने का एक छोटा-सा बच्चा। उसको गोद मे लिये हुए उसकी सांत्वना करनेवाले उसके पिता तर्कालंकार चूडामणि प्रोफ़ेसर गंगाराम पाँचकौड़ा, तथा चंपालाल नाम का आठ-दस वर्ष का एक लड़का।

प्रोफ़ेसर गगाराम—(गम्भीरता से) भैया, रोओ मत। रोने से स्वयं रोनेवाले को कुछ भी फलप्राप्ति नही होती, परन्तु आसमंतात भाग मे वास्तव्य करनेवालो को, अर्थात् निकटतर-वर्ती जन-समुदाय को, कर्ण-कर्कश रुदन-ध्वनि से महत्तम त्रास होने की सम्भावना रहती है। केवल यही नहीं, बल्कि यदि यह कहा जाय कि त्रास अवश्यमेव होता है, तो भी अतिशयोक्ति न होगी। इसलिए .

बच्चा—(जोर से) ह्या, आ-ह्य-आ आँ आँ।

प्रोफ़ेसर गंगाराम—(गम्भीरतर स्वर मे) अरे, रोवे मत बेटे! आरोग्य-शास्त्र की दृष्टि से भी दीर्घ क्रंदन अपायकारक है। यह भूमिति के प्रत्यक्ष प्रमाणो के सदृश स्वयंसिद्ध है। आक्रोश के कारण अन्तःस्नायुओ की ज्ञान-मज्जाएँ विस्तृत होकर उनके कारण

रुधिराभिसरण-क्रिया—जिसे आंग्ल-भाषा में blood-circulation कहते है—मन्दतम हो जाती है, रुधिर लोहपिंड की स्वच्छन्द गति को प्रतिबंधक होने के कारण अन्तर्गत चलने-वाले व्यापार की अप्रत्यक्ष रीति से नियत्रणा हो जाती है। उसी प्रकार तत्त्व-ज्ञान की दृष्टि से भी रुदन मे कई व्यङ्ग दीख पड़ते है ।

श्रीमद्भगवत्गीता मे प्रत्यक्ष भगवान् ने ही यह कह दिया है, "अतस्त्वं च महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि।" पाश्चात्य तत्त्व-वेत्ताओ का मुकुटमणि सुप्रसिद्ध हर्बर्ट स्पेन्सर भी कंठरव से यही प्रतिपादन करता है कि . ..

बच्चा—(दूसरे सप्तक का सुर निकालता है) हाँ-हॉ-ऍ-ऍ .

प्रो० गंगाराम—(गम्भीरतम स्वर मे) रो मत बेटा, रुदन न कर। ऊपर देख, वह सिंहराशि मे जुड़ा हुआ नक्षत्र। उसमे के दो ताराओ को एक दूसरे के आसपास पूरी परिक्रमा करने के लिए छत्तीस सौ ब्यालिस साल, सात महीने, तीन दिवस, छप्पन मिनिट और अठारह दशमलव, दस लाख पल लगते है। सुप्रसिद्ध आर्यज्योतिषी भास्कराचार्य के दत्तकपुत्र वराहमिहर ने ईसा सन् के पूर्व, छत्तीसवीं शताब्दि मे, केवल अनुमित प्रमाणो के द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि ऊपर कहे गये दशांशो के अन्तिम पॉच स्थल आवर्त दशांश है। उसी प्रकार —रोओ मत, भैया। वे दो तारे यहॉ से यद्यपि अन्योन्य-संलग्न भासमान हो रहे है, परन्तु तिसपर भी यह निरास्थल परिणामात्मक दृग्भ्रम ही है। यदि सच पूँछा जाय तो तदंतर्गत वास्तविक अन्तर अनेक कोटि-योजन है। उसकी ओर अवलोकन कर और रुदन न कर—

बच्चा—(तीसरे सप्तक की अन्तिम पट्टी के सुर मे) ह्यॉ-ह्यॉ-ऑ ऍ-यॉ—

प्रो० गंगा०—(संगमरमर के पुतले की नाई गम्भीरता से) बेटा ! उस चन्द्रमा को देख। सूर्य की किरणों के परावर्तन के कारण चन्द्रमा को प्रकाश-प्राप्ति होकर पृथिवी की कक्षा मे सूर्यास्त के अनंतर भी पर्याय से सूर्य के प्रकाश का सचार होता है। इस प्रकाश-प्रत्यक्ष का निमित्त-कारण चन्द्रमा है। वेदो मे इसे 'सोम' के नाम से सम्बोधित करते है। कहीं इसे वनस्पति का पति भी कहते है। इससे इस बात का सहज ही मे निर्णय हो जाता है कि किसी समय हमारे देश मे वनस्पति-शास्त्र की कितनी प्रगति हो चुकी थी। इस दृष्टि से अवलोकन करने पर यही प्रतीत होता है मानो वह अपने प्रकाश से अज्ञान-युग के काल-पटलो को भेद कर हमारे पूर्वजो के अगाध अज्ञान पर ही प्रकाश डाल रहा है। देख, उसकी ओर विचार-पूर्ण दृष्टि से देख। इस तरह क्रंदन मत कर—

बच्चा—(किसी भी सप्तक के अन्तिम सुर मे) —यॉ--ह्याँ-मे-ओ—

प्रो० गंगा०—(स्वगत) Oh ! Nonsense ! Whatever shall I do now ? (यह तो बड़ा त्रास है। मै करूँ भी क्या ?) (दस-बारह बरस के लड़के चंपा का प्रवेश)—

चंपा—दादाजी, इधर दीजिए रामू को। मै उसे खिलाऊँगा।

(चम्पा रामू को कनिया पर बैठाता है)।

चम्पा—(भिन्न भिन्न स्वरो मे) ओरे बच्चू ! बच्चू, ओले भैया ! वो देखो चंदा मामा मा-म्मा ! ओले—

बच्चा—(रोना बन्द करके इधर-उधर देखता है) आ-आ-आ ! (हाथो को फैलाता है)—

चम्पा—चन्दा बाबू आ जा रे। चन्द खिलौना ला दे रे॥ चन्दा मामा आ जा रे। खूब मिठाई ला दे रे ॥

रामू—(आनन्द से हाथ और पैर हिलाकर)—आऽऽ-आऽऽ-आऽ !

चम्पा—(उसे नीचे उतारकर उसकी अँगुलियाँ पकड़कर उसे चलाता है)
चल, चल, चल, चल। सीधा चल मत बहुत मचल ॥ खाने को मै पेड़ा दूँगा। चढ़ने को मै मोटर दूँगा ॥ अले वाह भाई वाह ! बड़ा हुस्यार है।

(रामू उठकर आनन्द से एक-दो क़दम चलता है। हँसते हँसते इकदम चम्पा के गले मे हाथ डालता है। चम्पा उसके दो-चार चुम्मे लेता है। प्रो० साहब टेबुल के पास जाकर नोटबुक मे लिखते है)

प्रो० गंगा—(थोडी देर मे जलप्रलय होनेवाला है—इसका जिसे निश्चय-पूर्वक समाचार मिल जाता है और जिसे इस बात का पक्का विश्वास भी हो जाता है उस मनुष्य की जैसी स्थिति हो जाती है ठीक वैसी ही स्थिति इस समय प्रो० साहब की हो गई। वे हताश तथा सखेद मुद्रा से लिखते है) इस तरह के अर्थ-हीन, असंगत तथा गॅदले गानों को सुनकर किसका मानस व्यग्र न हो उठेगा ? गीता तथा उपनिषद् का पाठ ये कब करेंगे ? साहित्य मे भी ये बाते अधिक परिमाण मे पाई जाती है। आजकल ऐसा देखा गया है कि गम्भीर तत्व-ज्ञान की और शास्त्र-साहित्य की पुस्तके बहुत ही कम लिखी जाती है। लेकिन हर साल साहित्य-वाटिका मे उपन्यास, नाटक तथा प्रहसन की झड़ी लग जाती है। लोगों को उच्च ज्ञान की प्राप्ति क्यो कर होगी—यह प्रत्येक विद्वान् के सामने एक बड़ा भारी प्रश्न है।

(जाते है)

(परदा गिरता है)



अकबर और औरंगज़ेब

पात्रः—

दो लड़के

(एक लड़का गम्भीरता से आकर खड़ा होता है। फिर दूसरा आकर उसे एक धक्का मारकर चैतन्य-सा करता हुआ पूँछता है)

दूसरा—ए ए ! तुम्हारा क्या नाम है ? जल्दी बताओ, तुम्हारा नाम क्या है ?

पहला—(धीरे से) मुझे याद नही।

दू०—कैसे मूर्ख हो ? अपना नाम तक तुम्हे याद नही।

प०—(क्रोध से) मूर्ख तो तुम ही हो जो इतना भी नही जानते कि मेरा नाम रट्ट-रट्ट-रट्ट-नाथ है। भला तुम्हारा नाम क्या है सो भी सुनूँ।

दू०—मेरा नाम भी वैसा ही है।

रट्ट २ नाथ—वैसा कैसा है ?

दू०—बस वैसई   अरे धुत्! इतना भी नही समझे ? मेरा नाम है लल्ल-लल्ल-लल्ल-लाल। समझ गये ?

रट्ट०—हाँ, मर गये।

लल्ल २ लाल—यार, हँसी न करो। तुमसे एक अच्छी बात कहनी है।

रट्ट०—कहो कहो, एकदम कहो।

नहीं किया है। नही तो क्या मुझे मुँहतोड़ जवाब न दे सकते ?

रहृ०—बच्चू, ऐसा मत कहो। मुँह तोड़कर तो मै तुम्हे सहज ही जवाब दे सकता हूँ। कहो तो एक ही घूँसे मे (मुँह पर घूँसा जमाना चाहता है) तुम्हारा मुँह तोड़ दूँ, फिर अच्छा जवाब दे डालूँ।

लल्ल०—(पीछे हटकर) बाबा, ऐसा जवाब मुझे न चाहिए।

रहृ०—तो कैसा चाहिए ?

लल्ल०—मेरे कहने का आशय यह था कि तुम औरंगज़ेब के दोषो का वर्णन करके मुझे सहज ही हरा सकते थे।

रहृ०—हुँ ! तो फिर सँभल जाओ—

(१) औरंगज़ेब ने वीरो के से काम भले ही किये हो, पर वीरो का सा हृदय उसका न था। किन्तु अकबर का हृदय और कर्म, दोनो ही वीरोचित थे।

(२) अकबर अन्य धर्मवालो से कभी हस्तक्षेप न करता था। उसने जजिया भी बन्द कर दी। औरंगज़ेब अन्य धर्मवालो को दुःख देता था। उसने जज़िया फिर जारी कर दी। मुसलमान मात्र ही उसे प्रिय थे। उनमे भी केवल सुन्नी लोगो पर दया थी।

(३) अकबर हिन्दुओ को भी बड़े बड़े पदो पर नियुक्त करता था, पर औरंगज़ेब उन्हे साधारण पद भी न देता था। पहिले के जो हिन्दू कर्मचारी थे उन्हे भी उसने पदच्युत कर दिया।

(४) और भी सुनो। अकबर अपने राजकर्मचारियों पर विश्वास रखता था, अतएव वे भी उसपर विश्वास रखते थे। किन्तु औरंगज़ेब को अपने लड़को तक पर विश्वास न था। इसलिए दूसरे भी उसपर विश्वास न करते थे।

(५) अकबर अग्रसोची एवं अच्छा राजनीतिज्ञ था, पर औरंग-

ज़ेब अदूर-दर्शी था और वह भयानक राजनीतिक त्रुटियाँ कर बैठता था।

(६) अकबर निश्छल था। औरङ्गज़ेब इसके विरुद्ध विश्वास-घातक और छली था।

(७) अकबर सदय था, परन्तु औरङ्गज़ेब निर्दय था।

लल्ल०—वाह! रट्टू-रट्टू-रट्टू-नाथ! वाह! तुमने तो ख़ूब रट मारा है। क्या तुमने कभी यह भी विचारा है कि इन सब बातों के कारण औरङ्गज़ेब का चरित्र यथार्थ मे दूषित नही हो सकता? मियाँ, उस स्थिति मे यदि तुम होते तो तुम भी ऐसा ही करते। ये सब बाते उस समय न सूझती। औरङ्गज़ेब बड़ा धर्मशील था। केवल धर्म के जोश मे आकर उसने ये सब बाते कर डाली थी। उसकी हार्दिक इच्छा कदापि ऐसा करने की नहीं थी जैसा कि उसके अन्तिम पत्रों से प्रगट होता है। उसे ऐश और आराम पसन्द न था। उसने एक बार कहा था, "परमेश्वर ने मुझे अपने लिए नही, किन्तु प्रजा के लिए भेजा है। मेरा कर्तव्य है कि केवल उसीके सुख की चिन्ता करूँ, अपने की नही। प्रजा की रक्षा करने मे ही सच्चा राजत्व है, व्यसन-लिप्त रहने मे नही।" धर्म के लिए ही उसने हिन्दुओं को कष्ट दिया और उनके मन्दिरों का खण्डन किया था। फिर तुम्हारे अकबर भी कौन बड़े दयालु थे। एक नौकर को सोता देखकर ऊँचे से ढकेल दिया था।

रट्टू०—सचमुच ऐसा धर्मशील बादशाह प्रशंसा के योग्य है। अच्छी बात है, तुम औरङ्गज़ेब ही बने रहो।

"किबले के ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ,
ताको कैद कियो मानो मक्के आग लाई है।

बड़ो भाई दारा वाको पकड के कैद कियो,
मेहेर-हुर-नाहि याको जायो सगो भाई है ॥
बन्धु तो मुरादबक्स बाद चूक करिबे को,
बीच ले कुरान ख़ुदा की कसम खाई है।
कहत भूखन भाट सुनहुँ औरङ्गज़ेब,
येते काम कीन्हे फेर बादशाही पाई है ॥
"हुज़ूर सलाम" (भागता है)

लल्ल०—(पीछा करते हुए) अरे ठहरो तो, ठहरो तो . . .

[दोनों भाग गये]

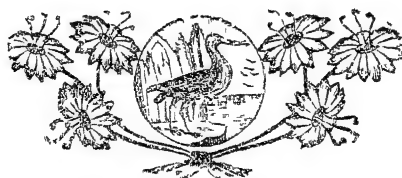


हमारी छड़ी

(एक बालक छड़ी लेकर प्रवेश करता है और हाव-भाव बताते हुए गाना गाता है)

यह सुन्दर छड़ी हमारी । है हमे बहुत ही प्यारी ॥ टेक ॥
• यह खेल-समय हर्षाती । मन मे है साहस लाती ॥
तन में अति जोर जगाती । उपयोगी है यह भारी ॥ १ ॥
हम घोड़ी इसे बनावें । कम घेरे मे दौड़ावे ॥
कुछ ऐब न इसमे पावे । है इसकी तेज़ सवारी ॥ २ ॥
यह जीन लगाम न चाहै । कुछ काम न दाने का है ॥
पर गति में तेज़ हवा है । यह घोड़ी जग से न्यारी ॥ ३ ॥
यह टेक छलाँग लगावें । अँगुली पर इसे नचावें ॥
हम इससे चक्कर खावे । है हमको यह सुखकारी ॥ ४ ॥
हम केवट है बन जाते । इसको पतवार बनाते ॥
डोगी जल-बिना चलाते । इस लकड़ी की बलिहारी ॥ ५ ॥
कर मे तलवार उठाके । बनते है सैनिक बाँके ॥
रिपु के सिर इसे जमा के । हम रक्त न करते जारी ॥ ६ ॥
यह भाला अकड़ उठावे । बैरी के पीछे धावे ॥
हम उसे जीत कर आवे । पर जान न जावे मारी ॥ ७ ॥

इसकी बन्दूक वनाते। काँधे पर धर हम जाते ॥
रिपु को तक इसे चलाते। यह घाव न करने हारी ॥ ८ ॥
अब देखो यह तम्बूरी। गाने के सुर मे पूरी ॥
जोगी की जीवनमूरी। मुरली है इससे हारी ॥ ९ ॥
अन्धे को बाट बतावे। लँगड़े के पैर बढ़ावे ॥
बूढ़े का भार उठावे। यह छड़ी परम हितकारी ॥ १० ॥
लकडी यह वन से आई। इसमे है भरी भलाई ॥
है इसकी सत्य बड़ाई। इससे हमने यह धारी ॥ ११ ॥



अप्रतिम वैद्यराज

[एक मनुष्य आता है तथा दर्शकों को प्रणाम कर कहना आरम्भ करता है]

मान्यवर महोदय, आप सब गुणीजनो को चाहते है. इसलिए मैंने यदि आपके सामने अपने गुणों का कुछ वर्णन किया तो मुझे आशा है, आप मुझसे अप्रसन्न न होगे। मै जबलपुर का रहने-वाला हूँ; परन्तु विद्याभ्यासार्थ मैंने काशीजी के महामहोपाध्याय वैयाकरण गजेन्द्र-मर्दन-पटु शंखचक्रधर शास्त्री की सेवा मे बीस वर्ष बिताये हैं। इस कारण अब मैंने शब्दरूपावली, धातुरूपावली, समासचक्र इत्यादि प्रचंड ग्रथ अथ से इति तक कह डालने की शक्ति संपादित कर ली है। मै अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा कर रहा हूँ। पर आप लोग भेड़ाघाट, ग्वारीघाट, तिलवाराघाट इत्यादि बड़े बड़े क्षेत्रों के पंडो के दिये हुए सारटीफिकटों को देख सकते है जो मेरे पास गट्ठों पड़े है।

मुझ-समान अप्रतिम वैद्य इस प्रदेश ही मे क्या, बरन सारे हिन्दुस्थान मे भी मिलना दुर्लभ है। मेरी कुल दवाओं के नामों की यदि लम्बाई नापी जाय, तो वह कम से कम एक कोस अवश्य निकलेगी। जब मैं अपने गुरु प्राणाचार्य नष्टप्रारब्धेश्वर के पास अध्ययन करता था, तभी 'गुरु से शिष्य सवाई' वाली कहावत के अनुसार "मेरा तेज सबो को असह्य होगा" मेरे गुरुजी ने ऐसी भविष्यद्वाणी की थी। उन्होने कहा, "बेटा, तेरी कीर्ति अजरामर होगी। मुझे केवल प्राणाचार्य ही की पदवी है, परन्तु तू "प्रत्यक्ष प्राणांतकाचार्य" की पदवी प्राप्त करेगा। तू अपनी विद्या का प्रभाव चहुँओर फैलावेगा। तुझे मेरा यह हार्दिक आशीर्वाद

है।" यह सब तो मेरी विद्या के सम्बन्ध में हुआ। अब मेरी दवाओं का भी कुछ वर्णन सुन लीजिए। मेरे पास अनन्त ओषधियाँ है। इन सबों का मै कहाँ तक वर्णन करूं? परन्तु आपका विश्वास संपादित करने के लिए मै आपको केवल एक ही ओषधि के गुण सुनाता हूँ।

(एक कुप्पी दिखाकर) यह कुप्पी देखिए! यह देखने मे बिलकुल छोटी, परन्तु गुणो मे महान् खोटी है। मै इसकी केवल एक ही अनुभूत बात आपको सुनाता हूँ। एक श्रीमान् के प्यारे कुत्ते की पूँछ किसी दुष्ट ने काट डाली। समस्त वैद्य, हकीम, डाक्टर, होमियोपाथ, हायड्रोपाथ हार गये, परन्तु वह कटी-कटाई पूँछ कोई न जोड़ सका। अंत मे मैंने इस रसायन की एक-बूँद कटी हुई पूँछ पर और एक बूँद कुत्ते की पूँछ के स्थान पर लगाई। फिर क्या था, दवा लगाते ही चमत्कार दिखाई पड़ा। कुत्ते की नई पूँछ निकल आई और कटी पूँछ से नया कुत्ता उत्पन्न हो गया! ऐसी यह अद्भुत दवा है। इस रसायन का नाम बहुत बड़ा है, परन्तु आप लोग उसे भली भाँति स्मरण रख सकें, इसलिए लघु रूप देकर मैंने "कृष्णसारजीर्णनलिनीदल—निबद्धवायसांधकूपरसायन" यह छोटा सा नाम रखा है। राजा लोगो को तो यह दवा अत्युपयोगी है। लड़ाई के समय सर्कार को तो यह प्रत्यक्ष अमृत ही है, परन्तु न मालूम क्यो अभी तक अपनी सर्कार का ध्यान इस रसायन की ओर आकर्षित नही हुआ है। यदि आप सज्जनों में से किसीको मेरे ओषधि की सफलता देखने की इच्छा हो, तो वे अपनी गर्दन छाँटकर मेरे पास तुरन्त चले आयें। मै प्रतिज्ञा-पूर्वक उन्हे चंगा कर दूँगा। यदि न किया तो अपना नाम बदल डालूँगा। इससे अधिक और क्या चाहिए?

(प्रस्थान)

पंडित की दुम

पात्रः——

१—पुराने ढंग के पंडित

२—अंग्रेज़ी-पढ़े मास्टर

३—पंडितजी का ९–१० साल का लड़का

(पंडित और अंग्रेज़ी मास्टर का प्रवेश)

मा०—(पंडितजी से) गुड मॉरनिंग पंडितजी !

पं०—शिवाशिव ! हरे हरे !! अजी क्या कहते हो ? गाली तो नहीं देते ? अगर गाली नहीं है, तो कोई बात नहीं, नहीं तो तुम गोडमानी, तुम्हारे बाप गोडमानो, तुम्हारे दादा गोडमानी। समझे ?

मा०—भाई पंडितजी, तुम तो निरे पंडित ही निकले। सिवाय पोथी-पत्रा के कुछ और भी जानते हो ? दुनियाँ किस कील पर घूम रही है ? मैंने तो आपको अंग्रेज़ी में सिर्फ सलाम किया, पर आपने तो हमारे बाप-दादों तक पर हाथ साफ कर दिया। अजी पंडित, होश की दवा करो। मैंने सिर्फ सलाम किया था, सलाम। (ज़ोर से कान के पास कहता है)

पं०—(कान में हाथ लगाकर) क्या कहा ? लगाम दिया था ? अरे मूढ़ ! क्या मुझे घोड़ा समझ लिया है ? बड़ा लगाम देनेवाला आया कहीं का !

मा०—(बड़े ज़ोर से) नहीं पंडितजी, मैंने आपको सलाम, बन्दगी, नमस्ते, नमस्कार, जुहार, रामराम, पालागी की थी। आप इतना क्यों बिगड़ते हैं ?

पं०—आशीर्वाद भैया, आशीर्वाद ! आओ बैठो। बहुत दिनों में कृपा की। सब कुशल तो है ?

मा०—आपके आशीर्वाद से सब ख़ैरियत है।

पं०—(लड़के को आवाज़ देता है) अरे बेटा मोहन, कुछ पान तो ले आ।

मा०—इसकी क्या ज़रूरत है ? तकल्लुफ़ न कीजिए।

[नेपथ्य से मोहना की आवाज़ आती है, "हवो दद्दा लए आउत हों"]

पं०—मास्टर, कोई तकलीफ़ नहीं है। (ज़ोर से चिल्लाकर) अरे थाली में रखकर लाना और इलायची, लौंग और तंबाखू भी लेते आना।

मो०—(नेपथ्य से) हओ दद्दा, सब लए आउत हो।

(मोहन दो पान एक बहुत बड़ी थाली में रखकर आता है)

लो दद्दा।

पं०—क्यों रे, इतनी छोटी थाली में लाया है ? गधा ! और, लौंग-इलायची कहाँ है ?

(मोहन सिर से टोपी निकालकर उसमें रखी हुई लौंग-इलायची देता है)

पं०—मूर्ख, इसी थाली में ये भी रख लेता, तो क्या तेरी ज़ात घट जाती ? फिर भी तंबाखू भूल ही आया।

मो०—नहीं दद्दा, (कुरते के पाकिट से निकालकर देता है) लाओ हो।

पं०—सचमुच बड़ा ही मूर्ख है !

मा०—आप तो बड़े पुराणी और ज्ञानी हैं। लड़के पर ख़फ़ा नहीं होना चाहिए। ज्ञान सिखाने ही से आता है। आप अपना

लड़कपन तो स्मरण कीजिए। कुछ आपको इकदम तो आ ही न गया होगा।

पं०—हॉ, आप ठीक कहते हैं, पर बात यह है कि मोहन, जैसा आप जानते ही है, छुटपन ही से अपने नाना के यहॉ रहता था और उनकी जायदाद इत्यादि भी इसे मिल गई है, पर जैसा मूर्ख इसका नाना था वैसा यह भी हो गया है। मेरे पास यदि रहता, तो अभी तक षट-शास्त्री बना देता, पर नाना के पास रहकर सिवाय गाय, भैंस, बकरी, खेत, खलयान, खाद, बीज इत्यादि के कुछ भी नही सीखा। अभी १५-२० दिन से मैंने इसे पढ़ाना आरम्भ किया है, पर बूढ़ा तोता कहॉ तक पढ़ सकेगा ? यह इतना मंदबुद्धि है कि इसे एक श्लोक अभी तक कंठाग्र नही हुआ।

मा०—अच्छा तो आप उसे अब अँग्रेज़ी पढ़ाइए। मै बहुत जल्दी पढ़ा दूँगा और नई पद्धति के अनुसार वह भी उसे शीघ्र ही सीख लेगा।

पं०—(मोहन से) क्यो अँग्रेज़ी पढ़ेगा ?

मो०—(कूदता हुआ) हओ दद्दा ! मैं तो जरूर पढ़हो।

पं०—अँग्रेज़ी मलेच्छ भाषा है। उसे क्या पढ़ना ? उसके पढ़ने से तो धर्म नष्ट हो जाता है।

मा०—नही पंडितजी, आप तो ज्ञानवान होकर ऐसी बातें करते है। विद्या किसी भाषा मे क्यो न हो उसे सीखना ही चाहिए। भाषा तो ज्ञान तथा विचारो को प्रकट करने का चिराग़ है। उसीके उजेले से विद्या का भंडार दिखाई देता है। ऐसा बहुमूल्य चिराग़ किसीके पास क्यो न हो उसे अवश्य लेना चाहिए। ऐसा समझिए कि विद्या के कई कोठे है। एक कोठा संस्कृत की कुंजी से खुलता है, दूसरा फ़ारसी की से,

तीसरा अँग्रेज़ी की से इत्यादि। इसके सिवा, आजकल अँग्रेज़ी जानना बहुत ज़रूरी है। उसके जानने से कचहरी, अदालत, रेल, तार, लेन-देन इत्यादि में सहायता मिलती है।

पं०—अच्छा तो यह बताओ कि यह पढ़ जायगा ?

मा०— क्यों, ज़रूर, बेशक। इसमें संदेह ही क्या है ?

पं०—(मोहन से) अच्छा तो तुम मास्टर साहब के पास अँग्रेज़ी पढ़ा करो।

मा०—(मोहन से) मोहन, आज ही आरम्भ कर दो। उठो, स्लेट लेकर आओ।

(मोहन स्लेट लेकर आता है)

(मास्टर ए, बी, सी, डी इत्यादि लिखाते हैं)

मो०—(पढ़ता जाता है और कहता है) यह तो मैं जानता हूँ।

मा०—किसने बताया था ?

मो०—हमरे इतके मास्टर ने मोहे पूरी प्रेमर पढ़ा दई हती। पर मैं सब तो भूल गओ हो। अकेले अच्छर याद हैं।

मा०—अच्छा तो मैं बोलता हूँ, तुम लिखो। (बोलते हैं बी, बी, जी, आइ, ओ) पढ़ो, जल्दी जल्दी, ज़ोर से।

मो०—(पढ़ता है) बी, बी, जी, आइ, ओ।

पं०—(लड़के को एक चपत जमाकर) गधा ! पढ़ने में जब कठिनाई होती थी, तो मैं तो बाप को बुलाता था, पर तू तो ऐसा कुपुत्र हुआ कि बीबी को पुकारता है ! मूर्ख कलयुगी ! (मास्टर से) क्या अँग्रेज़ी में कठिनाई हो, तो पहले क्या बीबी ही आती है ? चलो, कृपा करो। मुझे नहीं पढ़ाना। (मोहन को धक्का दे भीतर करता है और मास्टर को भी निकाल देता है)

(परदा गिरता है)

यमराज का क्रोध

पात्र :—

१—ज़मींदार—एक धनवान् मनुष्य
२—तारो } उसके नौकर
३—जिरो }

[स्थल :— एक कोठरी]

ज़मींदार—(स्वगत) यह बात सच है कि मैं यहाँ का एक बड़ा भारी ज़मींदार हूँ, परन्तु मुझे पल भर भी आराम नहीं। कोल्हू के बैल की नाईं मेरी दशा है। कोई भी काम आया कि कितनी जल्दी करनी पड़ती है ? ख़ैर ! जाने के पहिले सारा घर नौकरों को सौंप देना चाहिए। यही ठीक होगा। (बुलाता है) अरे ए तारो, अरे किधर है रे ? तारो ! तारो ! ओ तारो !

(तारो आता है)

तारो—आया हुज़ूर !

ज़मींदार—आया ?

तारो—हाँ, सरकार ! सेवक को आज्ञा दीजिए।

ज़मींदार—वाह ! आज तो तू बहुत ही तड़के उठ बैठा। जा, जिरो को बुला ला।

तारो—बहुत अच्छा, हुजूर ! (बुलाता है) अरे जिरो, ए जिरो, जल्दी आ, मालिक बुला रहे है।

(जिरो आता है)

जिरो—सरकार, क्या आज्ञा है ?

ज़मी०—देख, मै सबेरे से ही किसी आवश्यक काम के लिए जा रहा हूँ। इसलिए तुम दोनो को घर की सारी चीज़े सौंपे जाता हूँ। समझे ? तुम लोग सदा चौकन्ने रहना और प्रत्येक वस्तु को ठीक ठीक सम्हालना। भला ? कही ऐसा न करना कि मेरी ग़ैरहाज़िरी मे कुछ घुटाला कर बैठो। समझे ?

तारो और जिरो—छिः, हुजूर ! भला कभी ऐसा भी हुआ है ?

ज़मी०—(विचार करके) अरे, हाँ अच्छी याद आई। तुम लोगों से एक बात कहनी है। मेरी इस कोठरी मे एक प्रकार का ज़हर है, ज़हर। समझे ? उस ज़हर का नाम 'बुसु' है। उससे बहुत सम्हलकर रहना। भला ? उसे ज़रा भी हाथ न लगाना; नहीं तो कुछ गोलमाल कर बैठो। (जाता है)

तारो—क्यो मित्र जिरो, आज मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य मालूम होता है कि आज तक अपने सरकार न जाने कितने बार बाहर गये होंगे, परन्तु उन्होंने आज तक हमे इस प्रकार चौकन्ने रहने के लिए कभी नही कहा। फिर आज क्यो इतना उपदेश दिया ? इसका भला क्या अर्थ होगा ?

जिरो—यही तो मै भी सोच रहा हूँ। मालिक ने आज के पहले कभी ऐसा नही किया। पहिले जब वे काम के लिए बाहर जाया करते थे, तो हममें से किसी एक को साथ ले जाया करते थे और दूसरे को घर की चीज़े सौंप जाया करते थे; परन्तु आज का मामला कुछ विचित्र मालूम होता है। राम

जाने क्या बात है। (सूँघकर) दोस्त, यहाँ कुछ बसा रहा है। ओः ! ओः !

(नाक दबाता है)

तारो—क्यों रे ? क्या हो गया ? जिरो ! ए जिरो ! तू यह क्या कर रहा है ? अरे, इकदम यह क्या करने लगा ?

जिरो—हाँ, अब समझ गया।

तारो—क्या समझ गया ?

जिरो—देखो, मै उस ज़हर के बिलकुल सामने खड़ा हूँ, इसलिए उसकी गंध हवा के साथ मेरी नाक मे घुस रही है। उः ! छिः ! भैय्या, यह गंध तो बिल्कुल सहन नही होती। चलो, यहाँ से चलें और कही दूसरी जगह बैठकर बातचीत करें।

तारो—क्या मै बुसु की बोतल खोलूँ ? देखूँ, उसमें क्या रक्खा है ? क्यो जिरो, देखूँ ?

जिरो—अरे ख़बरदार ! कही ऐसा कर भी न बैठना, नही तो जान से ही हाथ धो बैठोगे। यदि तुझे अपनी जान प्यारी है, तो इसमे बिल्कुल हाथ न डाल। देख, मान जा। (तारो बोतल के पास जाता है। इतने मे जिरो कहता है) अरे ! ओ तारो ! ठहर, ज़रा ठहर। यह क्या पागलपन कर रहा है ? भैय्या, उस ज़हर-वहर की झॅझट मे न पड़।

तारो—अरे, इससे इतना डरने को बात ही क्या है ? मैं बोतल के उस पार खड़ा हो जाता हूँ। इसमें शक नहीं कि ज़हर की गंध बड़ी भयकर है; परन्तु हवा के प्रवाह के विरुद्ध खड़े रहने से इतना अधिक डरने की आवश्यकता नही है। ज्यो ही मै बोतल को खोलूँ त्यो ही तू मुझपर ज़ोर से पँखा झलने लगना। फिर डरने की कोई बात नही। समझे ?

जिरो—अच्छा तो खोल।

(तारो डाँट खोलता है, परन्तु जिरो पंखा नहीं झलता)

तारो—जिरो, यह क्या करता है रे ? पंखा क्यो नही झलता ? झल, झल, जल्दी झल । डरता क्यो है ?

जिरो—अरे ठहर, भैय्या, तनिक ठहर जा। देख भैय्या, मेरी कही मान जा। इस ज़हर का खेल न कर। इसमे कुछ ठीक नही दिखता है।

तारो—अरे भोदू ! अब ठीक क्या और ग़ैर ठीक क्या ? तू क्यो इतना घवड़ा रहा है ? डॉट की रस्सी तो मैने छोड़ ही डाली। बस, अब डॉट निकालना ही बाकी रहा है। अरे, तू तो पँखा झल, ख़ूब ज़ोर से झल कि बस, फिर काम हो ही गया समझ।

जिरो—अच्छा भैय्या ! झलता हूँ। (झलने लगता है)

तारो—ठीक है। देखो, मैने डॉट खोला। इस ज़हर का रँग-रूप तो देखूँ ज़रा।

जिरो—देख देख दोस्त, ऑख फाड़कर देखना। भला ?

तारो—वाह ! यह दिखने लगा 'बुसु'।

जिरो—दिखने लगा ? तारो ! वह कैसा दिखता है रे ?

तारो—भैय्या, यह तुझे मै कैसे बतलाऊँ ? अरे, हम लोगो ने कभी ऐसा पदार्थ देखा भी है ? रंग-रूप मे कुछ कुछ काली मिट्टी के समान दिखता है। परन्तु, जिरो, सुगन्ध अच्छी आ रही है। अरे जिरो . ..

जिरो—क्या है रे ?

तारो—क्या इसे चखकर देखूँ ?

जिरो—चखकर देखेगा ? यह ज़हर है ना !! और तू इसे चखेगा !!!

तारो—छि: ! यह नही हो सकता। अब मैं यहाँ से ज़रा भी नही हिल सकता। चाहे कुछ भी हो, मैं तो यहाॅ से तिलमात्र भी

न हटूँगा। अरे, इस बुसु ने तो मुझे बिलकुल पागल कर दिया है। जिरो, मैं सच कहता हूँ कि मै अब इसके चंगुल से कदापि नहीं निकल सकता। मेरी देह में उतनी शक्ति ही नहीं है। जब से इसकी सुगंधि नाक मे गई है, तभी से मेरी जीभ इसका स्वाद लेने के लिए बड़ी आतुर हो रही है। इससे अब छुटकारा पाना असम्भव है। इसलिए भैय्या जिरो, कृपाकर मुझे इस जहर के दो-चार कण ही चख लेने दे।

जिरो—बस, चुप रह। ज़्यादा पागलपन न बघार। जब तक मैं यहाँ हूँ, तब तक तो तुझे वह कभी न चखने दूँगा। (तारो बुसु को उठाता है और जिरो फिर कहता है) हाँ! हाँ!! तारो!!! उसे मत छू। बिलकुल हाथ न लगा। देख, मै कब से चिल्ला रहा हूँ? (तारो ज़हर को चखता है और जिरो फिर घबराकर कहता है) अरे! अरे!! आखिर को तू खा ही गया! बस, अब तेरा फैसला हो चुका! अब तू नहीं बच सकता। गया, तू अब मर गया। अरे तारो, तूने यह क्या किया?

तारो—अरे दोस्त, तू मत घबड़ा। मैं नही मरता! अरे, यह तो शक्कर है, शक्कर, ज़हर नही!

जिरो—तारो तू क्या बक रहा है? शक्कर? क्या वह शक्कर है, ज़हर नही? क्या तू सच कह रहा है?

तारो—सच नही तो क्या मै झूँठ बोल रहा हूँ? अरे यह काली काली चीज़ मिश्री है, मिश्री।

जिरो—अरे क्यो दिल्लगी कर रहा है? अरे! केवल शक्कर या मिश्री के लिए इतना घुटाला हो सकता है?

तारो—अरे, सचमुच मै बिलकुल सच कह रहा हूँ। यदि तू मेरी बात पर न पतियाता हो, तो तू यही थोड़ी सी चखकर देख ले।

जिरो, यह पदार्थ शुद्ध मिश्री है—काली मिश्री। (जिरो चखता है)

जिरो—दोस्त, सचमुच यह शक्कर ही है। इस पदार्थ का स्वाद और इसकी गंध शक्कर से बिलकुल मिलती-जुलती है! वाह!!

तारो—हमारे मालिक बड़े गुरु हैं। हमसे कह गये कि यह ज़हर है! और, उसका नाम भी कुछ अंडबंड बतला दिया—'बुसु'। हुँ, उन्हे शायद यह डर था कि हम शक्कर खा लेंगे; इसीलिए उन्होंने इसे ज़हर कह दिया जिससे कि हम उसमे हाथ तक न लगावे! क्यों ठीक है न ?

जिरो—अरे, मुझसे क्या पूँछता है ? तू ही न देख। साफ ही तो दिख रहा है। अरे तारो, तू तो अकेला ही बोतल साफ़ कर रहा है। अरे देख, मेरी ओर देख, मुझे भी थोड़ी-सी खाने दे।

तारो—खा न, तुझे कौन मना करता है ?

जिरो—अरे! इतनी मत खा। तू तो ढेर की ढेर पेट मे सरका रहा है। जरा धीरे धीरे खा। इतनी जल्दी क्यो करता है ? क्या मेरे लिए कुछ भी न बचने देगा ? जान पड़ता है कि यही तेरा इरादा है।

तारो—जिरो, इसमे मेरा कुछ भी बस नही चलता। क्या करूँ ? खाने में इतनी मज़ेदार है कि बस क्या कहूँ ? और ऐसा मौका क्या बार बार मिलता है ? अरे, अपने जीवन भर ऐसा मौका कभी एकाध दफे भी मिला कि बस, बहुत हुआ। (जिरो खाने लगता है। थोड़ी ही देर मे तारो फिर कहता है) जिरो, ए जिरो, यह क्या कर रहा है रे ? ठहर बेटा, ज़रा ठहर जा! मालिक को आने दे। फिर देख, तेरी कैसी कुन्दी निकलती है ? आते ही उन्हे यह बोतल खाली दिखेगी और वे सब हाल मुझसे पूँछेंगे। फिर कैसा होगा रे ? भैय्या, मै तो कान पर

हाथ रखकर साफ़ कह दूँगा कि जिरो की यह सब शैतानी है। मैंने जिरो को बहुत मना किया, पर उसने मेरी एक भी न सुनी। फिर भला मैं क्या कर सकता था ?

जिरो—हाँ, यह देख, तारो! मैं कहे देता हूँ कि मुझ में झूठ मत बोलना। अरे! जबसे मैं ही तो चिल्ला रहा हूँ कि इतनी न खा, नहीं तो शक्कर खतम हो जायगी। परन्तु तू तो मेरी चिल्लाहट को एक कान से सुनकर दूसरे से छोड देता है। अभी तक तूने मेरी बात पर ज़रा भी ध्यान दिया है ? मैंने तो पहिले ही तुझे यह कह दिया था कि बोतल का डॉट तक न न खोल। परन्तु तूने सुना ? फिर भला मुझे क्यों दोष देता है ? धन्य है तारो, धन्य है तुझको! बाबा, तुझ-जैसे बेईमान मनुष्यों को तो दूर ही से प्रणाम करना चाहिए। ठीक है, मालिक को आ जाने दे, फिर मैं ही उन्हे सच सच बात बता दूँगा। तू क्यो घबड़ाता है ?

तारो—अरे वाह दोस्त! तुम तो एकदम जामे के बाहर हो गये। एकदम इतना बुरा मान गये! अरे मैंने तो तुझसे दिल्लगी ही की है। क्या तुझे दिल्लगी भी समझ मे नही आती ? अच्छा, यह सब तो हो चुका। हम लोगो ने शक्कर की बोतल तो चाट-पोछकर साफ़ कर दी; पर अब इसे फिर भर देने के लिए कौन सा उपाय करना चाहिए ? हाँ, इसके लिए अब एक उपाय है। देखो, यह सामने जो तस्वीर टॅगी है।

जिरो—हाँ, फिर ?

तारो—उसे निकालकर उसके टुकड़े टुकड़े कर और उन टुकड़ो को पीसकर बोतल मे भर दे। बस, फिर अपना काम हो गया।

जिरो—ठीक है, वैसा ही करता हूँ। इसमे मेरा क्या बिगड़ता है ?

[तस्वीर के टुकड़े टुकड़े कर डालता है]

तारो—अरे, ठहर जिरो, जरा ठहर ! तू यह क्या कर रहा है ? अरे ! यह तस्वीर कितनी सुन्दर थी ? अरे उल्लू ! तुझे इस तस्वीर की कीमत का भी कुछ ख्याल है ? यह तस्वीर एक प्रसिद्ध चित्रकार की कला का प्रदर्शन था। अब इस प्रकार का चित्र क्या फिर कभी मिल सकता है ? ठहरो, बेटाजी, ज़रा ठहरो। ज़रा मालिक को तो आ जाने दे, फिर देखो, तेरी खोपड़ी की क्या हालत होती है ?

जिरो—वाह ! वाह !! तारो !!! तू भी पूरा उस्ताद दिखता है। तूने ही मुझे तस्वीर फोड़ने की सलाह दी और तू ही मुझपर अब आँखे निकालता है ! वाह तारो ! तेरा क्या पूछना है ?

तारो—अरे हाँ, तू यह क्या कह रहा है ? मैने तो तुझसे दिल्लगी की है।

जिरो—अभी तो यह तेरी दिल्लगी है, पर जब मालिक कुन्दी करेंगे, तब मालूम होगा कि यह दिल्लगी है कि आफत, और इस दिल्लगी मे कितना सुख है ?

तारो—अच्छा, यह देख जिरो ! वह चाय का कप कितना सुन्दर है ? उसे भी फोड़ डाल।

जिरो—भैय्या, अब मै इस झंझट मे नही पड़ता। तू तो कुछ अंड-बंड सलाह देता है। यदि तुझे मज़ा ही करना है, तो उस मज़ा मे तेरा भी कुछ हिस्सा होना चाहिए। उस कप का एक हिस्सा मै पकड़ता हूँ और दूसरा तू पकड़। हम दोनो मिलकर उसे बीचोबीच पटक देंगे कि बस, फिर काम हो गया।

[ज़मीदार आता है]

ज़मीदार—अरे ! यह क्या है रे ? यह क्या कर रहे हो ? क्या दोनो इकदम ही पागल हो गये हो ? क्यो रे ? जल्दी बोलो।

तारो—बतला न रे जिरो ! अब बतला।

जिरो—तू ही बतला।

तारो—ठीक है, मै ही सब बतलाये देता हूँ। मुझे क्या डर है ? यह देखिए सरकार, हम दोनो कुश्ती लड़ रहे थे। हुजूर को मालूम ही है कि इस फ़न मे जिरो कितना उस्ताद है। उसने मुझे पकड़ा और ऊपर उठाया। वह मुझे नीचे पटकने ही वाला था कि मैंने अपनी जान से निराश होकर, सहारे के लिए, दीवाल पर की तस्वीर ज़ोर से पकड़ ली। परन्तु जिरो ने मुझे इतने ज़ोर से नीचे पटका कि मै उस तस्वीर के साथ ही धरती पर औंधा गिर पड़ा। दैवयोग से मेरी हड्डियाँ तो बच गई, परन्तु तस्वीर के टुकड़े टुकड़े हो गये। हुज़ूर, अब आप ही बतलाइए कि मै क्या करूँ ? इसमे मेरा क्या क़ुसूर है ?

जिरो—हाँ हुज़ूर, जैसा तारो कह रहा है ठीक वैसा ही हुआ। इसके बाद तारो ने 'धोबीपछाड़' पेंच लगाकर मुझे ज़मीन सुँघाई। ख़ैर, गिरा भी, तो सीधा गिरना था, परन्तु नहीं, उस कप ही पर जा गिरा और इसलिए वह कप भी चकनाचूर हो गया।

ज़मी०—छिः ! अब तो बिल्कुल सहन नही होता। तुम दोनो बड़े बदमाश और पाजी हो। तुम दोनो को अच्छी सज़ा देना चाहिए।

तारो—महाराज, बिल्कुल ठीक है, बिल्कुल ठीक है। यह मुझे भी मालूम है कि जिसने यह अपराध किया है उसे प्राण-दंड ही योग्य है। और, एक बार मरना ही पडता है। फिर मरने के लिए देर क्यो करनी चाहिए ? हम लोग जानते थे कि आप हमे यही दंड देंगे, इसीलिए बड़ी देर से मरने के लिए तैय्यार बैठे है।

ज़मी०—'बुसु' खा लिया ? अरे क्या तुम लोगो ने 'बुसु' खा डाला ?

तारो, तू क्या कह रहा है रे ? फिर अब देर ही क्या है ? तुम्हें अब मरने मे देर ही क्या है ?

तारो—[रोती हुई आवाज़ मे] हाँ सरकार, हमने 'बुसु' ही खाया है। पहिले तो यह समझे कि यह ज़हर बड़ा तेज़ होगा, इसलिए हमने तनिक सा चख देखा। परन्तु जब उसका कुछ भी परिणाम न हुआ, तो हमने ज़रा उसका परिमाण बढ़ा दिया। इकदम मर जाने की इच्छा से हम लोगो ने उस ज़हर को ख़ूब खा डाला। परन्तु हुज़ूर, क्या कहे ? हम लोग बड़े हतभागी है। इतना ज़हर खाकर भी हमारे दुष्ट प्राणों ने हमारी देह का त्याग नहीं किया। और तो और, हमने उस बोतल को चाट-पोंछकर इतना साफ़ कर दिया कि उसमे 'बुसु' का एक कण भी बाकी नही बचा। इतने पर भी यमराज हमपर ख़ुश नही हुए।

ज़मीं०—अरे, पाजी ! हरामज़ादो !! बदमाशो !!! ठहरो, ज़रा ठहरो ! मै तुम्हे अब सचमुच ही मज़ा बतलाता हूँ।

तारो }
जिरो } —हुज़ूर, माफ़ कीजिए, माफ़ कीजिए !

(दोनो नौकर भाग जाते है। ज़मींदार भी उनके पीछे भागता जाता है)

[पर्दा गिरता है]



गुरु-वाक्य

पात्र:—

(राजाराम, गुरुचरण, लोचनलाल, कार्त्तिकेय और केशव)

राजा०—गुरुदेव अभी तक नहीं आये, क्या किया जाय ?

कार्त्ति०—मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा हुआ हूँ। मेरा नाम कार्त्तिकेय है और मेरे छोटे साले का नाम कीर्त्तिचन्द्र है। मेरी स्त्री अपने भाई को 'कीर्त्ति' कहकर पुकार सकती है या नहीं, इस बात का निर्णय किये बिना स्त्री के पास रहना कठिन हो गया है। इसका निर्णय कराना है।

गुरु०—मुझे भी एक बात पूछनी है। उस दफा जगन्नाथजी में मैंने नारियल खाना छोड़ दिया था। अब गर्मियों में अगर कच्चे नारियल का पानी खाली पियूँ तो कुछ दोष तो न होगा ?

राजा०—मैंने उस दिन गुरुजी से पूछा था कि शास्त्र के मत में भोक्ता श्रेष्ठ है या भोज्य श्रेष्ठ है ? अन्न श्रेष्ठ है या उसको खानेवाला ? गुरुजी ने ऐसा एक गंभीर उत्तर दिया कि हम सब पानी की तरह उसे समझ गये। मगर इस समय हममें से किसीको एक अक्षर याद नहीं है।

लोचन०—मुझे जहाँ तक याद है, उन्होंने कहा था कि अन्न भी श्रेष्ठ नहीं है और अन्न को खानेवाला भी श्रेष्ठ नहीं है, किन्तु और ही कुछ श्रेष्ठ है—मगर वह बात याद नहीं आती।

गुरु०—नहीं नहीं, उन्होंने कहा था, अन्न भी श्रेष्ठ है और अन्न को खानेवाला भी श्रेष्ठ है। किन्तु अन्न ही क्यों श्रेष्ठ है और उसे खानेवाला ही क्यों श्रेष्ठ है—यह उस समय अच्छी तरह समझ लेने पर भी इस समय याद नहीं पड़ता।

केशव—अपनी सहज स्वाभाविक बुद्धि से पहले यह मैंने निश्चय कर लिया था कि अन्न और उसके खानेवाले में कौन श्रेष्ठ है, किन्तु गुरुदेव की बात से मालूम हुआ कि पहले कुछ नहीं समझा था, और अब उन्होंने जो कहा, उसे भी बिल्कुल नहीं समझा।

(दौड़ते हुए मथुरा का प्रवेश)

मथुरा—(हाँफते हाँफते) गुरुजी कहाँ हैं ? हमारे शास्त्रीजी महाराज कहाँ हैं ? बतलाओ न जी, वह कहाँ गये ?

राजाराम वग़ैरह—क्यों क्यों ?

मथुरा—एकाएक रात को मेरे मन में एक प्रश्न उपस्थित हुआ। तब से अब तक नींद ही नहीं पड़ी।

कार्त्ति०—हाँ! अच्छा वह प्रश्न क्या है ?

मथुरा०—कल मसहरी झाड़ते-झाड़ते एकाएक एक तर्क यह उठा कि देश भर के लोगों के रहते जटायु ही क्यों रावण के साथ युद्ध में मारा गया ? जटायु रावण के साथ युद्ध में मरा, इसका अर्थ क्या है, इसका कारण क्या है और इसका तात्पर्य क्या है। अगर इसके भीतर कुछ रूपक है तो वह क्या है ? यदि कुछ मतलब है तो वह क्या है ?

कार्त्ति०—प्रश्न बेशक कठिन है—शास्त्रीजी को आने दीजिए।

केशव—(डरते-डरते) ठीक कह नहीं सकता, किन्तु मुझे जान पड़ता है कि जटायु की मृत्यु का कारण यही है कि रावण ने उसे भयानक रूप से घायल कर डाला था।

मथुरा—अरे राम, यह भी कोई उत्तर हुआ ? यह तो सभी जानते हैं।

कार्त्ति०—यह तो मैं भी कह सकता था।

राजा०—ऐसे उत्तर से कहीं सन्तोष होता है ?

(मथुरा का चिन्तित और केशव का अप्रतिभ भाव)

राजा०—(उठकर) वह गुरुजी आ रहे हैं।

गुरु०—वह शास्त्रीजी आ गये।

मथुरा—(चिन्ता से चौंककर) एँ, गुरुदेव आ गये ? आधे के लगभग मेरा सन्देह तो अभी दूर हो गया।

(सबका दण्डवत् प्रणाम करना)

गुरुदेव—स्वस्ति स्वस्ति !

मथुरा—गुरुजी, कल मसहरी झाड़ते समय मुझे एक प्रश्न सूझा है।

गुरुदेव—क्या ?

मथुरा—पक्षिराज जटायु रावण के साथ युद्ध में क्यों मारे गये ? (उँगली से दिखाकर) केशव कहते हैं कि अस्त्राघात ही इसका कारण है। (केशव का लज्जित कुण्ठित भाव)

गुरुदेव—हाँ ? हाः हाः हाः, आधुनिक स्कूल-कालेज में पढ़े लड़कों का ऐसा ही उत्तर भी है। शास्त्र-चर्चा छोड़कर विज्ञान पढ़ने का फल ही यह है। प्रश्न हुआ—जटायु की मृत्यु क्यों हुई ? उत्तर मिला—अस्त्राघात से ! यह क्या हुआ, जानते हो ? काशी में पानी बरसा और लखनऊ में टीड़ियाँ नाज चर गईं। हा हा हा !

गुरु०—ठीक ऐसी ही बात है। आजकल ऐसा ही हो गया है। अच्छा भैया केशव, तुमने तो कई दर्जे पास किये हैं, तुम्हीं बतलाओ, अस्त्राघात ही से जटायु क्यों मरा, रक्त-पित्त रोग में क्यों नहीं मरा ? रावण ही से युद्ध क्यों हुआ ? भस्मलोचन

के साथ क्यो न हुआ ? बहुत कहने की क्या ज़रूरत है, जटायु ही क्यो मरा, रावण क्यो न मरा ? (केशव का और भी चिन्तित भाव)

राजाराम और गुरुचरण—(गहरी चिन्ता के साथ) ठीक तो है, इतने लोगों के रहते जटायु ही क्यो मरा ?

लोचन०—केशव, कुछ जवाब दो न। तुम्हारे रास्को साहब क्या लिखते है ?

कार्त्ति०—तुम लोगो के टेडल साहब क्या कहते है—रावण ही के साथ क्यो युद्ध हुआ ?

राजा०—रक्त-पित्त से न मरकर अस्त्राघात से मरने के लिए ही उसे क्या पड़ी थी। भला बतलाओ, हक्सले साहब ने इसकी क्या मीमांसा की है !

केशव—(अधमरा-सा होकर) गुरुदेव, मै मूढ़मति हूँ। बिना समझे एक बात कह डाली है। माफ कीजिए। मै अब श्रीमुख का उत्तर सुनने के लिए उत्सुक हूँ।

गुरुदेव—तुम कहते हो कि रावण के साथ युद्ध मे जटायु क्यो मरा—इसका उत्तर एक ही बात मे कैसे दिया जा सकता है ?

सब—यही बात है—यही बात है !

गुरुदेव—पहले यह देखना होगा कि रावण ही के साथ युद्ध क्यो हुआ, फिर देखना होगा कि रावण के साथ युद्ध ही क्यो हुआ, उसके बाद देखना होगा कि रावण के साथ युद्ध मे जटायु ही क्यो मरा, सबके अन्त मे यह विचारना होगा कि रावण के साथ युद्ध मे जटायु मरा ही क्यों ?

(मथुरा का घोर-चिन्ता-मग्न भाव)

राजा०—(केशव को हुसकारकर) सुनते हो केशव ?

लोचन०—क्यो केशव, तुम तो कुछ बोलते ही नही ?

कार्त्ति०—मिस्टर केशव, तुम्हारी केमिस्ट्री कहाँ गई ?

(केशव का मुँह लाल हो आना)

गुरुदेव—अच्छा तो एक-एक का उत्तर देता हूँ। प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि—नियतिः केन बाध्यते।

मथुरा—(लंबी साँस लेकर) सब निवृत्त हो गया। इसके सिवा और कोई उत्तर हो ही नही सकता।

गुरुदेव—अगर कहो कि "होनी को कौन टाल सकता है" इसका सरल अर्थ क्या है, तो मैं उसे और भी सरल करके समझा दूँ। सुनो, होनी को नियति कहते है। नियतत्व ही नियति का गुण है और नियत का गुण है नियति। जब यह बात है तब नियतकालवर्त्ती जो है नियति उसको फिर नियन्त्रित कर सकनेवाली द्वितीय नियति की संभावना कहाँ है ? क्योंकि नित्य जो है वही नियत है और वही नियन्ता है। अतएव रावण के साथ जटायु का युद्ध होना असंभव नहीं।

सब—इसमे असंभव क्या है ?

मथुरा—वाह, इसमे असंभव क्या है ?

गुरुदेव—अब द्वितीय प्रश्न—

मथुरा—किन्तु बस, पहले प्रथम प्रश्न को ख़ुराक पच जाने दीजिए।

राजा०—किन्तु कैसा अच्छा उत्तर है !

गुरु०—कैसी सरल मीमांसा है !

कार्त्ति०—कैसा साफ़ भाव है !

लोचन०—कैसा गहरा शास्त्रज्ञान है !

मथुरा०—(शास्त्रीजी के मुख की तरफ़ बहुत देर तक टकटकी लगाये रहकर) गुरुदेव, आपके न रहने पर हम लोगो की क्या दशा होगी।

(सबका रोना)

आदर्श स्वामि-भक्ति

पात्र :—

१—शरदचन्द्र—एक युवक

२—बल्लू—शरदचन्द्र का नौकर

३—रमाकांत—शरदचन्द्र का मित्र

४—जज

५—सेठ तुलाराम

६—चपरासी आदि



दृश्य पहला।

(शरदचन्द्र विचार करता हुआ प्रवेश करता है)

शरद—हाय! अब दुःख करने से क्या हो सकता है? जब मेरी आँखें पिताजी के संचित-धन-मद से चढ़ी हुई थीं और उस मद के कारण जब मैं अपने सिवाय और सबों को तुच्छ समझता था, उस समय स्वामिभक्त बल्लू के वे बहुमूल्य उपदेश मुझे कर्ण-कटु लगते थे। जब मैं अपनी अपार संपत्ति दुर्व्यसनों में बेखटके उड़ा रहा था, तब वह स्वामिभक्त सेवक अपनी अमृत-तुल्य वाणी से मुझे उपदेश करता था; परन्तु हाय! उस समय

वे उपदेश मुझे कर्णकटु लगते थे। उसीका यह फल है। प्यारे बल्लू, तुझ ऐसा अनेक गुणों से अलंकृत मणि मुझ काल-सर्प के पास होने के कारण ही, तेरे गुणों की योग्य क़ीमत नहीं हो पाई। हाय! अब मैं अपने कर्मों का उस परमेश्वर के पास क्या जवाब दूँगा? देखो, साम्हने से वही गुणों की प्रतिमा आ रही है। (बल्लू आता है)

बल्लू—हु.जूर!

शरद—हाँ, क्या कहते हो? मेरे अपराधों के लिए मुझे तुम क्या दंड देना चाहते हो?

बल्लू—हुजूर, आप यह क्या कह रहे है? आपने मेरे क्या अपराध किये है और मैं आपको क्या दंड दे सकता हूँ? हुजूर, आजकल आप ऐसा क्यो करते है? आप कुछ खाते नहीं, पीते नहीं, किसीसे बोलते नहीं। ऐसा करने से कहाँ तक चल सकेगा? आपके प्रिय मित्र कमलाकर, रमाकांत, पद्मनाभ अब आपसे मिलने क्यो नहीं आते?

शरद—बल्लू, उन दुष्टो के नामो का उच्चारण कर तुम अपनी पवित्र जिह्वा दूषित मत करो। तुम जानते ही हो कि जब तक फूल में रस रहता है तभी तक भौंरे उसके आसपास मड़राते है, परन्तु जब वह फूल मुरझा जाता है, जब उसमे रस का लेश नही रहता, तब वे ही भौंरे उसकी ओर फूटी आँख से भी नही देखते।

बल्लू—तो क्या वे आपको छोड़ गये?

शरद—हाँ, इतना ही नहीं, लेकिन अब उन्हे मेरा मुँह देखने में भी शरम मालूम पड़ती है।

बल्लू—.खैर, जो हुआ सो ठीक ही हुआ। कुशल इतनी ही है

कि अब भी आपकी आँखें खुलीं। वे ही यदि कुछ दिन पहले खुली होतीं, तो आप अपनी ज़मीन-जगह काहे को खो बैठते ?

शरद—लेकिन अब उनके खुलने से क्या लाभ ? अब जब कि मैं सिर्फ दो ही चार दिनों का मेहमान हूँ।

बल्लू—हुजूर, आप यह क्या कह रहे हैं ?

शरद—बल्लू, मैं जो कुछ कहता हूँ बिल्कुल सत्य है।

बल्लू—सो कैसे ?

शरद—सुनो। तुम जानते ही हो कि इन दुष्टों की संगति से मुझे अनेक व्यसन लगे और उन व्यसनों के कारण मैं अपनी सब संपत्ति गमा बैठा। जब मेरे पास कुछ न बचा, तब इनकी दृष्टि मेरी ज़मीन पर पहुँची। धीरे धीरे वह भी मेरे हाथ से जाने लगी। अन्त में जब मैं बिल्कुल निःसत्व हो गया, तब ये लोग भी मेरा साथ छोड़ने लगे। इतने दिन इनकी संगति करने से अब मुझे इनके बिना अच्छा नहीं लगता था और इसलिए अब मैं ही उनके यहाँ जाने लगा। एक दिन शाम को जब मैं रमाकांत के यहाँ गया था, तो वहाँ मुझे उनकी मेज़ पर उनकी तिजोड़ी की चाबी पड़ी दिखी। उस समय रमाकांत कहीं बाहर गया था। उस चाबी को देख मेरे मन में कुविचार उत्पन्न हुआ। मैंने उसे उठाकर तिजोड़ी खोली। तिजोड़ी में बहुत-सी चीज़ें रक्खी थीं, लेकिन उन सबों में एक रत्नों का कंठा अधिक क़ीमती था। मैंने उस कंठे को उठाकर अपने खीसे में रख लिया।

बल्लू—[दुखित होकर] फिर ?

शरद—फिर मैं तिजोड़ी को बन्द कर चाबी जहाँ की तहाँ रख वहाँ से निकल आया। रास्ते में मुझे रमाकांत मिला, लेकिन मैं उसे

अनदेखा कर चला आया। दूसरे दिन सबेरा होते ही मै उस कंठे को लेकर बाज़ार में गया और उसे एक जौहरी को दस हज़ार रुपयों में बेंच रुपये लेकर घर आने लगा। राह में मुझे रमाकांत फिर मिला। अब की बार मै उसे देखकर डरा; लेकिन मैंने अपना डर छिपाने का प्रयत्न किया। वह भी बातो में लगाकर मुझे बाज़ार मे ले गया। जैसे ही हम पुलिस-चौकी के पास पहुँचे, तो वह भीतर गया। थोड़ी देर बाद वहाँ से दो सिपाही आये और वे मुझे पकड़कर भीतर ले गये। उन्होंने वहाँ मेरी जामातलाशी ली और मेरे पास के दस हजार रुपये उन्होने रख लिये। इतने मे मेरे मामा वहाँ से निकले। वे मुझे पुलिस के अधीन देख मेरे पास आये और मुझसे उसका कारण पूछने लगे। मैं शरम के मारे उनसे कुछ न कह सका। तब वे भीतर गये। सब हाल मालूम होने पर वे बीस हज़ार की ज़मानत पर मुझे छुड़ा लाये। बल्लू, कल मेरा मुकदमा है और दो ही चार दिनो में.... .

बल्लू—हुजूर, आपने यह क्या किया ? आपके कुल में अभी तक ऐसा किसीने नहीं किया था। आपने अपने कुल मे कलंक लगाया।

शरद—हाँ, यह मैं जानता हूँ, लेकिन जो होना था सो हो गया। अब सिवाय पछताने के और क्या उपाय है ? मैं चाहता हूँ कि अब अपना यह समय विचार करने में बिताऊँ। तुम अब यहाँ से जाओ।

बल्लू—हुजूर, थोड़ी देर मुझे यहाँ रहने दीजिए।

शरद—नहीं, अब मुझे अधिक मत सताओ। तुम जाओ। [थोड़ी देर ठहरकर] क्या तुम नही जाते ? अच्छा, मैं ही जाता हूँ। [जाता है]

बल्लू—हाय ! यह क्या हुआ ? मरते समय मालिक ने क्या कहा था ? "बल्लू, अब इस लड़के के तुम्ही माँ बाप हो। महाराज, अपने लड़के की यह स्थिति देखकर स्वर्गलोक में आप मुझे क्या कहते होगे ? पर मैं क्या करूँ ? मेरे हाथ मे ही क्या था ? अब मैं स्वामी को कैसे बचाऊँ ? [विचार कर] हाँ, यह एक उपाय है। मेरी आजतक की कमाई के दो ढाई हज़ार रुपये जमा है। देखूँ, इस समय मै उनका क्या उपयोग कर सकता हूँ। [जाता है]

दृश्य दूसरा।

[रमाकांत का घर। रमाकांत विचार करता हुआ बैठा है]

रमा०—देखो, दुनियाँ भी कैसी विचित्र है ! जिसके पैसे से मैंने आजतक आनन्द किया, जिसके सिर पर मैंने अच्छी तरह हाथ फेरा वही अब मेरा सिर गंजा करना चाहता है। लेकिन मै भी कुछ कच्चे गुरु का चेला नहीं हूँ। मैने आजतक ऐसे सैकड़ो को खिलाया है। (बल्लू आकर सलाम करता है। उसकी ओर) कहो, कैसे आये ?

बल्लू—मैं आपसे एक बिनती करने आया हूँ। मैंने सुना है कि मेरे शरदचन्द्र ने आपकी कुछ चोरी की है।

रमा०—हाँ, और उसका कल मुक़द्दमा भी तो है।

बल्लू—तो मै आपके पास इसीलिए आया हूँ। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उनपर कृपा करें।

रमा०—वाह, ख़ूब कही ! चोर चोरी करे और वह बिना ही सज़ा पाये छोड़ दिया जाय ! यह तो हमारे बाप-दादो ने भी नहीं सिखाया।

बल्लू—नही, उनके अपराध के लिए मैं अपने आपको दंड देने के लिए तैयार हूँ। आप जानते ही है कि मैं शरदचन्द्र के यहाँ

२५ वर्ष से, यानी उनके जन्म के पहले से ही, नौकर हूँ। इस नौकरी मे आजतक मैंने क़रीब ढाई हज़ार रुपये जमा किये हैं। मै आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप वे सब रुपये दंड मे लेकर उन्हे छोड़ दें।

रमा०—(विचार कर) नहीं, ढाई हजार बहुत थोड़े हैं। वह कंठा दस हज़ार का है। हाँ, यदि तुम मुझे दस हज़ार देने को तैयार हो, तो मैं कुछ प्रयत्न कर देखूँ।

बल्लू—इतने रुपये मैं कहाँ से ला सकता हूँ ?

रमा०—तो मैं भी उसे कैसे छोड़ सकता हूँ ? बस, अब ज्यादा बकबक मत करो।

बल्लू—मेरी आपसे एक प्रार्थना है। आप . . . .

रमा०—बस, मै अब कुछ नहीं सुनना चाहता। चलो यहाँ से, चले जाओ। क्या नहीं जाते ? [चिल्लाकर] रामदीन, ए रामदीन !

बल्लू—[स्वगत] हाय ! यह दुष्ट अब एक न मानेगा। हे प्रभो ! अब स्वामी की रक्षा तुम्हारे ही हाथ है। मुझसे जहाँ तक हो सका मैंने उन्हे बचाने का प्रयत्न किया; परन्तु अब मेरी शक्ति के बाहर है। हे मृत पितामहो ! हे स्वर्गस्थ देवताओ !! हे नव-कोटि ब्रह्माण्डो के नायको !!! अब उस ग़रीब गाय को इस दुष्ट व्याघ्र के जबड़े से खींचकर बाहर निकालने मे केवल आप ही समर्थ हैं। [जाता है]

रमा०—[विचारकर] लोग कहते है, मेरा हृदय बहुत कठोर है; परन्तु जबसे मैंने इसकी बातें सुनीं, तबसे न मालूम क्यो, वह भी पिघलने लगा है। अच्छा हुआ जो मैंने इसे जल्द ही यहाँ से भगाया, नहीं तो इसकी बातो में आकर शायद हाथ आया हुआ मौका भी खो बैठता। [जाता है]

दृश्य तीसरा।

[स्थान :—अदालत]

बीच में जज बैठे हैं। आसपास ज्यूरी के लोग बैठे है। एक ओर शरद और दूसरे ओर रमाकांत खड़ा है।

जज—(ज़ोर से) शरदचन्द्र चौधरी ! (शरद सलाम करता है) रमाकांत द्विवेदी ! (रमाकांत भो झुककर सलाम करता है) आज के मुकद्दमे में अपराधी शरदचन्द्र चौधरी है। शरद एक अच्छे खानदान का है। इसके पिता रा० ब० प्रभाकरचन्द्र चौधरी ने बीस-पचीस वर्ष तक ईमानदारी से सर्कार की नौकरी की है। शरदचन्द्र पर रमाकांत का एक बहुमूल्य रत्नों का कंठा चुराने का अभियोग है। इस चोरी के विषय मे मै पहले रमाकांत से कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। रमाकांत, क्या तुम यह बता सकते हो कि तुम्हारा कंठा किस समय चुराया गया था ?

रमा०—हुजूर, मैं ठीक समय नही बता सकता; परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि उस समय क़रीब छः सात बजे होंगे।

ज०—जब तुम्हारा कठा चोरी गया, उस समय तुम कहाँ थे ?

रमा०—हुज़ूर, मै अपने मित्र पद्मनाभ के साथ बाहर घूमने गया था।

जज—फिर तुम यह कैसे कह सकते हो कि तुम्हारा कंठा उसी समय चोरी गया होगा ? शायद वह पहले ही चला गया हो।

रमा०—हुज़ूर, मैंने सुबह एक बार उस संदूक को खोला था। उस समय वह कंठा उसीमें था। उसके पश्चात् दिन भर मै कहीं बाहर नही गया। शाम को पद्मनाभ मेरे घर आया और उसके साथ मैं क़रीब साढ़े पॉच बजे बाहर गया। इसलिए वह कंठा मेरे जाने के बाद ही चुराया गया होगा।

जज०—रमाकांत, क्या तुम यह विश्वास-पूर्वक कह सकते हो कि तुम्हारा कंठा शरद ने ही चुराया है ?

रमा०—हाँ, जहाँ तक मैं समझता हूँ।

एक ज्यूरर—रमाकांत ! तुम क्या समझते हो, यह सुनने की कोई ग़रज़ नहीं है। पूँछे गये सवाल का जवाब दो। क्या तुम यह विश्वास-पूर्वक कह सकते हो कि तुम्हारा कंठा शरद ने ही चुराया है ?

रमा०—हाँ, मेरा पूर्ण विश्वास है कि मेरा कंठा शरद ने ही चुराया है, और यदि अदालत की इच्छा हो, तो इसे सिद्ध करने को भी तैयार हूँ।

जज—अच्छा रमाकांत ! बताओ, तुम क्या सबूत रखते हो ?

रमा—हुज़ूर, जिस दिन मेरा कंठा गया उसी दिन घर आते समय रास्ते मे मुझे शरद मिला था। वह मेरे मकान के तरफ से ही अपने घर की ओर जा रहा था। मैने उसे बुलाया, लेकिन वह मुझसे बिना ही बोले चला गया। हुज़ूर, शरद ने ऐसा बर्ताव मुझसे तब तक कभी नहीं किया था। इसके सिवाय, दूसरे दिन जब मै पुलिस में चोरी की ख़बर देने को जा रहा था, तो रास्ते मे शरद मुझे फिर मिला। इस समय मैं उसे बातो मे लगाकर चौकी में ले गया। पुलिस मे जब उसकी जामातलाशी ली गई, तो उसके पास दस हज़ार की मुहरें निकलीं और वहाँ पूँछने पर मालूम हुआ कि वे मुहरें वह सेठ तुलाराम के यहाँ से लाया है। आगे अधिक पता लगाने से यह भी ज्ञात हुआ कि वे मुहरें उसने वह कण्ठा बेंचकर पाई थीं।

जज—अच्छा, सेठ तुलाराम को बुलाओ।

[तुलाराम आता है और सबोको बन्दगी कर एक तरफ़ खड़ा होता है]

सेठजी, सौगन्ध खाकर कहो कि मै बिलकुल सच सच कहूँगा।

तुला०—(काँपती आवाज़ मे) हुजूर, मैं भगवान की, गङ्गामइया की सो खाकर कहता हूँ, मैं बिलकुल निखालिस सच कहूँगा।

जज—सेठजी, तुम उस कंठे के बारे मे जो कुछ जानते हो सो ठीक ठीक बताओ।

तुला—(वैसी ही आवाज़ मे) हुजूर, मै ठीक ठीक बताता हूँ, बिलकुल सच सच कहता हूँ। एक दिन सबेरे शरदचन्द्र, वे जो उस कोने मे खड़े है वह कंठा लेकर मेरे पास आये। उन्होने कहा कि मुझे दस हज़ार रुपयो की बहुत ज़रूरत है; इसीलिए मैं यह कंठा बेचने लाया हूँ। मैने वह कण्ठा उन्हीका समझ उसकी जाँच-परख कर दस हज़ार में खरीद लिया और दस हज़ार की मुहरें उनके हवाले की। हुजूर, इससे अधिक मैं कुछ नही जानता।

एक ज्यूरर—सेठजी, बस आप इतना ही जानते है ?

तुला०—हाँ हुजूर, मैं सच कहता हूँ, मुझे इतना ही मालूम है।

जज—अच्छा सेठजी, तुम जाओ। (तुलाराम सबोको झुककर राम राम करता और चला जाता है) शरद, यह अपराध तुम-पर साबित होता है। कहो, तुमको अपनी ओर से क्या कहना है ?

शरद०—हुजूर, मैं अपना अपराध कबूल करता हूँ और उसके लिए आप मुझे जो सज़ा दे वह भोगने को तैयार हूँ।

जज—क्या ? तुम कुछ नही कहना चाहते ?

शरद०—नहीं, इससे अधिक मेरा कुछ कहना नहीं है।

एक ज्यूरर—शरद, ऐसे उन्मत्त मत हो। इतनी जल्दी मत करो।

(शरद चुप रहता है। जज कुछ लिखता और खड़ा होता है। इतने मे भीतर से "ठहरिए २, जल्दी न कीजिए" की आवाज़ आती है। सब लोग चारों ओर देखने लगते हैं)

जज—(ज़ोर से) कौन है बाहर ? झल्ले, ए झल्ले ! देखो, यह कौन बदमाश चिल्ला रहा है। (बल्लू आकर सलाम करता है) क्या अभी तू ही चिल्ला रहा था ?

बल्लू—हाँ, आज यहाँ एक ग़रीब निरपराधिनी गाय का वध किया जा रहा है; इसलिए आप सबों को सावधान करता था।

एक ज्यू०—क्या ? यहाँ निरपराधिनी गाय का वध !! वह गाय कौन है ?

बल्लू—मेरे मालिक शरदचन्द्र के सिवाय दूसरी और कौन हो सकती है ?

दूसरा एक ज्यू०—क्या शरदचन्द्र निरपराधी हैं ? नहीं नहीं, यह बात बिलकुल असत्य है।

बल्लू—नहीं, यह बिल्कुल सत्य है।

जज—सो कैसे ?

बल्लू—साहिब, जब वह कण्ठा चोरी गया उसके कुछ ही दिन पहले मुझे किसी काम के निमित्त छः हज़ार रुपयों की बहुत आवश्यकता पड़ी थी, परन्तु उस समय मेरे पास केवल ढाई हज़ार ही थे। काम बहुत ज़रूरी था और उसे पूरा करने के लिए समय भी बहुत कम था। मैंने अपने मालिक से प्रार्थना की; परन्तु उस समय उनके पास कुछ न होने के कारण वे भी असहाय थे। सब तरफ़ से निराश होने पर मेरी दशा पागल की सी हो गई थी। तब मेरे मन मे कुविचार आने लगे। पहले मैंने उन्हे दबाने का बहुत प्रयत्न किया; परन्तु अन्त में मुझे ही हार खानी पड़ी। मैं अपने मालिक के साथ रमाकांत के घर सदा आया जाया करता था और इसी कारण मुझे उनके घर का बहुत कुछ हाल मालूम था। एक दिन शाम को मैं अपने मालिक के कपड़े पहन रमाकांत के यहाँ गया।

भाग्य-वशात् उस समय वे भी कहीं बाहर गये थे। मैंने भीतर जाकर उनकी तिजोड़ी खोली और एक बहुमूल्य रत्नो का कंठा खीसे में रखकर तिजोड़ी जैसी की तैसी बन्द कर वहाँ से लम्बा हुआ। राह में मुझे रमाकांत मिले; परन्तु मैंने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। उस रात को पकड़े जाने के डर से मुझे बिल्कुल नीद नहीं आई। दूसरे दिन सबेरा होते ही मैंने वह कंठा अपने मालिक को सौंपा और उसे बेंचने को उन्हे बाजार में भेजा। दुर्भाग्य से मेरे मालिक ही रास्ते मे पकड़े गये। इसके आगे का सब हाल आपको मालूम ही है।

रमा०—(स्वगत) धन्य है इसकी स्वामिभक्ति को ! अपनी निःसीम स्वामि-भक्ति से आज इसने हम सबो को नीचा दिखाया है। अपनी इस स्वामि-भक्ति के कारण ही हम व्याधो के रहते हमारे जाल में फँसे हुए भक्ष्य को आज यही निकाल कर लिये जा रहा है। यह सरासर झूँठ बोलकर आज अपने मालिक की जगह मरने को तैयार हुआ है। लेकिन मैं इसे कदापि न मरने दूँगा। (जाता है)

जज—नही, यह बात बिल्कुल झूँठ है। यदि इसमें सत्य का अंश भी होता, तो शरद ने अपनी ओर से कुछ न कुछ अवश्य कहा होता। क्या संसार में ऐसा भी कोई मनुष्य है जिसे अपने प्राण प्यारे न हो ?

बल्लू—हाँ, संसार में ऐसे कई मनुष्य है जो नाना प्रकार के संकटों से पीड़ित होकर जीने से मरना ही भला समझते हैं। हुजूर, ऐसे ही संकटो में शरदचन्द्र इस समय फँसे हुए हैं और यही कारण है कि उन्होने जीते रहने से मरना ही अधिक पसंद किया है।

क्रोध की शान्ति

पात्रः—

१—सेठ दरबारीलाल

२—हरिया } सेठ के नौकर
३—जीवन }

४—साधु महाराज



दृश्य पहला।

[स्थानः—सेठ दरबारीलाल की दूकान]

(सेठ बैठे हैं। पीछे से हरिया आता है)

सेठ—हरिया ! तू आज दिन भर से कहाँ रहा ? मैंने तुझे जिस काम के लिए भेजा था तू उसे पूरा कर आया या नहीं ?

हरिया—मालिक, आज मुझे घर ही में कुछ काम था; इसलिए आपके काम को नहीं पहुँच सका।

सेठ—अगर तुझे काम भी था, तो मैंने तुझे कौन बड़ा भारी काम बतलाया था जो तुझसे न हो सका ? और, यदि ऐसा ही था, तो तुझे पहले ही कह जाना था। मै अपना वैसा बन्दोबस्त कर लेता।

हरिया—(स्वगत) तुम्हे आराम से बैठे सब काम हल्के मालूम होते हैं। हम क्या अपना घर मिटा देवे ?

सेठ—अपने मन ही मन मे क्या गुद गुद कर रहा है ? तुझे काम करना है या नही ?

हरिया—मुझे तो करना है। यदि आपको न कराना हो, तो बात ही दूसरी है।

सेठ—तुम काम का काम नही करते और यह बकवाद करते हो। यह ठीक नहीं। ऐसा करने से कब तक काम चलेगा ?

हरिया—(स्वगत) न चलैगा, तो कौन भूखो मर सकता है ? (प्रगट) हम तो कुछ बकवाद नही करते, आप ही करते हैं। यदि आप न बोले, तो मुझे क्या आवश्यकता पड़ी है जो मै आपसे बोलता फिरूँ ?

सेठ—ठीक है। हमीं रुपया देवे, हमारा ही काम न हो और हमीं से इस तरह की बाते करते हो। यदि तुम अच्छी तरह काम कर सकते हो तो ठीक है, नही तो आज साफ़ साफ़ कह दो, हम वैसा प्रबन्ध कर ले।

हरिया—(स्वगत) प्रबन्ध ! प्रबन्ध !! प्रबन्ध !!! कर जो लो, बड़ा प्रबन्ध ! मुझे क्या दबाते हो ! (प्रगट) यदि आप नौकरी ले लेवेंगे, तो कुछ हम भी भूखो न मर जावेंगे, क्योंकि संसार में सभी मनुष्य नौकरी ही पर निर्भर नहीं है। जिस परमेश्वर ने यह शरीर बनाया है उसने भोजन की चिन्ता पहले ही कर ली होगी।

सेठ—ओहो ! इस प्रकार अभिमान ! वह देखो रामलाल, जिस की जगह पर तुम काम कर रहे हो, तभी से भूखो मरता है। उसका स्वभाव जानकर उसे कोई भी काम नही देता और यही हाल तुम्हारा भी होनेवाला है।

हरिया—रामलाल रामलाल ही है और हम हमी है।

सेठ—अरे मूर्ख! हम तो तेरे बाप की मुहब्बत के सबब तेरे ऊपर दया करते हैं और तू ऐसे अनाप-सनाप उत्तर देता है जिसको सुनकर ऐसा क्रोध आता है कि तेरा मुँह न देखें और आज ही निकाल बाहर करें। (दूसरा नौकर जीवन आता है) जीवन! देखो, इस हरिया को मैंने एक आदमी बुला लाने का काम बतलाया था, सो यह दिन भर में तो अभी आया है और वह काम भी नही कर लाया, और इसपर से मैंने इससे पूँछा तो यह मनमाना बकवाद करता है जिससे और क्रोध आता है।

जीवन—(हरिया से) क्यो हरी? तुम्हारी मैंने बहुत बुरी आदत देखी। तुम्हें ऐसा नही करना चाहिए। अपना स्वामी, जो आज्ञा देवे उसे सीस चढ़ाना चाहिए और यथा-शक्ति उसकी पाबन्दी करनी चाहिए। इसमें भलाई है।

हरिया—चलो, तुम भी उसी तरफ़ बोलने लगे। तुम्हारे समान डरनेवाले आसामी हम नहीं है। हम जहाँ लात मारें वहीं पानी निकाल सकते हैं। तुम हमे समझते क्या हो?

जीवन—चलो, ऐसे बातूनी हमने बहुत देखे हैं। जो बिना समझे-बूझे लगे धन्धे को छोड़कर दूसरे धन्धे की आशा रखते हैं वे अवश्य ही आपत्ति मे पड़ जाते हैं और तंग होते है। और, जान पड़ता है कि यही दशा तुम्हारी भी होगी।

हरिया—चलो, अब ज़्यादा सिखाने की कोई ज़रूरत नहीं। हम सब समझते हैं। तुम अपना काम देखो। परमेश्वर आप देगा, मुझे ऐसा भरोसा है।

जीवन—भैया, बिना अपने हाथ-पाँव चलाये भोजन मिलना बहुत कठिन है। भाग्य के भरोसे बैठे रहना आलसियो का काम है।

सेठ—जीवन ! यह तो महा मूर्ख, अभिमानी, गुस्ताख और लतखोर है। तुम भी उससे क्या माथापच्ची करते हो ? वहाँ तो वही मसल है कि "भैंस के आगे धरी भागवत"। वह कुछ नहीं समझेगा और नाहक मुझे गुस्सा आ गया, तो मारपीट कर दूँगा।

हरिया—नही साहब, आप ऐसा सोचना भी नही। यदि आपने ऐसा किया तो अब आगे नौकरी नहीं कर सकता।

सेठ—नौकरी नहीं करना तो मत करो; पर अब अगर जवाब दिया, तो फिर दो-चार तमाचे जमाये जाते हैं।

हरिया—अच्छा जमाइए। देखूँ कैसे जमाते हैं।

जीवन—अरे चुप रहो जी, नहीं तो पिट जाओगे। फिर रोने के सिवाय और क्या कर सकते हो ?

हरिया—(जीवन से) तुम चुप रहो। इन्हे मारने दो। देखें, कैसे मारते हैं।

सेठ—(मारता है, जीवन बचाता है) निकल जा यहाँ से। (हरिया रोता हुआ जाता है)

दूसरा दृश्य।

(एक साधू बैठे है, हरिया प्रवेश करता है)

साधू—हरिया ! क्यो रोता है ? शान्त हो, बैठ जा। (बैठता है) सुना तो, क्यो रोता है ?

हरिया—महाराज, सेठजी ने मुझे मारा है। अब मै नौकरी नहीं करूँगा।

साधू—बच्चा, लगा हुआ धन्धा कभी नहीं छोड़ना चाहिए और अपने मालिक के साथ कभी उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं करना चाहिए।

मालिक को सदा प्रसन्न रखना चाहिए। मैं तेरे स्वभाव को बहुत दिनो से जानता हूँ। आज भी तेरी बातचीत मै सुन चुका हूँ। पहले तू अपने स्वभाव को सुधार। फिर कभी ऐसा अवसर आने का नहीं।

हरिया—महाराज, मैं क्या करूँ? यह स्वभाव इतना क्रोधी है कि मैं इसे बहुत सुधारना चाहता हूँ; परन्तु यह नही सुधरता। अब कृपाकर आप ही इसका कोई उपाय बतला देवे, तो बहुत अच्छा हो।

साधू—अच्छा, तू जा और एक बोतल पानी से भर कर ला।

हरिया—बहुत अच्छा महाराज! (जाता है और एक बोतल में पानी भरकर लाता है) यह है महाराज!

साधू—(हरिया की आँख बचा बोतल में कुछ मिला देते है) ले, यह तेरी दवाई है। जिस समय तेरा मालिक तुझपर कुछ क्रोध करे, तब तू इसका एक कुल्ला अपने मुँह मे भर लेना; और जब वे बोलते बोलते चुप हो जावें, तब इसे बाहर उगल दिया कर। ऐसा करने से तेरे पिटने या मालिक की अप्रसन्नता का अवसर कभी नही आयगा।

हरिया—बहुत अच्छा महाराज!

(हरिया का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य।

(हरिया दवा लेकर आता है। फिर उसे एक तरफ़ रखकर मालिक के पास जाता है)

सेठ—(हरिया से) नालायक़, तू फिर खोपड़ी खाने को आ गया। चल, निकल जा यहाँ से।

(हरिया मालिक की आँख बचाकर झट उस दवा का कुल्ला मुँह में लेता है और एक तरफ़ बैठ जाता है)

सेठ—क्यों रे, बोलता नहीं? कहता तो था अब नौकरी नहीं करूँगा। फिर क्यों आया? चल, निकल अब यहाँ से।

(हरिया कुछ नहीं बोलता। मालिक थोड़ी देर में चला जाता है। हरिया दवा का कुल्ला उगल देता है और साधू के पास जाता है)

चौथा दृश्य।

हरिया—(साधू से) महाराज, आपने मुझपर बड़ी भारी कृपा की जो ऐसी उत्तम दवा दी। आज मेरे मालिक ने मुझे नहीं मारा और न वे विशेष क्रुद्ध ही हुए।

साधू—सचमुच यह दवा बहुत ही उत्तम है। जब तेरा मालिक क्रोध करे, तब तू ऐसा ही किया कर।

हरिया—बहुत अच्छा महाराज! आपने बड़ी कृपा की जो मुझे ऐसी उत्तम दवा दी।

साधू—हरिया, यदि सच पूँछे तो वह दवा कुछ नहीं, केवल पानी में नमक है। जब तक वह पानी तेरे मुँह में रहता है, तब तक तू बोल नहीं सकता, इसीलिए पिटने से बचा रहता है और आगे भी बचा रहेगा। क्रोध के समय चुप रहना ही अच्छा होता है।

हरिया—वाह महाराज! आपने बड़ी कृपा की।

(हरिया कृतज्ञता बताता और पैर छूता है)

[पर्दा गिरता है]





पात्र:—

१—सदानन्द—अँगरेज़ी पढ़नेवाला विद्यार्थी

२—आठ-दस साल का एक ग़रीब विद्यार्थी

३—साधु

४—एक फ़ैशनेबल जैन्टिलमैन

५—अंडप्पाजी—एक मद्रासी मनुष्य

६—फ़ंटेबाज़ गृहस्थ

[**स्थल :**—रेसिडेंसी कालेज के छात्रालय की एक कोठरी में सदानन्द पढ़ने की तैयारी मे बैठा है]

सदानन्द—(स्वगत) क्या करें दोस्त ! परीक्षा तो निकट आ गई और हमने तो एक किताब भी खोलकर नही देखी है। देखें कैसे ? समय तो चाहिए। चाय, पानी, गप्प-सप्प, नाटक-उपन्यास, टेनिस और नींद, इनसे फ़ुरसत मिले तब कहीं पढ़ाई का विचार किया जाय। देखिए, आज कही थोड़ी-सी फ़ुरसत मिली है, इसलिए पढ़ने को बैठा हूँ। (किताब खोलता है) देखो, विद्यार्थियो की दशा भी कितनी ख़राब है। अन्य सब कामो को करके, थक चुकने के बाद, आराम करने की इच्छा होने पर, केवल मनोरंजन करने के लिए, अभ्यास करने की हमपर

बारी आती है ! हः ! संसार-चक्र जारी ही है। अब सीरिअसली (seriously) पढ़ना आरम्भ करना चाहिए। (एक दो सतरें पढ़कर) पर बिना थोड़ी-सी सुपारी भकोसे इनजानिब पढ़ ही नही सकते। (उठकर सुपारी फोड़कर खाता है) हाँ, अब कही ज़रा हिसाब-किताब जम गया। अब चाहे जान भी चली जाय, लेकिन मैं बिना आध घंटा एक सा पढ़े यहाँ से रत्ती भर भी न हिलूँगा। (पढ़ने लगता है। उसी समय कोठरी का दरवाज़ा खटखटाया जाता है) यह कौन बेवकूफ आया ? मेरे अभ्यास में उसे ख़लल डालने की क्या सनक उठी ? कौन है वह ? कहीं धोबी तो नही है ? इस धोबी ने, ग्वाले ने और होटल के मैनेजर ने तो मेरी खोपड़ी चाटने का ही इरादा कर लिया है। मालूम होता है कि इन लोगों ने समय-कुसमय पर आकर हमारी आनन्द-पूर्वक होनेवाली पढ़ाई मे ख़लल डालने का बीड़ा ही उठा लिया है। (एक छोटा-सा बालक प्रवेश करता है)

बालक—(सदानन्द को एक पत्र देकर) महाराज ! मैं एक ग़रीब विद्यार्थी हूँ। इस महीने की फीस का कुछ बन्दोबस्त कर दीजिए। (गुनगुनाता है)

सदा०—देखूँ (पत्र खोलकर) क्यो रे, इस देवनागरी लिपि को कौन बेवकूफ समझता है ? इसे कौन पढ़ सकता है ? (टूटी-फूटी तौर पर पढ़ता है) "यह एक ग़रीब विद्यार्थी है। मेरे स्कूल में यह चौथी कक्षा में पढ़ रहा है। इसकी पढ़ाई और चालचलन अच्छी है। इसलिए दयालु महाशयो से सविनय निवेदन है कि इसे आर्थिक सहायता प्रदान करने की उदारता प्रकट करें—विनीत, सालग्राम रामसहाय।" (पत्र को बन्द करके टेबल पर रख देता है) ऐसा ? तुम्हे मदद की ज़रूरत है ? ठीक है !

तुझ ऐसे बालक को कोई भी सहायता देगा। स्वयं सालग्राम रामसहाय की सिफ़ारिश ! फिर तो कुछ पूँछना ही नहीं है !! क्योंकि इस मध्य-प्रांत मे ऐसा कौन मूर्ख है जो इस चिट्ठी को देखकर यह न समझ जाय कि सालग्राम रामसहाय एक प्रसिद्ध ग्रामीण शाला के हेडमास्टर है ? सुनो, तुम हमे एक अच्छे साथी मिल गये। मै भी तुम्हारे ही जैसा एक दीन विद्यार्थी हूँ और इस कालेज मे किसी भी तरह से दिन काट रहा हूँ, पर क्या बतलाऊँ दोस्त, आजकल कालेज का खर्च इतना बढ़ गया है कि जिसका ठिकाना नहीं। मै समझता हूँ कि अब हम और तुम दोनो बिलकुल समदुःखी हो गये हैं। मैं भी अपने प्रिंसिपल साहब से एक सिफ़ारिशी चिट्ठी लिखाये लेता हूँ और फिर हम तुम दोनो एक साथ मदद माँगने के लिए चक्कर काटा करेंगे। क्यो ? तुम्हे यह बात पसन्द है ? अच्छा, अब तक तुमने कितना पैसा इकट्ठा कर लिया है ? उसमें से दो पैसा तुम मुझे देते हो ? शर्ट का बटन ख़रीदूँगा। मेरे पास एक कालर है; लेकिन बिना बटन के उसका क्या उपयोग ? क्यों रे ? जाता क्यो है ? बैठ बैठ ! इसपर बैठ (एक कुर्सी की ओर इशारा करता है) हाँ, फिर हम दोनो समदुःखी हैं न ? घड़ी भर बैठकर अपने सुख-दुःख की बातें कर लें। क्योकि बड़े बड़े विद्वान् कवियो का कथन है कि— अरे बाबा, इस प्रकार रिक्तहस्त क्यो विमुख होकर लौटता है ? (उसे चिट्ठी देता है) पहले, प्रत्यक्ष सालग्राम रामसहाय के हस्ताक्षर वाला पत्र यह ले। (विद्यार्थी भाग जाता है। उसके पीछे दौड़कर सदानन्द कहता है) बेटा जी, अब अगर फिर कभी इस कम्पाउन्ड के भीतर आये, तो टँगड़ी ही तोड़ डालूँगा। याद रखना। यहाँ तो स्वयं पेट भरने की आफ़त गुज़र रही

है और इनको फीस देते बैठो । ख़ैर, फीस दे भी दी तो ये हज़रत क्या करते है, चाय और भजिये खा डालते हैं। (पढ़ने लगता है । इसी समय एक साधू प्रवेश करता है)

साधू—अलख !! अल्ला तेरा भला करे बाबू ! काशी का रहनेवाला हूॅ और बद्रीनारायण करके रामेश्वर जानेवाला हूॅ।

सदा०—बहुत अच्छा ! आइए बैठिए महाराज ! (कुर्सी की ओर इशारा करता है) महाराज ! मै भी आजकल साल में दस बार पंढरपुर जाता हूँ । पर क्या करूॅ, पंढीनाथ कभी मुझपर प्रसन्न नहीं होते। अच्छा हुआ जो आप आ गये । आप का साथ हो गया । अब हम दोनो साथ ही साथ यात्रा करेंगे । (साधू जाता है । सदानन्द पढ़ने लगता है । इतने में एक फ़ेशनेबल मनुष्य हाथ मे एक पोर्टमैंटो लिये हुए आता है)

फ़ेशनेबल मनुष्य—May I come in please—(क्या मै अन्दर आ सकता हूॅ) आपसे कुछ अर्ज़ करना है ।

सदा०—Yes certainly (आइए, ज़रूर तशरीफ लाइए) आपकी मुलाक़ात से मै बहुत प्रसन्न हुआ । (वह मनुष्य पोर्टमैंटो मे से एक कागज़ निकालकर देता है । उसे देखकर)

ओहो—याने आज अधनाश्रम की मदद के लिए सिनेमाघर मे एक बेनिफिट-शो (धर्मार्थ-खेल) होनेवाला है ? उसके लिए मैं टिकिट लूॅ ? Oh yes, by all means (ज़रूर ज़रूर ! क्यों न लूँगा ?)

मनुष्य—Many thanks (यह आपका बड़ा उपकार है) तो फिर कितने फाड़ दूॅ ? Two perhaps (दो दूँ क्या ?) एक आपको और एक आपके कम्पेनियन (मित्र) के लिए। (टिकटों को फाड़कर मेज़ पर रख देता है)

सदानन्द—दो ही क्यो ? As many as you like. (चाहे जितने दीजिए) Thank you.

मनुष्य—अच्छा, रुपये रुपये के तीन दिये देता हूँ। (वैसा करता है और रुपये लेने के लिये खड़ा रहता है)

सदानन्द—पर क्यों जी, मैं कई दिनो से आपके अधनाश्रम के बारे में सुन रहा हूँ। क्या आप मुझे उसका प्रास्पेक्टस भेजने की कृपा करेंगे जिससे—हः हः मैं स्वयं आपके अधनाश्रम का सदा के लिए मेम्बर हो जाऊँ ।

मनुष्य—ओ यस, प्रसन्नता से भेज दूँगा। (क़ीमत लेने के लिए हलचल करता है) परन्तु हमारे मेनेजिंग बोर्ड के मेम्बर्स (कार्य-कारिणी सभा के सभासद) लिमिटेड (नियमित) ही रहते हैं। तिस पर भी हम आपकी सहानुभूति के लिए अत्यन्त कृतज्ञ है ।

सदानन्द—नहीं जनाब, आप मेरा कहना बिलकुल नही समझे। मेनेजिंग बोर्ड के मेम्बर होने की योग्यता मुझमे कहाँ है ? आपकी संस्था से फ़ायदा उठानेवाले मेम्बरो मे से एक—

मनुष्य—(घड़ी देखकर) Well (भला) वह फिर कभी देखा जायगा ।

सदानन्द—कोई हर्ज नहीं, मुझे जल्दी नही है। आज तो कसरत से .फ़ुरसत मिली है (टिकिटो को उठाकर मेज़ के ड्रायर में रखने लगता है)

मनुष्य—(फिर घड़ी देखकर) Will you excuse me ? (क्षमा कीजिए) बहुत देर हो गई ।

सदानन्द—मुझे खेद है। ठीक है I can wait. Good afternoon (मुझे .ख़ूब समय है। प्रणाम !) (पढ़ने लगता है)।

मनुष्य—(हलचल करता है) अ-अ well मिस्टर-अ-म- Do you

mind paying just now ? (क्या आप अभी क़ीमत देते है ?)

सदानन्द—नहीं-नहीं, मुझे जल्दी नही है ।

मनुष्य—(गुनगुनाता हुआ) नहीं, मतलब यह है कि फिर हिसाब मे गड़बड़ न होगी । हः हः ।

सदानन्द—किसका हिसाब ? क्या टिकटो के हिसाब में कह रहे हैं ? मालूम होता है कि आज का खेल केवल धमार्थ ही है ! (टिकटों को निकालकर फेंक देता है) Here you are ! Good-Night (ये लो, नमस्कार)

मनुष्य—(खीझकर टिकटों को इकट्ठा करता है)

—Ungentlemanly (सभ्यता का काम नहीं) (वापिस जाने लगता है)

सदानन्द—कहिए ? फिर आपको मेरा proposal (प्रस्ताव) पसंद हुआ या नहीं ? आप फिर कब आयेंगे ? आप मेरी सिफ़ारिश तो करेंगे न ? (वह मनुष्य चला जाता है)

एक और साढ़ेसाती से छुट्टी मिली । (पढ़ने लगता है) इतने मे एक मद्रासी अंडप्पाजी हाथ मे काग़ज़ों का एक बंडल लेकर प्रवेश करते हैं । आते ही बिछी हुई चटाई पर आसन जमाकर बैठ जाते है । सिर की पगड़ी निकालकर खूँटी पर रख देते है । फिर अपने हाथ में का काग़ज़ों का बंडल सदानन्द को देते है)

अंडप्पा—सत्कार्य है । आप-सरीखो को मदद करनी चाहिए ।

सदानन्द—कहिए नमस्कार ! बहुत दिनो मे भेंट हुई । घूमते घूमते थक गये होगे ? आजकल बड़ी गर्मी है । यह पंखा लीजिए । (एक जापानी पंखा देता है) । ख़ास विलायत से बुलवाया है । कुछ चाय वग़ैरः मँगवाऊँ ? ख़ैर, आप हम-जैसे ग़रीबों के यहाँ भला चाय क्यो लेने चले ? (एक काग़ज़ को पढ़कर)

वाह्वा ! बहुत उत्तम ! टिकरा-पारे के गिरे हुए राममन्दिर का जीर्णोद्धार करने के लिए आप फण्ड इकट्ठा कर रहे है। बहुत ठीक है। आपका यह कार्य स्तुत्य तथा अत्यन्त अभिनन्दनीय है। पर ज़रा विचार तो कीजिए कि आजकल के धर्म-भ्रष्ट युवा पुरुषों को सनातन धर्म का महत्त्व समझने की अक्ल कहाँ है ? धर्म-सम्बन्धी बातें सुनकर उनका पित्त एकदम भड़क उठता है। उनके मन में धर्म के लिए तीव्र घृणा उत्पन्न हो गई है। अजी, आजकल कहीं उनसे एक-दो धर्म की बातें छेड़ी जॉय, तो वे उन्हे एक कान से सुनकर दूसरे कान से उड़ा देते हैं। कहाँ तक कहे, आप जैसे धार्मिक तथा सहृदय मनुष्यो से मसख़री कर बैठते हैं, उनकी टर्र उड़ाते हैं और फिर उन बेचारों की ऐसी ख़राब दशा हो जाती है कि जिसका कोई ठिकाना नहीं ! (अंडप्पाजी अपने सिर पर अपनी पगड़ी रखते है) उस वक्त उन्हे ऐसा मालूम होता है कि मानो उन्होने गोबर खा लिया हो। (अंडप्पाजी जाने लगते है) बैठो जी, फिर उसे ऐसा मालूम होने लगता है कि बड़ी बेवकूफी की जो यहाँ आये। ऐसा जानकर वह बेचारा अपने काग़ज़ात समेटने लगता है। (अडप्पाजी अपने काग़ज़ो को इकट्ठा करके कॉख में दबाते है और अपना-सा मुँह लिये चुपचाप वापिस चले जाते है)

सदानन्द—वाः। क्या आप चले ? ज़रा ठहरिए तो ! हिन्दू-धर्म और सुधार, आद्य शंकराचार्य, टूटे हुए मन्दिर का जीर्णोद्धार इत्यादि विषयो पर तो मुझे बहुत सा भाषण करना है। (अंडप्पाजी लंबे होते है) देखिए, मेरी धोतियाँ किस तरह जीर्ण हो गई है, पर मैं उनका तक उद्धार करने को समर्थ नहीं हूँ, पर ये कौन साड़ेसाती आ रहे है ? (एक हाथ मे कुछ किताब लिये हुए

एक फेटेबाज़ गृहस्थ प्रवेश करते है और चुपचाप सदानन्द के हाथ मे एक किताब दे देते है) ओहो, आइये लालाजी, पधारिए ! कहिए, आज इस गरीब के यहाँ क्यो इतनी तकलीफ उठाई ? (किताब खोलकर) मालूम होता है कि आप गो-हत्या-प्रतिबन्ध-निवारक-मंडली के स्वयंसेवक है। योग्य है। मैं आपही जैसे एक महाशय की तलाश मे था। हमारे पिता ने कल ही धूम्र-पान-निषेध के विषय का एक लेक्चर झाड़ा था। (लालाजी एकदम पीछे हटते हैं) हमारे बिल आजकल बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ रहे हैं। मैं आजकल इसी चिन्ता मे निमग्न रहता हूँ कि नाई, धोबी, टाटा, रुस्तमजी इत्यादि लोगो के बिल किस तरह चुकाऊँ, इसलिए मेरा विचार भी एक बिल-फंड खोलने का है। मै अपने फंड को जमा करने के लिए अभी निकलने ही वाला था कि इतने मे आपसे भेंट हो गई। अलभ्य लाभ हो गया। अब आप ही श्रीगणेश कीजिए। इधर देखिए, मै सस्कृत-साहित्य का विद्यार्थी हूँ; इसलिए यह काम केवल मेरे ही लिए नही है, बल्कि वह अपने समाज के लिए, अपने राष्ट्र के लिए और अपने धर्म के लिए है। इसके सिवा, एक बात और है। पर जाने दीजिए, वह ज़माना ही गुज़र चुका, जिस समय सनातन-धर्म का झंडा भारत-वर्ष के कोने कोने मे फहरा रहा था, राणा प्रतापसिह की नाईं नरश्रेष्ठ अपने ज्ञान का प्रकाश फैला रहे थे, अनेक दुःखो को झेलकर संभाजी महाराज ने अपनी दिव्य धर्म-निष्ठा प्रकट की थी, शिवाजी महाराज ने गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक का व्रत स्वीकार किया था, वे दिन गये—गये ! अब गाँव के चमार—नहीं, काले कुत्ते भी हम आर्यो और पवित्र गौओ की ज़रा भी परवाह नहीं करते। धिक् ! धिक् !! धिक्कार !!! और एक मज़ा तो देखिए कि आजकल

प्रत्येक काम के लिये पैसा; पश्चिम की ओर देखने के लिए पैसा (लालाजी मुँह फाड़ते है और एक एक क़दम पीछे को सरकते हुए कमरे से बाहर हो जाते हैं) चलो; यह बला भी टल गई। मालूम होता है कि आज मेरे पीछे कोई साड़ेसाती ही लग गई है। अगर और किसीको आना हो तो इस समय आ सकता है। मुझे ख़ूब फ़ुरसत है—(पढ़ने लगता है) अरे, परन्तु मुझे आज शहर मे एक Engagement (काम) है। वहाँ समय पर जाना ही चाहिए। (कपड़े पहिनकर जाता है) आखिर, आज कुछ भी न पढ़ पाये। ख़ैर, कल देखा जायगा।

(जाता है)



ठेठ पद्धति का ठाट

पात्रः—

१—पल्टूराम—शिक्षक

२—सूरतसिंह—शिक्षक

३—पूरनलाल पचौली—पुराने हेडमास्टर

४—इन्सपेक्टर

५—पाँच-छै लड़के

६—चपरासी

[स्थानः—पाठशाला]

(पल्टूराम टेबल-कुर्सी लगाये कुछ लिख रहे है। बाँई ओर से सूरतसिंह को भीतर आते देखकर खड़े हो जाते है)

प्रथम प्रवेश।

पल्टूराम—जै रामजी ! कहिए, कब आना हुआ ?

सूरतसिंह—कल ही तो आया हूँ।

पल्टूराम—कहिए, सब कुशल है ?

सूरतसिंह—जी हाँ। सुना है कि आपके यहाँ इन्सपेक्टर साहब वाले है।

पल्टू०—हाँ भाई ! उनकी अवाई सुनकर ही तो हेडमास्टर साहब ने

सब काम ठीक-ठाक करने के लिए बड़े प्रातःकाल से यहाँ बुलाया है।

सूरत०—सब काम कौन सा ? क्या स्कूल सजाने के लिए ?

पल्टू०—नहीं नहीं। ये इन्सपेक्टर साहब पुराने ढर्रे के नहीं हैं। सुना है, ये पढ़ाई पर अधिक ध्यान देते है।

सूरत०—सो तो अच्छा ही है। ऐसे इन्सपेक्टर हो, तब क्या न हो ? पर यह तो कहो, क्या एक दिन मे तुम सब पढ़ाई ठीक-ठाक कर लोगे ?

पल्टू—नही, एक दिन भी कहाँ है ? डुड़ियाखेड़ा में आ गये हैं, आध घण्टे बाद यहाँ आनेवाले है। और कुछ नही तो नोट्स ओट्स तो लिख डालेगे।

सूरत०—नोट्स क्या ? काहे को नोट्स लिखना है ?

पल्टू०—क्यो ? तुम्हारे यहाँ नोट्स नही लिखते क्या ? जो कुछ रोज़ पढ़ाते हैं, किस तरह पढ़ाते है, और कितना पढ़ाया इसका पूरा पूरा विवरण हम लोगो को रोज़ लिखना चाहिए, पर लिखता कोई नही, क्योंकि पूरा पूरा यदि कोई लिखे तो सारा समय इसीमें खर्च हो जावे। हम तो, जब कभी इन्सपेक्टर आते है, तब दस-पाँच पाठ के नोट्स लिखकर बतला देते है। हमारे हेडमास्टर साहब तो इतना भी नही करते। जब इन्स-पेक्टर साहब पूछते है, तो कह देते हैं कि बिलकुल नहीं लिखे। यदि देखना है, तो पढ़ाई देख लीजिए।

सूरत०—तो वे ठीक करते हैं। इस प्रकार पूरे पूरे नोट्स लिख ही कौन सकता है ? हमारे यहाँ तो दैनिक विवरण की चाल है। उसमे सिर्फ यह लिख देते है कि आज अमुक तारीख को अमुक विषय का अमुक भाग पढ़ाया। बस, और कुछ नही। पर यह तो कहो ऐसा करने का हुक्म किसने दिया है ?

पल्टू०—इन्ही इन्सपेक्टर साहब ने एक सूचना सब शालाओ में भेजी थी कि शिक्षकों को पद्धति के अनुसार प्रत्येक विषय के पूरे पूरे नोट्स लिखना चाहिए। उसमे यह बतलाया जावे कि अमुक विषय विद्यार्थियो को किस प्रकार समझाया गया और शिक्षक ने कैसे प्रश्न किये। तात्पर्य यह कि नोट्स उस प्रकार से लिखे जावे जैसे कि "हितकारिणी" मासिक पत्रिका मे भिन्न भिन्न विषयो के आदर्श-पाठ, विषय और पद्धति शीर्षक देकर निकला करते थे।

सूरत—परन्तु उन आदर्श-पाठो के छपने का अर्थ यह थोड़े ही है कि पाठक-गण प्रतिदिन प्रत्येक विषय के नोट्स इसी प्रकार लिखे। वे तो यह बतलाने को है कि अमुक विषय को पाठक इस भाँति पढ़ावे। तुम लोगो को सर्किल-कान्फरेन्स के समय इस दूषित नियम का विरोध करना चाहिए।

पल्टू०—पर यह नियम सर्किल-इन्सपेक्टर साहब ने थोड़े ही बनाया है।

सूरत०—तो फिर ?

पल्टू०—इन्ही इन्सपेक्टर—इन डिप्यूटी-इन्सपेक्टर साहब ने।

सूरत०—डिप्यूटी-इन्सपेक्टर सा० ने। तो फिर उस समय अवश्य ही कहना चाहिए जिसमे दूसरे भी इस नियम का विरोध करें।

पल्टू०—पर, इतना साहस कर ही कौन सकता है ? पानी मे रह-कर मगर से बैर करना ठीक नही।

सूरत०—इसमें बैर करने की कौन सी बात है ? उनको तो...

पल्टू०—अच्छा यह सब रहने दो। हमको यह बतलाओ कि हमको कोई विषय पढ़ाना है, तो हम उसे किस तरह पढ़ावे ?

सूरत०—वाह ख़ूब प्रश्न किया ! कोई विषय पढ़ाना है, किस तरह पढ़ावें ? अरे भाई ! विषय का नाम बतलाओ, तब उसके

विषय मे कुछ बताया जावे। सब विषय कुछ एक ही प्रकार से थोड़े ही पढ़ाये जाते है।

पल्टू०—अब न मालूम, इन्सपेक्टर साहब कौन सा विषय पढाने को हमसे कहते हैं। यह अवश्य है कि वे कुछ न कुछ पढ़वावेंगे। इसलिए सभी विषयो का कुछ न कुछ हाल बतला दो।

सूरत०—ऐसा हम क्या जानते है जो तुमको बतला सकें। जो कुछ हमने पढ़ा है वही तुम भी घर में पढ़ चुके हो, बल्कि तुमको तो दो साल का अनुभव भी प्राप्त है। हम तो अभी सीधे पढ़कर चले आ रहे है।

पल्टू०—सीधे पढ़कर आ रहे हो, इसीसे तो पूछते हैं; क्योंकि तुम्हारे सिर मे सब बातें ताज़ी होंगी। बस, यह बतला दो कि किसी विषय को नई पद्धति से कैसे पढ़ाना ?

सूरत०—नई पद्धति क्या ?

पल्टू०—अरे! वह एक पद्धति नई निकली है न? उसका अच्छा सा नाम तो है अंग्रेज़ी में। (सोचते हुए) वह कोई मेथड कहलाती है।

सूरत०—क्या डाइरेक्ट मेथड (Direct method) ?

पल्टू०—हाँ हाँ, डाइरेक्ट मेथड। इसका हिन्दी नाम क्या है ?

सूरत०—ठेठ पद्धति।

पल्टू—बस बस। ठेठ पद्धति के अनुसार ही बतलाओ, किस तरह पढ़ावेंगे ?

सूरत०—पर, यह तो देखिए। हम आपको बतलावें भी तो क्या बतलावें; क्योकि आप हमसे अधिक अनुभवी हैं।

पल्टू०—ऐसे अनुभव से क्या लाभ! यहाँ तो साल में एक-दो बार जब इन्सपेक्टर साहब का दौड़ा होता है, तभी इस ठेठ पद्धति की फिकर की जाती है, नहीं तो अलग ताक मे रखी रहती है।

क्योंकि एक हम हों तो चल जाय। दूसरे के अधीन जिसको रहना है वह अपनी थोड़े ही चला सकता है, उसे तो अपने से बड़े की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा। हमारे हेड मास्टर साहब हैं पुराने ढर्रे के आदमी। वे ये पद्धति-अद्धति कुछ नहीं पसन्द करते। वह तो हम "हितकारिणी" वगैरः पढ़ा करते हैं; इसलिए समय पर कुछ कर गुज़रते हैं और रिमार्क भी अच्छा पा जाते हैं। हमारे विषय में इन्सपेक्टर साहब सदैव अच्छा लिखते हैं।

सूरत०—क्यों नहीं? अनुभवी हो भाई! तुम नहीं अच्छा रिमार्क पाओगे, तो और कौन पावेगा?

पल्टू०—अच्छा तो, बतलाओ तो।

सूरत०—यही जी, ज़रा ऊपरी रंग-ढंग .खूब रक्खा और प्रश्न ऐसा किया जिसमें लड़के उसका उत्तर शीघ्र दे सकें, और जहाँ तक हो प्रत्येक बात लड़कों से ही निकलवाना।

पल्टू०—हाँ, यह तो मुख्य ही है। प्रत्येक बात उन्हीं से निकलवाना चाहिए, अपने को बिलकुल नहीं बतलाना चाहिए। ऊपरी हिसाब-किताब तो हम हमेशा ऊँचा ही रखते हैं कि देखते ही देखनेवाला समझ जावे कि हाँ, शिक्षक की पद्धति बिलकुल ठीक है।

सूरत०—बस, इतना तो है ही।

पल्टू०—और कुछ।

सूरत०—(सिर से हाथ लगाकर सोचते हुए) हाँ, एक बात और भी। वह यह कि जिस चीज़ का प्रसंग आवे वह या उसका चित्र बालकों को बतलाया जावे। यदि कुछ न हो, तो तख़्ते पर चित्र खींच दिया।

पल्टू०—बेशक। बहुत ठीक। ऐसा हमने किसी पुस्तक में पढ़ा

भी था। हम एक बात और कहते है कि जब कुछ नही मालूम रहता, अथवा कोई विषय जब हम अच्छी तरह नही पढ़ा सकते, तो हम एक चाल चल जाते है कि विषय की तैयारी के लिए एक दिन चाहिए। बस, फिर हमको हमारी ही इच्छा का विषय पढ़ाने को मिल जाता है।

सूरत०—कुछ भी हो; पर ठेठ पद्धति के अनुसार पढ़ाना सहज नहीं। अच्छे अच्छे चक्कर खाते हैं।

पल्टू०—अरे! नही। उसमे है ही क्या? लड़कों से कह दिया कि प्रश्न का उत्तर मालूम हो या नही, जो कुछ बने शीघ्र बोल दिया करे। यदि ग़लत है, तो कोई हर्ज नही। और प्रश्न ख़ूब करना। कभी इस लड़के से, कभी उससे और कभी तीसरे से। हमेशा एक ही से नही करना चाहिए। साथ ही साथ, काले तख्ते पर कुछ तो भी लिखते गये।

सूरत०—अरे मिस्टर! यहाँ अन्धों को बना देते होओगे। कोई अच्छे से भेड़ा पड़े, तो मज़ा बतला दे।

पल्टू०—यह सब रहने दो। हमने भी अच्छे अच्छे देख लिये हैं। अच्छा, दूर क्यो जाते हो। अभी न देख लेना, कैसा ठाट बनाता हूँ।

सूरत०—हाँ, यह माना। हम अवश्य आवेगे और तुम्हारा आदर्श-पाठ देखेगे।

पल्टू०—अपने साथ औरों को भी लेते आइए।

सूरत०—अवश्य। कहिए तो गाँव में ढिंढोरा पिटवा दूँ।

पल्टू०—अब तो तुम बनाने लगे यार हमें।

सूरत०—नही मित्र! ऐसी क्या बात कहते हो?

पल्टू०—अरे! मैने पचासो के सामने आदर्श-पाठ दिये हैं। मै कुछ डरता थोड़े ही हूँ।

सूरत०—इसीलिए तो मैंने कहा कि जिसमे सब लोग आकर देख ले कि पल्टूरामजी कैसी पल्टी खाते है।

पल्टू०—ख़ैर! अभी कुछ नहीं कहता। वहीं देख लेना कि कौन पल्टी खाता है और किसकी सूरत बिगड़ती है।

सूरत०—कहीं आप पर ही ये दोनों बाते न घटित हों।

पल्टू०—कैसी?

सूरत०—ख़ैर! अब चलता हूँ। बाज़ार से होता हुआ अभी शाला को आता हूँ। तब तक आप भी सब तैयारी कर लीजिए।

(जाने लगते है)

(इतने ही मे जिस ओर ये जाना चाहते है उसी ओर से हेडमास्टर प० पूरनदास पचौली आ जाते हैं)

द्वितीय प्रवेश।

हे० मा०—कहो जी पल्टूराम! सब काम ठीक-ठाक है? अरे! सूरतसिह, तुम कब आये?

सूर०—कल आया था पंडितजी!

हेड०—हाँ, कहो, पढ़ाई कैसी चलती है?

सूर०—सब अच्छी चली जाती है।

हेड०—क्या तुम भी वहाँ नई पद्धति सीखते हो?

सूर०—जी हाँ, वह तो सभी को सिखलाई जाती है।

हेड०—अच्छा है, ख़ूब सीखो। पहिले के समान न तो अब मास्टर रहे, और न वैसे विद्यार्थी ही देखने में आते है। अब तो ठूँठ पद्धति सीख सीखकर ख़ुद ठूँठ बनते और लड़को को भी ठूँठ बनाते हैं।

सूर०—जी नहीं पंडितजी! इस पद्धति से लड़कों को कोई भी विषय बहुत जल्दी सिखलाया जा सकता है।

हेड०—अरे! देख लिया। मैंने पचासो मास्टरों को देखा है। वहाँ से तो वे ठेठ पद्धति सीखकर आते है, पर जब यहाँ पड़ा भी दुहते नही बनता, तब सिर पटककर उसी पुरानी की शरण में आते है और काम करते हैं। मुझे बत्तीस साल नौकरी करते हो गये, पर मैंने आज तक किसीको नहीं देखा जो ठेठ पद्धति से पढ़ाकर मेरे पढ़ाये शिष्यो से अच्छे लड़के निकाल दे।

सूर०—जी हाँ, होगा। पर बाहर देखिए, ठेठ पद्धति से पढ़ाये गये विद्यार्थियो का परिणाम कितना अच्छा रहता है। और स्कूल उनके सामने कुछ भी नही है।

हेड०—होंगे एक-दो स्कूल वैसे। पर हमको तो विश्वास नहीं होता।

सूरत०—चलकर देखिए, तब विश्वास हो। यहाँ से आप क्या अनुमान कर सकते हैं?

हेड०—हमने जो कुछ सुना है उसीसे हम यह ठीक अनुमान निकालते हैं कि ठेठ पद्धति मे कुछ सार नही।

सूरत०—सुनी हुई बात कहाँ तक ठीक हो सकती है?

हेड०—वाह! जिनने हमसे कहा है वे क्या मूर्ख हैं? तुम्हीं एक सच्चे हो। एक तो नये पढ़नेवालो में यह एक बड़ा भारी दोष आ जाता है कि वे अपने सामने किसीको कुछ नहीं समझते।

सूरत०—जी नही, ऐसा कुछ तो नहीं है। यह तो

हेड०—वह मुझे सब मालूम है, रहने दीजिए। यथार्थ में कुछ ज्ञान हो, तब तो ख़ैर, कोई मान भी जाय। पर यहाँ तो बिना ही सुर के राग अलापा करते है। सौ मे एक भी तो योग्य देखने मे नही आता।

सूरत०—इतना तो नही। यह तो आपका कहना व्यर्थ है।

हेड०—अरे! व्यर्थ है! व्यर्थ क्यों? जब कहा जाता है कि अमुक

विषय पढ़ाओ, तो उत्तर मिलता है, तैयारी के लिए समय चाहिए। अमुक अमुक सामान चाहिए। पढ़ाते बने, तब पढ़ावें। आता-जाता तो कुछ है नही। समय और सामान का बहाना न करें तो क्या करें ?

पल्टू—जी हाँ, बिल्कुल ठीक है। (सूरतसिंह को आँख का इशारा करके कहता है कि सुनते जाओ)

हेड—बिल्कुल ठीक न कहोगे, तो कहोगे क्या ? तुम भी तो उसी राशि के हो।

पल्टू०—जी हाँ! पर है हम सब आपके शिष्य।

हेड—हमारे शिष्य थे, जब थे। अब तो टूँठ पद्धति के शिष्य हो। जैसे ऊँट बलबलाया करते हैं, वैसे ही ये टूँठ पद्धति-वाले भी अपनी तान छोड़ा करते हैं। उसी तान मे ऐसे मस्त हो जाते है कि सब भूल जाते हैं। इस बात का स्मरण ही नहीं रहता कि इन विद्यार्थियों के जीवन सुधारने का भार हमपर है, उनको कुछ पढ़ावें-लिखावें। वह तो सब छोड़ दिया, लगे कहीं यह तस्वीर बताने, कही वह तस्वीर बताने। अरे भाई, क्या वह तस्वीर उनको पेट भरने मे सहायता देगी ? मतलब की बाते बतलाओ, मतलब की। यह क्या कि ज़रा ही कही कोई नई सी बात या नाम देखा कि बस, पढ़ाई की तो इतिश्री हो गई और लगे उल्तानो सुल्तानी बकने। और कुछ न बना, तो नक्शा निकालकर शहर का नाम-धाम बताने लगे। उससे बचे तो काले तख्ते को सफेद कर डाला। क्या मजाल कि लड़कों को कोई कठिनाई रह जाय; उनको ज़रा भी मिहनत करने पड़े! अरे भाई! उनको भी तो कुछ सोचने करने के लिए रख छोड़ो। नहीं नहीं, गृह-पाठ कुछ मत दो। पूछा जाय, क्यों साहिब ? स्वास्थ्य बिगड़ जायगा, फिर स्कूल में

उनका सिर काम न करेगा ! आराम करने दो, खेलने दो। अच्छा साहिब ! खूब आराम करने दीजिए और आलसी टट्टू बनाइए। स्मरण रखने के नाम ढा ! थोड़ा-सा भी पाठ याद नहीं रह सकता। पहिले के आदमी कैसे होते थे कि पुस्तकें की पुस्तकें कण्ठाग्र कर डालते थे, किन्तु अब ? पूछा जाय तो कहते हैं, हाँ, यह बात मेरी नोटबुक मे लिखी है। अरे हज़रत ! नोटबुक में क्या दूध देती है ? नोटबुक मे लिखी रहने से क्या लाभ ? यदि मास्टर साहिब से पूछो, तो उनकी आँखे भी लाइब्रेरी की पुस्तको मे छिपने लगती है। यह हाल है आपकी पद्धति का। उसे चाहे ठेठ-पद्धति कहिए, चाहे मटियामेट-पद्धति ! गुण इसमे ठूँट के समान ऊँट बैनाने के है। आवश्यकता तो कोई देखता नहीं कि लड़कों के लिए किस पद्धति की है। ठेठ की, कि पेट की। हम तो उसी पद्धति को अच्छी समझेंगे जिसमे पेट पालने का ढंग लड़को में आवे। नाम उसका कुछ भी हो, काम होना चाहिए। जिससे काम सधे, वही अच्छी है।

सूरत०—जी हाँ, आपका कहना ठीक होगा। आपको कई वर्षों का अनुभव है, और हम लोग तो अभी नये नये है। उस विषय में अधिक ज्ञान नहीं रखते। परन्तु इतना अवश्य विचारिए कि इसकी प्रशंसा उन वृद्ध मनुष्यो ने भी की है जो पुरानी और नई पद्धति दोनो के ज्ञाता है।

हेड०—हाँ, तो केवल प्रशंसा ही की होगी। कोई कार्य करके सिद्ध करे कि वह अच्छी है, तब हम जाने।

सूरत०—जी हाँ, आप देखिए, मध्यप्रदेश में कुछ शालाएँ ऐसी हैं, जहाँ ठेठ पद्धति का अनुसरण किया जाता है और जिसमें पूर्ण सफलता प्रतिवर्ष देखने में आती है। और दूसरे, इस पद्धति

का प्रचार हुए अभी बहुत वर्ष भी तो नहीं हुए। ज्यों ज्यों ट्रेण्ड पाठको की संख्या बढ़ती जायगी, त्यो त्यो इसकी सफलता के चिन्ह भी दृष्टिगत होंगे।

हेड०—मुझे क्या बतलाते हो ? मैंने कई ट्रेण्ड पाठक देखे हैं जो ख़ूब पढ़ पढ़कर आते हैं; पर काम पड़ने पर उनसे कुछ नहीं बनता। अन्त मे उस नई पोशाक को अलग रखना पड़ता है, तब कहीं काम चलता है। तुमने अभी तक कोई खेड़े के स्कूल नहीं देखे, इसीलिए अपनी अपनी तानते हो। जब कभी खेड़े में काम करोगे, तब तुम्हारी अक्ल ठिकाने आवेगी।

पल्टू—(पीछे को देखकर) बाहर किसीके जूतो की आवाज सुनाई देती है। मालूम होता है कि इन्सपेक्टर साहब आ गये।

हेड०—(कुछ घबड़ाये से) इन्सपेक्टर साहब कहाँ हैं ? कहाँ है ?

(बाईं ओर से इन्सपेक्टर आते हैं, उसी ओर उनको लेने हेड मास्टर आगे बढ़ते हैं, और सूरतसिंह पल्टूराम से 'अभी थोड़ी देर मे आता हूँ' कहते हुए दूसरी ओर निकल जाता है)

तृतीय प्रवेश।

इन्सपेक्टर—(कुछ आगे बढ़कर) हेड मास्टर कहाँ हैं ?

हेड०—(झुककर सलाम करके) हुजूर ! मैं हूँ। (कुर्सी देते है और इन्सपेक्टर साहब बैठ जाते हैं)

इन्स०—तुम्हारा नायब कौन है ?

पल्टू०—(झुककर सलाम करके) हुजूर ! मैं हूँ।

इन्स०—क्या तुम ट्रेण्ड हो ?

पल्टू०—जी हाँ हुजूर !

इन्स०—हुजूर हुजूर मत कहो हमसे।

पल्टू०—जी हाँ, जनाब।

इन्स०—जनाब भी ठीक नहीं।

पल्टू०—जी हाँ, साहिब।

इन्स०—क्या तुमको और कोई शब्द नही मालूम ?

हेड०—आपके यहाँ से जो पत्र आते है उनमे तो 'जनाब' शब्द ही लिखा रहता है।

इन्स०—नही नही, ऐसा न होगा।

हेड०—जी हाँ, ऐसा ही लिखा रहता है, जैसे अज़तरफ जनाब डिप्युटी इत्यादि। कहिए तो बतला...

इन्स०—(बात पर ध्यान न देते हुए) अच्छा, आज हमको अधिक समय नहीं है; इसलिए हम एकाध कक्षा की सिर्फ पढ़ाई देखना चाहते है। अपने असिस्टेन्ट से कहो, अपनी क्लास लावे और हमारे सामने यहीं पढ़ावे।

(पल्टूराम दाहिनी ओर से पर्दे के पीछे जाता है और एक दो मिनट मे पाँच छै लड़को को अपने साथ लिये आता है)

पल्टू०—आज्ञा हो क्या पढ़ाऊँ।

इन्स०—सोने के विषय में पढ़ाओ।

पल्टू०—बालको ! तुमने सोना देखा है ?

१ लड़का—जी हाँ।

पल्टू—वह कैसा होता है ?

बुद्धू—वह सुनसान होता है। जब आदमी को ख़ूब नींद आती है तो वह सो जाता है और उसे सोना कहते हैं।

पल्टू—नहीं नहीं। हम यह नही पूछते। तुमने सोना धातु देखी है ?

मघई—मास साहब, क्या उस धातु का नाम सोना है ?

पल्टू०—हाँ, उसका नाम सोना है। (हेड मास्टर से) क्या आपके पास सोने की अँगूठी है ?

इन्सपेक्टर—क्या ? नहीं है। (अपने हाथ से उतारकर) यह लो।

पल्टू०—(अँगूठी को पहिनकर अँगुली बतलाते हुए) यह क्या है ? लटोरे, तुम बतलाओ।

लटोरे—यह उँगरिया है ।

पल्टू—उँगुरिया नहीं, अँगुली कहो ।

लटोरे—यह अँगुली है।

पल्टू०—पर यह अँगुली नहीं है, देखो।

लटोरे—वह हाथ की अँगुली है।

पल्टू—नही नहीं । यह कौन धातु है ?

मधई—वह सुन्ना है।

पल्टू०—हाँ ठीक है; पर सुन्ना मत कहो, सोना कहो।

मधई—वह सोना है।

पल्टू०—अच्छा, यह कहाँ पाया जाता है ?

गुट्टा—मालूम नहीं।

पल्टू०—और कोई बतला सकता है ? (ठहरकर) अच्छा, बतलाओ यह सोना कहाँ से आया ?

गुट्टा—बजीटर ने दिया।

पल्टू०—बजी...(ठहरकर) नही, यह मिला कहाँ होगा ?

मधई—बाजार मे।

पल्टू०—अच्छा ठीक है, बाजार वाले कहाँ से लाये होगे ?

बुद्धू—दूसरे बाजार से।

पल्टू०—नहीं, हम यह नही पूछ ..

इन्स०—(पल्टूराम से) उनको खदान का ध्यान कराओ।

पल्टू०—खदान किस किसने देखी है ?

सब—हमने देखी है।

पल्टू०—लटोरे ! तुमने कहाँ देखी है ?

लटोरे—हमारे पछीते है।

पल्टू०—पछीते मत कहो। दूसरा शब्द कहो।

लटोरे—हमारे दूसरा शब्द है।

पल्टू०—नहीं नहीं, पछीते के बदले कोई दूसरा शब्द कहो।

लटोरे—स्कूल।

पल्टू०—नही, अर्थ वही रहे। (कुछ उत्तर नही मिलता, ठहरकर) छोटा शुद्ध शब्द ?

पल्टू०—पछीते के बदले कोई शुद्ध शब्द कहो।

मधई—हमारे पिछवाड़े हैं।

पल्टू०—ठीक है। अच्छा, उसमें से क्या निकलता है ?

लटोरे—मिट्टी।

पल्टू०—पूरा वाक्य कहो।

लटोरे—पूरा वाक्य।

पल्टू०—अपना उत्तर पूरे वाक्य मे कहो।

लटोरे—उसमे से मिट्टी निकलती है।

पल्टू०—अच्छा तो जिस प्रकार उस खदान से मिट्टी निकलती है, उसी प्रकार बड़ी बड़ी खदानो से सोना निकलता है। (इन्सपेक्टर से) खदानो का नक्शा नहीं है, नहीं तो चित्र भी बतलाता।

इन्स०—अच्छा, वैसे ही पढ़ाओ।

मधई—तो क्या सोना मिट्टी के समान खोद लिया जाता है ?

पल्टू०—हाँ, वह खदान से निकाला जाता है, परन्तु उसमें और और पदार्थ मिले रहते हैं। फिर कई क्रियाओ से वह शुद्ध किया जाता है ?

गुद्दा—मास सा०, कौन कौन सी क्रियाओं से वह शुद्ध किया जाता है ?

प०—तुमने किसी क्रिया का नाम सुना है? एकाध बतलाओ।

लटोरे—अकर्मक क्रिया, सकर्मक क्रिया। (इन्सपेक्टर हँसने लगते हैं)

प०—छिः, यह नहीं। देखो, यदि हम इस सोने को छोटे छोटे टुकड़े करके मिट्टी में मिला दें, तो क्या होगा?

मधई—आपको सोने की कीमत बजीटर सा० को देना पड़ेगी।

प०—यह हम नहीं पूछते। जब मिट्टी मे मिल जायगा, तो सोने को तुम अलग कैसे करोगे?

गुट्टा—ऐसा कोई काहे को करेगा जिसमे उसको तकलीफ़ उठाना पड़े।

प०—हमारा प्रश्न सुनो। मान लो, किसीने सोने के टुकड़े टुकड़े कर मिट्टी मे मिला दिया, तो फिर तुम उसे अलग कैसे करोगे? (थोडी देर ठहरकर, जब कोई नहीं बतला सकता) यदि हम उस मिट्टी को पानी मे घोल दें, तो क्या होगा?

बुद्धू—मिट्टी घुल जायगी।

प०—और सोना?

लटोरे—सोना ऊपर तैरता रहेगा।

प०—नहीं नहीं, सोना भारी होता है।

मधई—सोना तली मे रह जायगा और पानी फेंककर उसे निकाल लेंगे।

प०—पर, खदान के सोने मे और भी कई चीजें मिली रहती हैं जो अग्नि की सहायता से अलग की जाती हैं। तुमको मालूम है, कैसे?

लटोरे—पहिले खदान मे पानी भर देते होंगे और फिर आग।

प०—नहीं। खदान में भरने के लिए उतना अधिक पानी कैसे ला सकते हैं?

गुट्टा—किसी बड़ी नदी की नहर उस खदान मे से ले जाते होंगे।

जब सब मिट्टी बह जाती होगी, तब नहर को बन्द करके उसमें खूब आगी भर देते होंगे जिसमें और और चीज़ जल जावे।

प०—नही नहीं, यह..

इन्स्पेक्टर—बस, बहुत हुआ। रहने दो। क्लास की छुट्टी दे दो। (क्लास—'खड़े हो जाओ', 'बाईं ओर फिरो'। कक्षा 'एक, दो' करके चली जाती है।) (पल्टू से) देखो जी, तुम्हारा पढ़ाना अच्छा नही रहा। उसमें कई ग़लतियाँ हुईं। अच्छी बात उसमे हमको एक भी नहीं दिखाई दी। तुम्हारे प्रश्न सुनकर लड़के अट्ट-सट्ट उत्तर देते थे, सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे प्रश्न ही ठीक नही रहते थे। जब तुम प्रश्न ही करना नही जानते, तो फिर क्या पढ़ाते होगे? काले तख़्ते का उपयोग तुमने बिलकुल नही किया। हम एक बार और अवसर देते है, यदि दूसरे मुलाहिज़े मे तुम अच्छी तरह कक्षा न पढ़ा सके, तो निकाल दिये जाओगे।

हेड०—जब आप इनको (पल्टू० की ओर इशारा करके) पहिले-पहिल यहाँ भेजनेवाले थे उस समय आपने मुझसे बड़ी तारीफ़ की थी कि वह होशियार है, यों है, और त्यों है, और आज आपको 'निकाल देंगे' कहते सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।

इन्स०—उस समय अच्छा रहा होगा। पर आज का पाठ तो अच्छा नही रहा। आप तो देखते गये न?

हेड०—हाँ, मै देखता तो गया हूँ। पर आप ठेठ ठाट पद्धति चाहते है, वह क्या है, मै कुछ जानता नहीं।

इन्स०—हाँ, उसकी बहुत आवश्यकता है। कई पुराने लोग उस पद्धति को नहीं जानते, इसीलिए री-ट्रेनिंग क्लास खोली गई है जिसमें वे पढ़कर लाभ उठावे। प्रति वर्ष हम एक को अपने सर्किल से भेजते है।

हेड०—क्या इस पचास साल पुराने पं० पूरनपरसाद पचोली का भी नम्बर आवेगा ?

इन्स०—(मुसकराते हुए) हाँ हाँ, क्यो नही ?

हेड०—तो ठीक है, आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। इतना लाभ अवश्य होगा कि एक साल आराम करने को मिल जायगा और स्कूल को भी यह लाभ होगा कि ये लड़के ठेठ पद्धति से एक साल मे तो पास होगे नही, एक साल और रहेगे।

इन्स०—नहीं नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मालूम होता है, आप ठेठ पद्धति के विषय मे बहुत कम जानते है।

हेड०—यह मै नही कह सकता। पर, मेरा काम बतलाइए किससे कम अच्छा है ?

इन्स०—आपके लड़के रट कर पास हो जाते है।

हेड०—पहिले के आदमी भी तो रटा करते थे। वे क्या खराब समझे जाते थे ?

इन्स०—अच्छा है, एक साल को हो आओ, फिर ये सब विचार पलट जावेगे।

हेड०—पचास साल मे तो पलटे नही, एक साल में पलटेंगे, इस बात का मुझे शक ही है।

इन्स०—सर्विस करते कितने वर्ष हुए ?

हेड०—आपके पिता और हम साथ ही साथ पढ़ते थे और साथ ही सर्विस मे भर्ती हुए थे। आज २२ वर्ष हो चुके।

इन्स०—तो फिर व्यर्थ है। अच्छा, हम विचारेंगे। (कुछ कागज़ उठाकर उठ खड़े होते हैं)

पल्टू—दयानाथ! विषय पढ़ाने के लिए पूरा पूरा सामान नहीं था। इसलिए मै अच्छी तरह न पढ़ा सका।

इन्स०—नही, यह कोई बात नहीं। हम मानते है कि सामान नहीं

था, पर तुम्हारे प्रश्न करने की रीति के लिए किस मारूम्म की ज़रूरत थी? और काला तख़्ता तुम लाये ही नहीं। उसका उपयोग ही नहीं किया।

पल्टू—इस बार क्षमा कीजिए, अब मैं तन-मन से प्रयत्न करूँगा।

इन्स०—अच्छा। (चलने लगते है। पल्टू और हेड मास्टर बन्दगी करते है। इन्सपेक्टर दाहिनी ओर से चले जाते है। बाईं ओर से सूरतसिंह आता है)

सूरत०—(हेड मास्टर से) कहिए, पंडितजी! आज का आदर्श-पाठ कैसा रहा?

हेड मास्टर—(पल्टू की ओर इशारा करके) इन्हीं से पूछो, ठेठ पद्धति का ठाट कैसा रहा?

सूरत०—(पल्टू से) क्यों भाई! क्या दोनो बातें घटित हुईं? पल्टी भी खाई और सूरत भी बिगड़ी। (पल्टू झेपकर नीचा सिर कर लेता है और हेड मास्टर और सूरत० खूब हँसते है)

चपरासी—(दाहिनी ओर से आकर) हुजूर! इनसपिट्टर साबै न बिजीटर बुक और पाट के नोटस लेकर आप दोनो को बुलाया है।

हेड०—अच्छा आते हैं। (सब दाहिनी ओर से चले जाते है)



मुद्रक—रामप्रसाद वाजपेयी, कृष्ण-प्रेस, २६ हिवेट रोड, प्रयाग।